संस्कृत काव्यों में चित्रकूट

(पर्यावरणिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

१९९३

शोधार्थी

कु० सरोजबाला गुप्ता

निर्देशक

डा० विशनलाल गौड़ 'व्योमशेखर'

एम०ए०, पी-एच०डी०, व्याकरणाचार्य

प्राचार्य

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलिज, अतर्रा, बांदा (उ० प्र०)

शोध-केन्द्र

संस्कृत विभाग

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलिज, अतर्रा, बांदा, उ०प्र०

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी
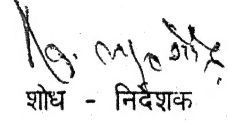
प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि -

1. यह शोध प्रबन्ध शोधछात्रा का निजी एवं मौलिक प्रयास है ।

2. इन्होंनें मेरे निर्देशन में विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित अवधि तक कार्य किया है ।

3. इन्होंने विभाग में वान्छित उपस्थिति भी दी है ।

संस्कृत-विभाग

दिनांक: 25.12.93

शोध - निर्देशक

डॉ0 विशनलाल गौड़ व्योमशेखर

एम0ए0 पी0एच0डी0

व्याकरणाचार्य

प्राचार्य,

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट् कालेज,

अतर्रा (बाँदा) उ0 प्र0

आमुखम्

संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन के प्रति मेरी रूचि प्रारम्भ से ही रही है । मेरे घर का परिवेश संस्कृत भाषा के अध्ययन के अनुकूल रहा है । मेरी दादी सुखरानी देवी एक रामभक्त नारी हैं । आदरणीय पिताश्री शिवप्रसाद गुप्त भारतीय संस्कृति और प्राच्य विद्याओं के उपासक हैं । भारतीय रीति - नीति और धर्म में उनकी व्यापक रूचि है । उनकी सत्प्रेरणा से ही मैंने संस्कृत में एम0 ए0 परीक्षा उत्तीर्ण की थी । इस परीक्षा में मिली उत्तम सफलता से प्रेरित होकर अपने संस्कृत अध्ययन को और आगे बढ़ाने के लिये मेरे मन में शोध करने की बलवती इच्छा जागृत हुई । मेरे आदरणीय पिता जी ने मुझे प्रोत्साहित किया । यह शोध - प्रबंध इसी प्रेरणा और प्रोत्साहन का परिणाम है ।

यह अध्ययन माननीय डॉ0 विशनलाल गौड़, प्राचार्य, अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट् कालेज, अतर्रा जनपद बाँदा (उ0प्र0) के विद्वत्तापूर्ण एवं गवेषणात्मक निर्देशन में सम्पन्न हुआ है । वे संस्कृत विद्या के प्राच्य-पाश्चात्य उभयविध शैली के उद्भत विद्वान हैं । उनका निर्देशन मेरे लिए गौरव की बात है । उन्होंने ही मुझे 'संस्कृत काव्यों में चित्रकूट' विषय पर शोध करने के लिए यह अवसर प्रदान किया है । उनके आशीर्वाद से ही यह शोध कार्य संपन्न हो सका है ।

हमारा देश भारत, तीर्थों का देश कहा जाता है । इसीलिए भारतीय संस्कृति में तीर्थों का अतिशय महत्व खिाई देता है । यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि तीर्थों के समीप

में ही भारतीय धर्म, अध्यात्मवाद, नीति और रीति, विधि - विधान सदाचार और नैतिकता के गुणों का विकास हुआ है ।

यद्यपि हमारा देश भारत महान् है और भौगोलिक रूप से एक अविभान्य इकाई के रूप में रहा है । किन्तु विभिन्न जाति, सम्प्रदाय आदि के कारण लोगों में वाह्च्य रूप से भेद सा प्रतीत होता है । किन्तु हमारे देश के चित्रकूल जैसे तीर्थ राष्ट्र की सांस्कृतिक और भावात्मक एकता निर्माण हेतु अतिशय महत्व के हैं । आसेतु - हिमाचल सम्पूर्ण राष्ट्र की एकता - स्थापन में चित्रकूल जैसे तीर्थों का महत्वपूर्ण योगदान है । इसीलिए हमारे शास्त्रकारों ने प्रत्येक भारतीय के लिए तीर्थयात्रा करने का निर्देश दिया है । उत्तर के निवासी दक्षिण भारत के तीर्थों की यात्रा करें और दक्षिण भारत के निवासी उत्तर भारत की तीर्थयात्रा करें तो स्वतः भावात्मक और सांस्कृतिक एकता स्थापित हो जाती है । और सम्पूर्ण राष्ट्र सांस्कृतिक रूप से भी एक इकाई के रूप में प्रतीत होता है । फिर भारतवर्ष ने तीर्थयात्रा के स्थलों को वहां चुना है जहां प्रकृति में कुछ विशिष्ट रमणीयता और सुन्दरता विद्यमान है । तीर्थों के पवित्र पर्यावरण से तीर्थ यात्रियों के मन की संकीर्णता और एकांगीपन दूर हो जाता है तथा उनमें व्यापक और उदान्त विचारों का उदय होता है । इसलिए तीर्थों का अध्ययन अतिशय रोचक प्रतीत होता है ।

प्राचीनकाल से ही हमारे शास्त्रकारों, कवियों और विद्वानों ने तीर्थों के महात्म्य और वहां के पवित्र पर्यावरण के प्रति अपने प्रशंसापरक वचन व्यक्त किये हैं । वेदों से लेकर महाकाव्य, पुराण, काव्यनाटक आदि ग्रन्थो में तीर्थों के सम्बन्ध में शोधात्मक सामग्री प्राप्त होती

है । आधुनिककाल में भी धर्मशास्त्र के विशिष्ट अध्येता डॉ0 पी0 वी0 काणे, आचार्य बल्देव उपाध्याय, श्री एच0 पी0 शास्त्री डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ0 राधाकुमुद मुकर्जी, पं0 सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, माधवाचार्य शास्त्री, श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, मधुसूदन ओझा, और आधुनिकता में रचे-पचे राष्ट्रनायक पं0 जवाहर लाल नेहरू प्रभृति विद्वानों के विशिष्ट अध्ययन इस शोध प्रबन्ध की पूर्ति के लिए 'कृतवाग्द्वार' की तरह प्रतीत होते हैं ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का शीर्षक 'संस्कृत काव्यों में चित्रकूट' एक पर्यावरणिक एवं सांस्कृति अध्ययन है । जैसाकि सर्वविदित है कि रामकथा संस्कृति की मुख्य धारा है और चित्रकूट उस धारा का सर्वाधिक भावनामय हृदय देश है । इसलिए इस तीर्थ का राष्ट्रीय एकतस के लिए व्यापक महत्व है । तदर्थ चित्रकूट का यह अध्ययन प्रसंगिक है ।

प्रस्तुत अध्ययन से चित्रकूट के विष में विस्तृत शोधात्मक सामग्री प्रस्तुत करने का मेरा संकल्प रहा है । महर्षि वाल्मीकि से लेकर आज तक चित्रकूट चर्चित है, उसका पर्यावरणिक और सांस्कृतिक अध्ययन, प्राचीन काल से लेकर आज तक जिस प्रकार का रहा है, अत्यन्त रोचक है । जिसे इस शोध प्रबंध के माध्यम से प्रस्तुत करने का मेरा शुभ संकल्प अब पुरा हो रहा है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध साल अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय इस शोध प्रबंध का प्रवेश द्वारा है । इसके अन्तर्गत अध्ययन का उद्देश्य एवं दिशा, अध्ययन की विधी, अध्ययन सामग्री के स्रोत, राष्ट्रीय भावात्मक एकता के धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्रों के रूप में तीर्थों का

प्रस्तुतीकरण, भारतीय तीर्थों में चित्रकूट का वैशिष्ट्य और इस तीर्थ का पर्यावरणिक और सांस्कृतिक योगदान इत्यादि विविध विषयों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में तीर्थ यात्राओं का महत्व, तीर्थ संस्कृति और राष्ट्रीय एकता, तीर्थपर्यावरण और सांस्कृतिक एकता, ऋग्वेद से लेकर महाकाव्यकाल तक तीर्थों के संबंध में शास्त्रों के अर्थवाद तथा अतीत भारत के प्रमुख तीर्थों की झाँकी प्रस्तुत की गई है ।

तृतीय अध्याय में मध्य एवं दक्षिण भारत के प्रमुख तीर्थों का परिचय प्रस्तुत किया गया है और उनके राष्ट्रीय भावात्मक और सांस्कृतिक एकता के रूप में योगदान की समीक्षा की गई हैं ।

चतुर्थ अध्याय में भारतीय तीर्थों में चित्रकूट के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला गया है । जिसमें यह बतलाया गया है कि चित्रकूट न केवल बुन्देलखण्ड का प्रत्युत सम्पूर्ण भारतवर्ष का 'देवतात्मा' है और देश की सांस्कृतिक तथा भावात्मक एकता में इसका महत्वपूर्ण योगदान है ।

पंचम अध्याय में रामायण युग के चित्रकूट का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जिसके अन्तर्गत उसकी रामायण कालीन भौगोलिक स्थिति, परिदृश्य एवं पर्यावरण, आन्चलिक जन-जीवन और उसके सांस्कृतिक महत्व को प्रकाशित किया गया है ।

षष्ठ अध्याय में पुराणयुग के चित्रकूट की झाँकी प्रस्तुत की गई हैं । और यह

बतलाया गया है कि अनेक विषयों का प्रतिपादन करने वाले पुराणों में जहाँ - जहाँ रामकथा का वर्णन किया गया है वहाँ - वहाँ द्रुततरगति से पुराणों में चित्रकूट का उल्लेख प्राप्त होता है । पुराणों का चित्रकूट वर्णन रामायणानुसारी है ।

सप्तम अध्याय के अन्तर्गत कालिदास एवं अन्य कवियों की कृतियों में वर्णित चित्रकूट के उल्लेखों की समीक्षा की गई हैं । और यह स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है कि मेघदूत में उल्लिखित 'रामगिरि' वर्तमान चित्रकूट ही है । इसके अतिरिक्त अन्य कृतियों में प्राप्त चित्रकूट के उल्लेखों का दिग्दर्शन कराया गया है । अंत में इस शोध प्रबंध का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है जिसके अन्तर्गत चित्रकूट के अतीत, वर्तमान और भविष्य की संभावनाओं पर दृष्टि डाली गई है ।

पं0 जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय के संस्कृत - विभागाध्यक्ष डॉ0 श्री रामावतार त्रिपाठी जी का भी मैं आभार स्वीकार करती हूँ जिन्होंने मुझे शोधकार्य हेतु अपना आशीर्वाद देकर अनुग्रहीत किया है ।

अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा बाँदा के भूगोल विभाग के प्रवक्ता, डॉ0 श्री रामकिशोर शुक्ल का भी मैं इस अवसर पर ऋणभार स्वीकार करती हूँ जिन्होंने मुझे चित्रकूट सम्बन्धी भौगोलिक - सामग्री - संकलन में सहायता की है ।

शोध - प्रबंध को पूर्ण करने में मुझे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा है और उनसे जो मैं पारलग सकी हूँ, इसे मैं अपने निर्देशक, गुरूजनों, शुभचिंतकों तथा विद्वज्जनों के

आर्शीवाद और शुभचिंतकों तथा विद्वज्जनों के आशीर्वाद और शुभ कामना का ही परिणाम समझती हूँ ।

इस शोध प्रबंध को पूर्ण करने में अनेक विद्वानों के ग्रन्थों, लेखों, और शोध - पत्र पत्रिकाओं से सहायता ली गई हैं । उन सभी विद्वानों और चिंतकों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

अंत में इस शोध प्रबंध के परम देवता गिरिवर 'चित्रकूट' का, जिसका दूसरा नाम कामनाओं को देने वाला होने के कारण कामद्‌गिरि भी है, का स्मरण कर मैं आत्मिक सुख का अनुभव कर रही हूँ :-

'मन्दाकिन्याः पयः, गेयं रामयशोद्ग‌निशम् ।
चित्रकूट गिरौस्थेयं, किं विद्येयमतः मरम् ।।'

सरोजबाला

दिसम्बर

1993

विदुषांवशं वदा

कु0 सरोज बाला गुप्ता

विषयानुक्रमणिका

अ ध्या य – 1

प्रस्तावना

अ. अध्ययन का उद्देश्य एवं दिशा

ब. अध्ययन की विधा

स. अध्ययन सामग्री के स्रोत

द. राष्ट्रीय भावात्मक एकता के धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र

य. भारतीय तीर्थो. में चित्रकूट का विशिष्ट स्थान

र. प्रस्तुत शोध अध्ययन का पर्यावरपिक एवं सांस्कृतिक योगदान

प्रस्तावना

अध्ययन का उद्देश्य एवं दिशा :-

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य बाल्मीकि की रामायणके युग से आज तक संस्कृत साहित्य में लगातार आकर्षण का केन्द्र बने बुन्देलखण्ड की धरती के पावन तीर्थ, चित्रकूट के पर्यावरणिक सौन्दर्य और सांस्कृतिक गौरव का उद्घाटन करना है ।

संस्कृत हमारी प्राचीनतम भाषा है । इसमें हमारा महान राष्ट्रीय साहित्य उपनिबद्ध है । हमारे इस महान राष्ट्रीय साहित्य में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, सम्पूर्ण ब्राह्मण ग्रन्थ आरण्यक ग्रन्थ उपनिषद् ग्रन्थ, नानापुराण, रामायण महाभारत जैसे प्राचीन ग्रन्थ रत्न हैं । इसके साथ ही कालिदास जैसे महाकवियों की काव्य रचनाएं भी आती हैं । उपर्युक्त सभी ग्रन्थ भारतीय मनीषा के देदीप्यमान रत्न हैं । जिस प्रकार हमारा देश महान् हे, इसकी प्रकृति मनोहारिणी है उसी प्रकार हमारे देश भारत का साहित्य भी महान् और गौरव-गरिमा से मण्डित है । भारतवर्ष के ऋषियों, सन्तों, कलाकारों, राजपुरुषों और विचारकों ने जो कुछ उत्तम और महान् दिया है, इस देश के सहस्त्रों वर्षों के इतिहास का जो कुछ सुफल और सौन्दर्य हे, इस देश की बाह्य-प्रकृति एवं अन्तःप्रवृत्ति सम्बन्ध की जितनी विशिष्टताएं है, इस की धर्म और संस्कृति सम्बन्धी जितनी विशिष्टताएं है और इसके आचार-विचारों का जो कुछ श्रेष्ठ सौन्दर्य है उन सबका विराट चित्र संस्कृत के विपुल साहित्य में प्राप्त होता है ।

संस्कृत के इस विपुल साहित्य में जहाँ एक ओर हमें विविध विषय-वस्तु या अनेक प्रकार की विषय-सामग्री प्राप्त होती है वहीं देश के कौने-कौने में फैले तीर्थों का बड़ा ही ललित और मोहक वर्णन उपलब्ध होता है ।

हमारा यह देश तीर्थों का देश कहा जाता है । सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति तीर्थ प्रधान है । तीर्थों के समीप ही धर्म, अध्यात्मवाद, नीति और रीति, विधि–विधान शिष्टाचार और नैतिकता का विकास हुआ है । भारतीय संस्कृति तीर्थों के आस–पास उपजी और बढ़ी है, यह संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है । यदि हम मानव–इतिहास के प्रारम्भ काल में दृष्टिपात करें तो हमें विदित हो जाता है कि सुदूर अतीत में, नदी घाटियों में, भारतीय संस्कृति अंकुरित हुई है । मध्य प्रदेश में गांधी सागर के पास पर्वत श्रेणियों की गुफाओं में मद्रास के समीप पल्लावंरम् में पश्चिमी पंजाब में सोहन नदी की घाटी में उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर रिहन्द क्षेत्र में, मध्य प्रदेश की नर्मदा घाटी में तथा अन्य अनेक भारतीय नदियों के तट में ऐसे उपकरण और दैनिक व्यावहारिक जीवन की अनेक वस्तुएं उपलब्ध हुई हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि यह देश भारतवर्ष सुदूर प्राचीनकाल से ही मानव समूहों की लीलाभूमि रहा है । इन्हीं नदी घाटियों पर स्थित अनेकानेक तीर्थों में भारतीय संस्कृति का उद्‌भव और विकास हुआ है ।

जब पृथ्वी पर यत्र–तत्र सभ्यता का ऊषाकाल हो रहा था तो हमारे देश भारत में तीर्थों के तट से प्रादूर्भूत भारतीय संस्कृति और सभ्यता उत्थान के सोपान पर पदारूढ़ हो रही थी । भारतीय संस्कृति में जो धर्मपरायणता और अध्यात्मिकता दिखाई देती है उसका कारण उसकी तीर्थों से सम्बद्धता प्रतीत होती है ।[1]

तीर्थों के तट पर उपजी भारतीय संस्कृति में धर्म की अभिव्यक्ति अत्यन्त व्यापकता के साथ हुई है । धर्म में ब्रह्म, देवी–देवताओं, धार्मिक क्रिया–विधियों, कर्मकाण्ड, स्वर्ग, नरक तथा अन्य धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन तो है ही परन्तु उनमें उन अनेक नियमों और

---

1. बी.एन.लुनिया : प्राचीन भारतीय संस्कृति, 13

विधि–विधानों को भी सम्मिलित कर लिया गया है जिनसे व्यक्ति के अभ्युदय के साथ–साथ समाज की आधि–भौतिक और अध्यात्मिक प्रगति भी संभव हो जाती है । तीर्थों के तट पर महान पुरुषों ने सत्य का अन्वेषण किया था और उसे अपने जीवन में उतारा था । सत्य और धर्म वह अमूल्य निधि है जिसके सहारे कोई भी व्यक्ति श्रेष्ठतम् ऊँचाई तक अपने व्यक्तित्व का सफल विकास कर सकता है ।[1]

तीर्थों के तट पर ही मुनियों ने कालान्तर में दार्शनिक सिद्धान्तों की सृष्टि की थी भारतीय दर्शन अपने जिन सिद्धान्तों के द्वारा ब्रह्म और जीव, जगत् और माया का रहस्योद्घाटन करता है उन सभी दार्शनिक सिद्धान्तों का शंखनाद तीर्थों के तट पर ही हुआ था । कहना न होगा कि इन दार्शनिक प्रणालियों, सिद्धान्तों और परम्पराओं का आश्रय लेकर ही भारतीय संस्कृति प्रवाहित और विकसित होती रही है । कुछ समय पश्चात् हमारा यही भारतीय–दर्शन राष्ट्रीय जीवन बन जाता है । पुराणों के रचयिता अनेक व्यासगण इतिहासकार, लेखक, कवि, स्मृतिकार, कलाकार मूर्तिकार और चित्रकार इत्यादि सभी अपने कार्यों और कृतियों में उच्च दार्शनिक तत्वों को प्रतिष्ठित करने में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की है । इसीलिए भारतीय समाज में वही काव्य कला शिल्प, ललित कलाएं, नृत्य और नाट्य इत्यादि की प्रवृन्तियाँ समाज में सम्मानित हुई हैं जिनमें धार्मिक और दार्शनिक आदर्शों तथा पुरुषार्थ चतुष्टय की प्रतिष्ठा की गई है ।

हमारा भारतीय समाज और संस्कृति देवपरायण हैं । भारत के तीर्थों का सम्बन्ध अनेक देवी–देवताओं से रहा है । भिन्न–भिन्न तीर्थों में भिन्न–भिन्न देवताओं का सम्बन्ध स्थापित किया गया है जिससे तीर्थयात्रा पर जाने वाला हमारा भारतीय समाज देव परायण हो गया है । इन तीर्थों में बहुदेवतावाद का विकास हुआ है जिसका पर्यवसान वेदान्त के अद्वैतवाद में दिखाई देता है । हमारे शास्त्रों का विश्वास है कि तीर्थयात्रा पर जाने वाला

---

1. दिनकर: संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 10

प्रत्येक भारतीय पापकर्मों से विरत हो जाता है और तब वह ईश्वर के लिए अथवा सार्वजनिक शुभ की प्राप्ति के लिए अपना सब कुछ समर्पण करने की भावना से भर जाता है । प्रत्येक तीर्थयात्री का यह विश्वास होता है कि उसे इस जीवन में जो कुछ प्राप्त हुआ है वह सब कुछ देवकृपा से ही प्राप्त हुआ है । मानव अपने इस जीवन में जिन वस्तुओं का उपभोग, त्याग और दान करता है, वह जिन ऊर्ध्वगामी विचारों और शुभत्व की प्राप्ति के लिए तप और साधना करता है, उन सब में उस विराट् के प्रति समर्पण की भावना संनिहित प्रतीत होती है ।[1]

यह सुविदित है कि तीर्थों के तट पर निवास करने वाले ऋषियों और मुनियों ने भारतीय समाज को जो कुछ एकीकरण और समन्वय की भावना का उपदेश और सन्देश संनिहित है । तीर्थों के तट में ऋषियों ने जिस सत्य का साक्षात्कार किया है वह समन्वयात्मक है । उन्होंने अपने तपोमय अनुसन्धानों और अन्वेषणों के द्वारा अन्य देशों और सम्प्रदायों के सिद्ध ान्तों का भी समादर किया है । उन्हें जो ग्रहण योग्य प्रतीत है उसे वे ग्रहण करते रहे हैं । इसीलिए हमारे तीर्थों में जो समय - समय पर जन समूहों का संगम होता है या मेले लगते है उनमें जाति-पाँति का कोई भेद देखने को नहीं मिलता । सभी नारी-नर परस्पर सौहार्द-भाव से मिलते हैं और वहाँ शान्तिलाभ करते हैं । सम्मिश्रण और सहिष्णुता एकीकरण और समन्वय की भावना हमारे देश के तीर्थों की ही देन प्रतीत होती है । हमारे देश भारत में चारों दिशाओं में बहने वाली प्रमुख नदियों- गंगा, यमुना, गोदावरी आदि नगरियों में काञ्ची, अयोध्या, मथुरा, अवन्तिका आदि पर्वतों में- महेन्द्र, मलय, सह्याद्रि इत्यादि को सब के लिए मान्य बतलाया गया है और इस प्रकार राष्ट्रीय एकता की भावना

---

1. गीता, 9.27

को दृढ़ता प्रदान की गई है । इसीलिए भारत के प्रमुख आचार्यों और संतों ने तीर्थों में जा–जाकर अपने ज्ञान के प्रकाश को वितरित किया है । शंकराचार्य जहाँ–जहाँ गये वे स्थल ही तीर्थ बन गये हैं । राम और कृष्ण के जन्म स्थान और उनकी लीलाभूमि सब तीर्थ हो गये हैं । इनका आदर्श हमारी एकता को सुदृढ़ करता है ।[1]

हमारे देश के तीर्थों के तट पर जिन विचारों का उदय हुआ है उनमें सबके कल्याण की भावना निहित है । प्रायः यह देखा जाता है कि अधिकतर व्यक्ति अपने स्वार्थपूर्ति में संलग्न रहते हैं और अपनी लाभ ही सर्वोपरि समझते हैं । किन्तु तीर्थों में निवास करने वाले हमारे ऋषियों ने सबके कल्याण, सबके सुख, सबके आरोग्य और किसी को पीडा न मिलने की कामना की है ।[2]

हमारी संस्कृति का यही सनातन स्वर रहा है :–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुखभाग्भवेत् ।।

तीर्थों में जहाँ इस प्रकार के उदात्त विचार प्रस्फुटित हुए है वहाँ का पर्यावरण निश्चित रुप से प्रदूषण मुक्त, परम पवित्र शान्त, संयत और जन समूह को आकर्षित करने वाला रहा है । संस्कृत साहित्य में जहाँ–जहाँ तीर्थों का वर्णन किया गया है वहाँ–वहाँ

---

1. सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी : सारस्वत संदर्शनम् पृ0 15
2. डा0 शिव बालक द्विवेदी, भारतीय संस्कृति, पृ0 13

पर्यावरण भी आकर्षण की वस्तु रहा है । कल–कल निनाद करती हुई पवित्र नदियाँ, पर्वतों से झर–झर प्रवाहित होते हुए निर्झर और निर्झरणियाँ, गिरि–गह्वर, पर्वत–कन्दराएं, गगनचुम्बी, पर्वत शिखर–मालाएं अनेक प्रकार की लताओं और बहुविध पुष्पित पादपों से युक्त वन कान्तार–प्रदेश किस तीर्थयात्री के मन को आकर्षित नहीं कर लेते । संस्कृत–साहित्य में वर्णित तीर्थों का पर्यावरण इतना मनोहारी और प्रदूषणमुक्त रहा है कि वहाँ देश के मनीषी– ऋषिगण, सपरिवार निवास करते रहे हैं । तीर्थों का यह शान्त वातावरण ही ऐसे उदात्त विचार देने के लिए ऋषियों को सदैव प्रेरित करता रहा है । पर्यावरण का जनसामान्य पर जो प्रभाव पड़ता है वह अप्रतिम है । पर्यावरण का तात्पर्य उस वातावरण से है जो हमारे चारों ओर फैला हुआ है । यह चारों ओर का वातावरण प्राकृतिक अवस्थाओं और दशाओं का एक सम्मिलित रुप है जो धरातल, जल, वायु, मिट्टी, हवा तथा पानी से निर्मित है । हमारे देश के प्रायः सभी तीर्थ प्रकृति की सुरम्य स्थली में स्थित रहे हैं जिनका पर्यावरण परम शान्त धीर और गम्भीर और परिशुद्ध रहा है ।

बड़े–बड़े नगरों में जो प्रदूषण देखने को मिलता है वहाँ न केवल शारीरिक स्वास्थ्य प्रत्युत मानसिक शानित की स्थिति निरन्तर बिगड़ रही है । महानगरों में रहने वाले लोग शान्ति के अभाव में अशान्त दिखाई देते हैं । उनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ रहा है मानवीय संवेदनाएं विलुप्त हो रही हैं । वे इमारतों के जंगल से घिरे हुए हैं जहाँ प्राण वायु का अभाव है और जहाँ स्वच्छता की सांस भी नहीं ली जा सकती, जिसके कारण महानगर के लोग आज अपने मन के क्रूरतम भावों को प्रकट कर रहे हैं । महानगरों का पर्यावरण पूर्णरुप से प्रदूषित हो गया है । ऐसे वातावरण में मनुष्य के मन में उदारता, दया, कारुण्य, दाक्षिण्य और पर दुःख–कातरता के भावों का उदय कैसे हो सकता है ।

महानगरों की संस्कृति संकीर्ण और संकुचित हो गई है उसका कारण पर्यावरण का प्रदूषण ही प्रतीत होता है । वातावरण पृथ्वी पर वह परवृन्ति है जो मानव को चारों ओर से घेरे हुए है ।[1]

जब हम महानगरों से दूर नदी–घाटियों और पर्वत–मालाओं के मध्य स्थित देश के पवित्रतम भूभागों की ओर चल पड़ते हैं, जिन ऐसे परम रमणीय स्थलों को मनीषियों ने तीर्थ की संज्ञा दी है वहाँ पहुँचकर मानव को परम शान्ति प्राप्त होती है । यहाँ का पर्यावरण नितान्त निर्मल, परिशुद्ध, शान्त और गंभीर है । हमारे देश की संस्कृति का विकास तीर्थों से हुआ है इसीलिए वह धर्मपरायण अध्यात्मिक, दार्शनिक, देवात्मवादी, समन्वयमूला अनेकता में भी एकता स्थापित करने वाली और सबका कल्याण चाहने वाली बन सकी है ।

किसी देश के निवासियों के जीवन पर उस देश की प्राकृतिक परिस्थितियों का बहुत प्रभाव पड़ता है । देश के वातावरण का वहाँ के निवासियों की शारीरिक आकृतियों पर उनके मानसिक और शारीरिक विकास तथा उनके कार्यों पर अत्यन्त गुरुतर प्रभाव पड़ता है, वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ देशवासियों के रहन–सहन, रीति–रिवाज, वेश–भूषा, मानसिक, उत्थान–पतन को अत्यधिक प्रभावित करती है । भौगोलिक परिस्थितियाँ मनुष्य के विकास और उसकी सभ्यता तथा संस्कृति को पुष्पित और पल्लवित करने में सहायक होती है । प्राकृतिक दशा उस देश के निवासियों को बहुत प्रभावित करती है । अधिक वर्षा ने ही इस देश को कृषिप्रधान देश बना दिया है । उन्तर–पश्चिम के दर्रो ने ही भारत में विदेशियों के आक्रमण का द्वार खोल दिया है । इसलिए यह सत्य है कि मानव

---

1. डा0 वी.एल.शर्मा, पर्यावरण, पृष्ठ 4

का विकास प्रकृति से प्रभावित और नियन्त्रित है ।[1] प्राचीन काल में नदियों की घाटियों में स्थित तीर्थों ने मानव सभ्यता और संस्कृति के नये द्वार उद्घाटित किये हैं । जिनमें विश्व के कल्याण की भावना सन्निहित है । तीर्थों में रहने वाले अनेकानेक ऋषि परिवारों ने अपने अगाध चिन्तन और मनन के द्वारा भारतीय संस्कृति का ताना–बाना बुना है । तीर्थों में स्थित शान्त आश्रमों में रहकर उन्होंने अध्यात्म विद्या का जो शंखनाद किया है उसकी ध्वनि आज भी विश्व में सुनाई दे रही है । तीर्थो में उन्हें ऐसा वातावरण मिला है जिसमें उनमें खोज की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती रही है मुनियों ने अपने अथक परिश्रम, बुद्धि, विवेक, अनुभव, लगन और सहिष्णुता आदि के कारण तीर्थो से ही भारतीय संस्कृति के विकास का प्रकाश विश्व को दिया है । यद्यपि किसी जाति की सभ्यता और संस्कृति के विकास के मूलाधारभूत कारण केवल प्रकृति ही नही है प्रत्युत अन्य हेतु भी कारण माने जाते हैं किन्तु प्राकृतिक पर्यावरण इस हेतु जितना सहायक साधन प्रतीत होता है, उतना अन्य नहीं ।

प्रारम्भिक काल में नदी घाटियों में जिन सभ्यताओं का विकास हुआ था । वह उस क्षेत्र के पर्यावरण की ही कहानी है । मानव समूहों का विकास उस क्षेत्र के पर्यावरण का आभास कराता है कहाँ पर मानव अधिक विकसित था और कहाँ पर वह अविकसित था यह तथ्य पर्यावरण के संबंध में विचारणीय है ।[2]

---

1. राधाकुमुद मुकर्जी, हिन्दू–सभ्यता, पृ0 303
2. पर्यावरण एक भौगोलिक अध्ययन, पृ0 17

भारत में प्रकृति हर्ष और उल्लास से मुस्कराती है । यहाँ की प्रकृति में विविधता है । यहाँ के पर्वत, उपत्यकाएँ, वन, नदी, मैदान आदि में प्रकृति का सौन्दर्य बिखरा पड़ा है । उसमें रंगों की प्रचुरता, विभिन्नता और कोमलता का प्राधान्य है । हमारे देश भारत में प्रकृति का एक सा रुप या भयंकर बीभत्स रुप नहीं है । प्रकृति की इस बहुरंगी विविधता, कोमलता और सौन्दर्य का प्रभाव यहाँ के निवासियों के जीवन पर पड़ा है । इसलिए यहाँ के निवासी साहित्यकार, कलाकार और साधारण जन भी प्रकृति के पुजारी भक्त और उपासक हो गये हैं । सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में यदि दृष्टिपात किया जाए तो विहित होता है कि संस्कृत के कवियों ने प्रकृति से अपने अनुपम प्रेम को प्रदर्शित किया है । कविकुल –गुरु कालिदास के काव्यों का प्रारम्भ तो प्रकृति के पवित्र अञ्चलों में होता है । कालिदास अपने महाकाव्य कुमार संभव के प्रारम्भ में नगराधिराज हिमालय का वर्णन करते है और उसे अपने देश भारत की उत्तर दिशा में स्थित देवतात्मा के रुप में प्रतिष्ठित करते हैं । पर्वतराज हिमालय दोनों भुजाओं से पूर्व और पश्चिमी समुद्र के स्पर्श करता हुआ इस प्रकार छाया हुआ है । जैसे वह पृथ्वी का मानदण्ड हो ।[1]

हिमालय के परम रमणीय और प्रशान्त प्रदेशों से कविकुलगुरु कालिदास इतने

---

1 . कुमारसंभव 1 · 1

प्रभावित होते हैं कि वे उसे देवभूमि कहकर पुकारते हैं :- पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः[1]

रघुवंशियों ने जिस विशाल देश पर शासन किया था वह कालिदास की भारत भूमि है । कलिदास ने रघुवंश में जिस भारत-भूमि का वर्णन किया है वह दक्षिण में समुद्र तक फैली हैं - आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ।[2] उसके उत्तर में नगाधिराज हिमालय द्वारा विभाजित समुद्र मेखला भारत-भूमि ही वह महान् राष्ट्र है जो कालिदास की अमर वाणी में अपने सम्पूर्ण अध्यात्मिक और आधिभौतिक वैभव के साथ प्रकट हुआ है । संस्कृत के कवि शिरोमणि की ऐसी कविता का जन्म प्रकृति के कोमल और शान्त अञ्चल में ही हो सकता है ।[3]

हमारे देश भारत में अनेक प्रकार की विविधताएं दिखाई देती हैं । सामाजिक रूढ़ियों परम्पराओं और विधियों में परस्पर बहुत अन्तर है । रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, रीति-रिवाज, मानसिक संगठन और विचारधाराएं तथा दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न है । इस कारण यहाँ अनेकता और विषमता दिखाई देती हैं । इसलिए कुछ पाश्चात्य विद्वानों

---

1. कुमार0 5.45
2. रघुवंश, 1.4
3. डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, कालिदास की लालित्य योजना, पृ0 1-2

का यह कथन है कि भारत में एकता नहीं अर्थात् इसमें मौलिक एकता का अभाव है । उनका यह भी कथन है कि यहाँ आधुनिक राष्ट्रीय भावना भी नहीं है और यहाँ विभिनन संस्कृतियाँ विकसित हुई हैं । किन्तु यदि भारतीय संस्कृति और उसके व्याख्याता संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थ रत्नों का अनुशीलन और परिशीलन किया जाए तो उससे विदित होता है कि यहाँ विविधता और अनेकता के पीछे आधारभूत अखण्ड मौलिक एकता विद्यमान है । भारत की विभिन्नता और विविधता के कारण उसकी आन्तरिक विशालता है । बाहरी विभिन्नता उसकी आन्तरिक मौलिक एकता का विरोध नहीं करती । यह कहना अतिश्योक्ति नहीं है कि भारत देश के इस विविधतारुपी आवरण में उसकी अखण्ड मौलिक एकता अन्तर्निहित है । लोगों को बाहर से विषमता और अनेकता दिखाई पड़ती है परन्तु सूक्ष्म निरीक्षण करने पर उसमें सारभूत मौलिक एकता भी दिखाई देती है ।

हमारा देश भारत विचार करने पर एक सम्पूर्ण भौगोलिक इकाई प्रतीत होता है । उत्तर में स्थित हिमालय पर्वत और दक्षिण में स्थित रत्नाकर के बीच विद्यमान प्रकृति ने ही इस विशाल देश का निर्माण किया है । यह भौगोलिक एकता इतनी सुदृढ है, कि वह देश के आन्तरिक विभाजनों को आवृत्त कर लेती है । भारत की यह भौगोलिक एकता मात्र प्राकृतिक नहीं रही है प्रत्युत वह भारतीयों की बौद्धिक एकता और भावनात्मक एकता का भी हेतु रही है । इसीलिए संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों रामायण और महाभारत में

अष्टादश पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों में इस देश की एकता का वर्णन किया गया है और यहाँ के निवासी भारतीयों के लिए "भारती संतति" की संज्ञा प्रदान की गई है :

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्च दक्षिणम् ।
वर्षं तद्भारतंनाम भारती यत्र संततिः ।।[1]

संस्कृत साहित्यानुशीलन से यह विदित होता है कि यहाँ सदैव से धर्मवेत्ताओं, वेदान्तियों, दार्शनिकों, साहित्यकारों, कवियों और विचारकों के सामने भारत की मौलिक एकता की भावना विद्यमान रही है । संस्कृत के कवियों ने सहस्रों योजन विस्तीर्ण उस देश का उल्लेख किया है जो हिमालय से समुद्र तक फैला था और जहाँ चक्रवर्ती सम्राट राज्य करते थे । संस्कृत कवियों ने उन राजाओं और सम्राटों की गाथाएं गायी हैं जिन्होंने उत्तर में हिमालय से दक्षिण में समुद्र तक एक छत्र साम्राज्य सुख का अनुभव किया था ।[2]

संस्कृत साहित्य के अध्ययन से यह भी विदित होता है कि अति प्राचीन काल से ही हमारे देश भारत में सांस्कृतिक एकता विद्यमान रही है । सर्वत्र और भारत में सभी प्रान्तों में भारतीयता और भारतीय संस्कृति सामान रुप से प्रतिष्ठित है ।

---

1. विष्णुपुराण, 3.1

2. रघुवंश, 1.5

सम्पूर्ण देश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का मौलिक आधार एक समान ही है । देश के सभी भागों में जातिभेद, वर्ण व्यवस्था, संस्कार-अनुष्ठान, सांस्कृतिक धारणायें और परम्परायें इत्यादि समान रुप से प्रचलित हैं । यद्यपि भारत में विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय और मतों का प्रचलन दिखाई देता है, परन्तु सूक्ष्म निरीक्षण से यह विदित हो जाता है कि वे सभी भारत के मूल प्राचीन अध्यात्मिक तत्वों और सिद्धान्तों से ही निकले हैं क्यों सभी के दार्शनिक और नैतिक सिद्धान्त समान है । उनकी नैतिक मान्यताएं और आचार–विचार के नियम लगभग एक समान है । बहुसंख्यक भारतीयों के दार्शनिक विचार भी लगभग एक समान है । एकेश्वरवाद आत्मा का अमरत्व, कर्म, पुनर्जन्म, मायावाद, मोक्ष, निर्वाण भक्ति आदि सिद्धान्त सभी धर्मों की समान निधि हैं । धार्मिक संस्कार विधियों और कर्मकाण्ड में भी समानता है । सभी भारतीय प्राचीन धार्मिक शास्त्रों और ग्रन्थों को आदर की दृष्टि से देखते हैं । वे समान रुप से वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत, पुराण स्मृतिग्रंथ और धार्मिक ग्रन्थों के प्रति श्रद्धाभाव रखते हैं । ये सम्पूर्ण देश में पढ़े जाते हैं तथा समान रुप से सम्मानित किये जाते हैं । गंगा, गौ और गायत्री सभी स्थानों पर पवित्र माने जाते हैं । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, लक्ष्मी पार्वती और सरस्वती आदि पुराण प्रतिपादित देवी–देवताओं की पूजा सभी स्थानों पर होती है । शिव और विष्णु के मन्दिर उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक स्थित हैं । तीर्थस्थानों और पवित्र नदियों को उत्तर से दक्षिण

तक प्रत्येक भारतीय सम्मान और श्रद्धा के साथ देखता है । हमारे सर्वाधिक पवित्र तीर्थस्थान उत्तर में वद्रिकाश्रम, पश्चिम में द्वारिका, दक्षिण में रामेश्वरम् और पूर्व में जगन्नाथ तथा मध्य देश में रघुपति के वन्दनीय चरणों से अंकित चित्रकूट है ।[1] हमारा सम्पूर्ण देश भारत प्रायः इन्हीं तीर्थो के अन्तर्गत आ जाता है । ये तीर्थ भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक एकता के प्रतीक और प्रमाण हैं । प्रत्येक हिन्दू इन तीर्थ स्थानों में जाता है और देवदर्शन करता है इससे वह अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है । हमारे धर्मशास्त्र में मोक्ष प्रदान करने वाली पुरियों का वर्णन किया गया है जो सम्पूर्ण देश में फैली हुई है जो हमारी राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ कर रही है । ये पुरियां हमारे देश के विभिन्न तीर्थ ही हैं :-

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ।।[1]

कहना न होगा कि हमारे तीर्थों की सर्वस्व और पवित्र नदियाँ सम्पूर्ण देश में फैली हुई है । हम प्रतिदिन दैनिक प्रर्थना में उनका स्मरण करते हैं जिससे राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ होती है । भारत में बहने वाली सिन्धु गंगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, काबेरी आदि नदियाँ विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित हो रही हैं :-

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु काबेरि जलेऽस्मिन संनिधम् कुरु।।

---

1. कूर्म पुराण- 10.15

हम इन्हें पवित्र और पूजनीय मानते हैं । इन्हीं के तट पर हमारे देश के बड़े–बड़े तीर्थ विद्यमान हैं । सम्पूर्ण भारतीयों की अन्तिम इच्छा यह होती है कि मृत्यु के बाद उसकी अस्थियाँ प्रयाग में, त्रिवेणी में, काशी या हरिद्वार में गंगा में प्रवाहित की जाएं । पहाड़ों का निवासी हरिद्वार से गंगाजल लेकर आज भी दक्षिण में रामेश्वरम् तक पैदल जाता है । यह सब कार्य–कलाप भारत की साँस्कृतिक और भावात्मक एकता के प्रबल प्रमाण है ।[1]

सम्पूर्ण भारत में सामाजिक एकता भी दर्शनीय है । यहाँ सर्वत्र वर्णव्यवस्था और आश्रम व्यवस्था से समाज बंधा हुआ है । आज भी समाज का मौलिक आधार वर्णव्यवस्थं है । संस्कृत–साहित्य के अवगाहन विगाहन से यह प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण देश के निवासियों के संस्कार विवाह विधियों, उत्सव, मेले, सामाजिक रुढ़ियाँ परम्परायें और तीर्थ यात्राओं का प्रचलन एक समान है । जो भारतीय समाज की एकता को अभिव्यक्त कर रहे हैं ।

प्राचीनकाल में हमारे देश भारत में भाषा और कला की भी एकता विद्यमान रही है । प्राचीनकाल में संस्कृत भाषा और प्राकृत भाषाओं में अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना हुई है । चार वेद, ब्राह्मण, ग्रन्थ, आरण्यक ग्रन्थ, उपनिषद ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, अष्टादश पुराण अनेक महाकव्य और नाटक संस्कृत भाषा में ही रचे गये थे । आज भी संसकृत के ग्रंथ समग्र राष्ट्र में बड़ी रुचि के साथ पढ़े जाते हैं । रामायण और महाभारत तथा वैदिक

---

1. सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी : सारस्वत–सन्दर्शनम्, पृ0 15

साहित्य तथा संस्कृत साहित्य के कवियों के काव्य और महाकाव्य दक्षिण में उसी प्रकार लोकप्रिय रहें हैं जिस प्रकार ये उत्तरीभारत में सुप्रसिद्ध रहे हैं । भारतवर्ष में बोली जाने वाली प्रायः सभी भाषाओं को संस्कृत ने प्रभावित किया है । कहना न होगा कि भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा रही है । इनके साहित्य में समानता है क्योंकि उनकी प्रेरणा का मूलस्रोत समान है । रामायण, महाभारत और पुराणों की गाथाएं उनके नायकों के जीवन, देवी-देवताओं के वृत्तान्त सभी भाषाओं के साहित्य के मुख्य विषय है । भारत विरचित सभी साहित्यिक ग्रन्थों में भारतीय अध्यात्मवाद का प्रकाश दिखाई देता है । उनका जीवन दर्शन एक समान है । उनके साहित्य के और अंग और अलंकार, प्रकृतिचित्रण और विषय-निरुपण एक समान है । इसी प्रकार यहाँ की कला धर्म और नीति में फली फूली है ।[1] गगनचुम्बी शिखर वाले मन्दिर, देवी-देवताओं तथा सन्तों की मनोहारी मूर्तियाँ कश्मीर से कन्याकुमारी तक और असम से गुजरात तक उपलब्ध होती है । सर्वत्र विभिन्नता में एकता झलक रही है । यह एकता तीर्थ संस्कृति की देन है । यहाँ की पवित्र नदियों अभ्रल्मिह पर्वतशिखरों, पावन, सरोवरों, पवित्र आश्रमों, धर्मक्षेत्रों में स्थित पवित्र तीर्थों के पवित्र वातावरण में हमारे देश की अन्तर्निहित एकता का गुम्फन किया गया है । अनेकता में एकता का ताना-बाना बुना गया है ।

प्रस्तुत अध्ययन की यही दिशा इस अध्ययन का उद्देश्य और प्रयोजन है । हमारा संस्कृत साहित्य और हमारे देश के चित्रकूट जैसे तीर्थ दोनों का ही देश की सांस्कृतिक और भावात्मक एकता में महत्वपूर्ण योगदान है । यह वास्तव में हमारी एकता का सबसे बड़ा स्रोत है, इस स्रोत की पहचान जिसे नहीं है वह भारत को पहचान नहीं

---

1. डा० रामजी उपाध्याय : भारतीय संस्कृति, पृ० 25

सकता । यह विचार किसी रुढ़िवादी संस्कृत के पण्डित का नहीं है बल्कि आधुनिकता में रचे-पचे राष्ट्रनायक पं0 जवाहरलाल नेहरु का है उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "भारत की खोज" नामक पुस्तक में कहा है कि संस्कृत साहित्य और भारतीय संस्कृति के केन्द्र हमारे ये तीर्थ समग्र राष्ट्रीय जीवन के जीवन्त प्रतीक हैं । संस्कृत काव्यों में ही नहीं, देश की अन्य भाषाओं के काव्यों में रामकथा संस्कृति की मुख्य धारा है । बाल्मीकि ने सत्य कहा है कि जब तक इस भूतल में पर्वत रहेंगे और नदियाँ प्रवाहित होती रहेंगी तब तक रामायण कथा लोक में प्रचलित रहेंगी :-

यावत् तिष्ठन्तिगिरयः सरितश्च मछीतले ।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।।[1]

चित्रकूट इस रामकथा- संस्तुति की मुख्यधारा का सर्वाधिक भावनामय हृदयदेश है । इसलिए परम-पवित्र चित्रकूट तीर्थ का राष्ट्रीय एकता के लिए व्यापक महत्व प्रतीत होता है ।

यदि हम भौगोलिक दृष्टि से विचार करते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि चित्रकूट भारत का हृदय देश है । यह उत्तर दक्षिण पूर्व और पश्चिम को मिलता है और सांस्कृतिक एकता का रससंचार भी करता है । चित्रकूट की प्राकृतिक शोभा अपूर्व है उसके समीप प्रवाहित होने वाली पुण्य तो या मन्दाकिनी पयस्वनी नदी का कल-कल निनाद

---

1. वाल्मीकि रामायण - 1.5.30

इस शोभा को और बढ़ा देता है । यहाँ के समीपवर्ती वन–कान्तार, पशु–पक्षी, लता पादप सब मिलकर इसे परम रमणीय बना देते हैं । जिस प्रकार रामकथा की रमणीयता भारतीय जनमानस के अन्दर अत्यन्त गहराई से प्रविष्ट है और उसके श्रवण से जिस प्रकार अन्तर्मय विकसित होता है तथा चिन्त में सत्य का उद्रेक होता है उसी प्रकार चित्रकूट का प्राकृतिक सौन्दर्य विश्व जनमानस को आकर्षित कर रहा है । इसीलिए अनेक ऋषियों ने और विशेष रूप से महर्षि भरद्वाज बाल्मीकि प्रभृति ऋषियों ने रामकथा के और भारत राष्ट्र के परम पूज्य नायक राघव राम को चित्रकूट में निवास हेतु परामर्श देते हैं ।

चित्रकूट पर्वत की शोभा अद्भुत है । अपनी प्रियतमा सीता के साथ चित्रकूट में निवास करते हुए श्रीराम को अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है । वे चित्रकूट का दर्शन कर अयोध्या को भूल जाते हैं ।[1] श्रीराम का कथन है कि इस परम रमणीय गिरिवर को देखकर मुझे अयोध्या के राज्यपद की अप्राप्ति, दुःख नहीं देती, मित्रों का अभाव कष्ट नहीं देता । यह गिरिवर सुन्दर धातुओं से विभूषित और नाना द्विजगणों से युक्त मुझे आकर्षित कर रहा है ।[2]

चित्रकूट गिरि की प्राकृतिक शोभा अपूर्व है । कहीं पर उसके शिखर रजत के समान नवल और धवल हैं और कहीं पर वे शोणित के समान रक्तवर्णी है । चित्रकूट के कुछ शिखर पीत और मंजिष्ठ वर्ण के हैं, और कुछ मणि के समान कांतिमान् हैं । इस गिरिवर के कुछ शिखर नाना प्रकार के कुटज और केतकी के पुष्पों से सुशोभित हो रहे हैं,

---

1. बाल्मीकि रामायण 2/94/3

2. बाल्मीकि रामायण, 2.94, 3–4

और कुछ प्रकाश से धवलतर प्रतीत हो रहे हैं । इस पर्वत में अनेक मृग, नगराज, वृक्ष और भल्लूक, निर्भय होकर विचरण कर रहे हैं । इस पर्वत में लगे हुए वृक्षों की शाखाओं में बैठे हुए शकुनिकुल अपने कलरव से संगीत की सृष्टि कर रहे हैं । आम्र, जम्बु, लोध्र, प्रियाल, पनस, धव, अंकोल, बिल्व, तिन्दुक, बेण, मधूक, तिलक, बदरी, आमलक, नीप, वेत्र इत्यादि पुष्पों से युक्त और फलों से भरे हुए छाया वाले मनोरम द्रुमों से यह पर्वत अपनी शोभा और श्री की वृद्धि कर रहा है । चित्रकूट के इन रमणीय रौल प्रदेशों में काममोहित किन्नरों के जोड़े रमण सुख को प्रापत कर रहे हैं । यहीं पर चित्रकूट की प्राकृतिक शोभा से आकर्षित विद्याधरों की नारियाँ अपने मनोरम क्रीड़ा प्रदेश का निर्माण कर रही हैा । इस चित्रकूट पर्वत में कहीं–2 पर निकलते हुए निष्पन्द जल–प्रपातों के द्वारा यह शैल ऐसा प्रतीत होता है जैसे मृदुजलधारा को प्रवाहित करने वाला कोई गजराज बैठा है ।

जलप्रपातैरूद्भेदै र्निष्पन्दैश्च क्वाचित क्वचित् ।
स्रवद्भिर्भात्ययं शैलः स्रवन्मद इव द्विपः ।।[1]

इस पर्वत में अनेक प्रकार के पुष्पों से सुगन्धि को प्रवाहित करने वाला गिरि–गह्वर का वायु दर्शकों की घ्राणेन्द्रिय को तृप्त कर प्रसन्न कर रहा है । राम सीता से कहते हैं कि हे सुन्दरि ! यदि तुम्हारे साथ मुणे अनेक शरद् ऋतुओं तक यहाँ रहने का अवसर मिले, तो मुझे अपनी जन्मभूमि का कोई शोक नहीं होगा । हे भामिनि अनेक पुष्प

---

1. वाल्मीकि रामायण, 2.94.13

और फलों से रमणीय और अनेक द्विजगणों से युक्त चित्र–विचित्र शिखरों वाले इस चित्रकूट में मैं तुम्हारे साथ परम आनन्दित हो रहा हूँ :–

बहु पुष्प फलेरम्ये, नाना द्विजगणायुते ।
विचित्र शिखरेह्यस्मिन् रतवानस्मि भामिनि ।।[1]

इसी तारतम्य में राघव राम चित्रकूट की प्राकृतिक शोभा का वर्णन करते–करते थकते नहीं हैं और वे सीता से पूछ बैठते हैं कि हे बैदेहि ! क्या मेरे साथ रहते हुए यह चित्रकूट तुम्हें आनन्दित कर रहा हैं ? यहाँ का भव्य वातावरण और पर्यावरण मन, वाणी और शरीर को पवित्र कर रहा है ? इससे प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल से ही चित्रकूट का मनोरम प्राकृतिक सौन्दर्य लोगों को आकर्षित करता रहा है । न केवल रामकथा के नायक श्रीराम सीता के साथ चित्रकूट के दर्शन कर मुग्ध हो जाते हैं और परम शान्ति का अनुभव करते हैं प्रत्युत वहाँ अनेक सिद्ध ऋषि और मुनि भी उसे अपना तपोवन बनाये हुए हैं । फिर चित्रकूट प्राचीनकाल से ही धर्म और संस्कृति का केन्द्र रहा है और सदैव यहाँ मेला के रुप में जनसंकुल एकत्र होता रहा है । चित्रकूट आकर लोग जाति–पाँति के भेद, देश–प्रदेश, विदेश, भाषा, धर्म, रीति–रिवाज, वर्ण, आदि के लिए विभेदों को भुला कर राष्ट्रीय एकता और भावनात्मक एकता के भाव का सृजन करते हैं ।

चित्रकूट हमारे देश का गौरव है । जिस प्रकार कालिदास के शब्दों में हमारे देश भारत के उत्तर में स्थित नगाधिराज हिमालय देवतात्मा है । उसी प्रकार मध्य देश का परम–पावन पर्वत चित्रकूट बुन्देलखण्ड का "देवतात्मा" है ।

---

1. वा0रा0 21/99/16

आज बीसवीं शताब्दी में जिस प्रकार राष्ट्रीय चेतना के नये आयाम दिखाई देते हैं उसी प्रकार आजकल समाज में आञ्चलिक बोध भी अधिक जागरुक है । अञ्चल विशेष से सम्बद्ध जनसामान्य आज अपनी संस्कृति के स्रोतों को निकटता से पहचानना चाहता है । इन अनेक सन्दर्भों में चित्रकूट तीर्थ को केन्द्र बनाकर किया जाने वाला प्रस्तुत शोध अध्ययन का महत्व और अधिक बढ़ जाता है । आज के बुन्देलखण्ड के लिए चित्रकूट गौरव का सर्वाधिक महनीय प्रमुख केन्द्र है । इसका सुरम्य पर्यावरण आज भी सबको आकर्षित कर रहा है । आञ्चलिक जन और केन्द्र तथा प्रदेश के शासन भी इस ओर आकर्षित हो रहे हैं । चित्रकूट के सांस्कृतिक, धार्मिक और पर्यावरपिक महत्व को समझना-समझाना आज अपरिहार्य और प्रसंगानुकूल प्रतीत होता है ।

<u>अध्ययन की विधा</u> -

प्रस्तुत शोध अध्ययन की विधा विषय-वस्तु के अनुरुप वर्पनात्मक और आलोचनात्मक पद्धति पर आधारित है । इस अध्ययन की प्रकृति गंवेषपात्मक भी है, जिसमें तीर्थश्वर चित्रकूट से सम्बद्ध विषय-सामग्री का यथोचित रुप से मूल्यांकन करने का प्रयास करपीय है । भारत के तीर्थों में अधिकतर यह बात देखने को मिलती है कि वहाँ धर्मान्धता और रूढ़ियों ने अपने चरण जमा लिये है । आज भारतीय समाज और व्यक्ति अभावग्रस्त दिखाई देता है । वह दुःख, दारिद्रय और दैन्य से पीड़ित है । झोपड़ी से लेकर राजमहलों में रहने वाले लोग किसी न किसी अभाव से दीनता का अनुभव कर रहे है । कोई न कोई रोग उनकी सोने की तरह दमकती हुई काया को नष्ट कर रहा है । बुढ़ापा देखकर जनसामान्य दुःखी हो रहे हैं । बढ़ते हुए भौतिकवाद के कदमों से जन-जन का

अन्तर्मन अशान्त हो रहा है । अध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक, दुखों का आघात जनमानस को कम्पित कर रहा है ।[1] आज का जनसामान्य यह समझता है कि तीर्थयात्रा करने से उनके अभाव दूर हो जायेंगे । धर्मान्धतावश वह यह समझ बैठा है कि दुराचरण-परायण लोग भी तीर्थयात्रा से पाप से छुटकारा पा जायेंगे । आज समाज अनेक मनौतियों की पूर्ति के लिए तीर्थयात्रा करना चाहता है । सांसारिक दुःखों और इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है । तीर्थयात्रा से ही वह इनसे छुटकारा पाना चाहता है, यही धर्मान्धता और स्वार्थान्धता आज तीर्थों से जुड़ी दिखाई देती है ।

प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि धर्मान्धता-परक नहीं है । इस अध्ययन के अन्तर्गत तीर्थों का शान्त, निर्मल-स्वरुप तीर्थों की मनोहरणी प्रकृति, वहाँ का निर्मल पर्यावरण और उनके सांस्कृतिक पक्ष की चर्चा का विशेष आग्रह है । अपने विशिष्ट रूप में यह अध्ययन चित्रकूट तीर्थ का पर्यावरणिक और सांस्कृतिक अध्ययन है तथा सामान्य रूप से हमारे देश की भावात्मक एकता बनाने वाली तीर्थों की संस्कृति का अध्ययन है ।

अध्ययन सामग्री के स्रोत :-

संस्कृत साहित्य का कलेवर विपुल है । वैदिककाल से लेकर आजतक संस्कृत में साहित्य रचना प्राप्त हो रही है । वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण साहित्य, आरण्यक साहित्य, उपनिषद्-साहित्य, सूत्रसाहित्य, वेदांग साहित्य, रामायण महाभारत, अष्टादश पुराण, उपपुराण आदिविपुल साहित्य प्राप्त होता है । यद्यपि

---

1. दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ।।
सांख्यकारिका 1.1

वैदिककाल में विरचित वैदिक साहित्य में चित्रकूट का नामोल्लेख प्राप्त नहीं होता है किन्तु विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में तीर्थ शब्द का अनेक अर्थों में उल्लेख किया गया है :-

तीर्थे नार्यः पौस्यानि तस्थुः ।
सुतीर्थमर्वतो यथानु नो नेषथा सुगम् ।[1]

इसीतिलए "तीर्थ" शब्द के प्रयोग के इतिहास को जानने के लिए हमें अपने अध्ययन की यात्रा वैदिक साहित्य से प्रारम्भ करनही है । यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषद ग्रन्थों में तीर्थ शब्द के प्रचुर प्रयोग प्राप्त होते हैं ।[2] इसीप्रकार सूत्र साहित्य में तीर्थ शब्द के प्रयोग प्राप्त होते हैं । पुराणों में तो न केवल तीर्थ शब्द का प्रयोग ही भूयोभूयः हुआ है प्रत्युत तीर्थों का सांगोपांग विवेचन भी उनमें प्राप्त होता है । हमें चित्रकूट का वर्णन रामायण महाभारत और पुराणों से प्राप्त होने लगता है । महाकाव्यों और पुराणों में वर्णित विषय-वस्तु के अनुसार तीर्थों में चित्रकूट का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । महाकाव्य रामायण, पुराणादिक अनुसार चित्रकूट का चित्रण इस शोध अध्ययन का विषयीभूत प्रतिपाद्य विषय है । जिसे यथास्थान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । इस दृष्टि से रामायणादि पुराण साहित्य इस अध्ययन का स्रोत है । चित्रकूट का विस्तृत वर्णन तो हमें महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण में ही प्राप्त होता है । जिसके अनुसार रामकथा और

---

1. ऋग्वेद संहिता, 1.169.6
2. शांखायन ब्राह्मण- 219

रामायण के नायक राघवराम अपनी धर्मपत्नी सीता और भाई लक्ष्मण जी के साथ वनवासकाल में बहुत दिनों तक चित्रकूट में निवास करते हैं । चित्रकूट श्रीराम को इतना आकर्षित करता है कि वह अपनी जनमभूमि अयोध्या के वियोग को भी भूल जाते हैं । चित्रकूट में रहकर उन्हें राज्य की अप्राप्ति बन्धु-बान्धव-वियोग, मित्र-बिछोह, जननी-वियोग आदि दुःखी नहीं कर पाते । सीता के साथ रहते हुए चित्रकूट उन्हें परमानन्द प्रदान करता है । चित्रकूट का प्राकृतिक सौन्दर्य और पर्यावरण इतना नयनाविराम और ललाम है कि राम को दुःखों से विराम मिल जाता है । रामायणकालीन चित्रकूट के अध्ययन के लिए रामायण इस अध्ययन का सबसे बड़ा स्रोत है । इसके अतिरिक्त रामकथा को विषय बनाकर संस्कृत में जितने नाटक और महाकाव्यादि ग्रन्थों की रचना हुई है वे सब इस शोध अध्ययन सामग्री के स्रोतों के अन्तर्गत हैं । कविवर कालिदास अपने महाकाव्य रघुवंशम् में राघव की पुष्पक-यात्रा के सुअवसर पर चित्रकूट दर्शन और वर्णन को नहीं भूलते । उनकी चित्रकूट-दृष्टि और उनका चित्रकूट वर्णन इस अध्ययन के लिए अतिशय महत्व के हैं । उन्होंने अपनी प्रशस्त रचना मेघदूत में भी चित्रकूट को रामगिरि के रुप में चित्रित किया है विरही यक्ष अलकापुरी से निष्कासित होकर रामगिरि (चित्रकूट) के आश्रमों में निवास करता है । कालिदास के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ रामगिरि की व्याख्या चित्रकूट के रुप में करते हैं । रामगिरि (चित्रकूट) के आश्रमों के वृक्ष-स्निग्घ छाया वाले हैं, और जो जनकतनया सीता के स्नान से निकले हुए पवित्र जलों से अभिसिञ्चित हैं :-

यक्षश्चक्रे जनक तनया स्नान पुण्योदकेषु ।
स्निग्धच्छाया तरूषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।।[1]

---

1. मेघदूतम्, पूर्वमेघ, 1.1

चित्रकूट का माहात्म्य संस्कृत के अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होता है । पुराणों में भारतवर्ष के अनेक तीर्थों का विपुल वर्णन किया गया है, जिसमें चित्रकूट का भी महत्वपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है । अभी कुछ समय पूर्व चित्रकूट- "माहात्म्य" नाम से एक पाण्डुलिपि भी प्राप्त हुई है, जो चन्ददास-साहित्य-शोध संस्थान बाँदा में सुरक्षित है । इस अध्ययन के लिए हमें इस अप्रकाशित पाण्डुलिपि से भी सहायता मिली है जिसका उल्लेख- यथोचित स्थान में किया जायेगा । चित्रकूट के भौगोलिक और पर्यावरणिक अध्ययन के लिए एक तो हमनें चित्रकूट जाकर वहाँ के पवित्रतम स्थलों का साक्षात् निरीक्षण और परीक्षण किया है और एतत् कालीन पर्यावरण का भी अवलोकन किया है । किन्तु रामायण कालीन चित्रकूट, पुराणकालीन चित्रकूट, कालीदास कालीन चित्रकूट और भवभूतिकालीन चित्रकूट के पर्यावरणिक और सांस्कृतिक अध्ययन के लिए हमने उन्हीं ग्रन्थों से सहायता ली है और उनके वर्णों के अनुसार ही इस शोध प्रबन्ध के गुम्फन का प्रयास किया है । इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड अञ्चल के विभिन्न महाविद्यालयों के पुस्तकालयों, ग्रंथालयों, शोधपत्र- पत्रिकाओं और अनेक विद्वज्जनों से सहायता लेकर इस अध्ययन को आगे बढ़ाने का प्रयास किया गया है । उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त "क्वचिदन्यतोऽपि" का भी सहारा इस शोध प्रबन्ध के प्रणयन में मिला है ।

राष्ट्रीय भावात्मक एकता के धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र :-

भारतवर्ष बहुत विशाल देश है - स्थान में भी और काल में भी, यह विशाल भूखण्ड जहाँ एक ओर भौगोलिक दृष्टि से सब प्रकार से एक अविभाज्य इकाई है वहीं दूसरी ओर यहाँ धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता दिखाई देती है । यहाँ के निवासी

जातिभेद, वर्णभेद, भाषाभेद, को भुलाकर प्राचीनकाल से ही तीर्थयात्रा परायण रहे है । तीर्थ में जाने वाले लोग चाहे वह जिस जाति और प्रान्त के हों, चाहे वह कोई भी भाषा बोलते हों, एक समान शान्ति का अनुभव करते हैं । तीर्थ यात्राओं से न केवल समग्र राष्ट्र की एकता प्रत्युत सांस्कृतिक एकता बन्धुत्व भावना आदि का उदय जनसामान्य में होता है । तीर्थ भावनात्मक एकता के जनक हैं । जिस राष्ट्र के निवासियों में एकता होती है, मैत्रीभाव और बन्धुत्व का उदय होता है वहीं राष्ट्र उन्नति करते हैं । इस दिशा में तीर्थों का योगदान अविस्मरणीय है । हमारे तीर्थ राष्ट्रीय भावनात्मक एकता के सृष्टा हैं । पृथक-पृथक भाषा और भाव वाले होते हुए लोग भी तीर्थों में जाकर अतिरिक एकता का अनुभव करते हैं । सचमुच हमारे भारतीय तीर्थ धर्म और संस्कृति के केन्द्र हैं । हमारे तीर्थ जैसा कि सर्वविदित है, पर्वतों, नदियों, प्रकृति की सुरम्य घाटियों और पवित्र स्थलों से सम्बन्धित हैं । यहाँ का पर्यावरण अत्यन्त निर्मल परम रम्य और नयनाविराम प्राचीनकाल से ही रहा है । इसीलिए हमारे देश के ऋषि मुनि चिंतक और विचारक यहाँ आश्रम बनाकर रहते थे । कहना न होगा कि इन्हीं तीर्थों के आसपास रहने वाले ऋषिगण ने अपनी ज्ञानगंगा प्रवाहित की थी ।

नगर के कोलाहल से अशान्त भौतिक विपदाओं से व्यथित और परपीडा से दुःखी जन जब इन पवित्र तीर्थों में आते हैं तो उन्हें प्रकृति का सौन्दर्य देखने को तो मिलता ही है, रमणीय पर्यावरण का आनन्द प्राप्त तो होता ही है परन्तु इसके साथ-साथ तीर्थों आश्रमों और तपोवनों में आयोजित संत-सभाओं से आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त होता है । देश के प्रत्येक भाग से लोग तीर्थों में एकत्र मिलते-जुलते है । इससे वे राष्ट्रीय भाईचारे में बँधते हैं । इस तरह से तीर्थों का दर्शन अनेकता में एकता, असमानता में समानता और विश्वबन्धुत्व के विचारों की संसृष्टि करता है । फलस्वरूप समग्रराष्ट्रवासी एक भावनात्मक

एकता सूत्र में आबद्ध दिखाई देते हैं ।

संस्कृति का पटल अतिविस्तृत है । इसका प्रमुख प्रयोजन मानव जीवन को सफल और समुन्नति बनाना है । संस्कृति के दो रुप हैं, एक आध्यात्मिक दूसरा भौतिक । तीर्थों में संस्कृति का आध्यात्मिक रूप प्रस्फुटित हुआ है । इसस मानव के अन्तःकरण और आत्मा के संस्कार, परिष्कार, और सुधार की आशा की जाती है । संस्कृति के इस आध्यात्मिक अंश में धर्म, नीति, विधि-विधान, विधायें, कलाकौशल, साहित्य, मानव के समस्त सद्गुण, शिष्टाचार, मन, बुद्धि, आत्मा आदि का संस्कार और परिष्कार सन्निहित है ।

हमारी तीर्थ-संस्कृति अध्यात्म और धर्म प्रधान है । इस जीवन में व्यक्ति को प्राप्तव्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पदार्थ माने जाते हैं । इन चार पदार्थों में सबसे पहला प्रयोग धर्म का किया गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, अर्थ और काम का विशेषण है । धर्म पूर्वक अर्थ और काम का सेवन ही मानव को मोक्ष प्रदान कर सकता है और फिर मानव मात्र का चरम उद्देश्य आत्म साक्षात्कार द्वारा मोक्ष-प्राप्ति है । आज के इस नितान्त भौतिकवादी युग में धर्म को छोड़ दिया गया है और केवल नग्न अर्थ और काम का सेवन किया जा रहा है । जिससे समाज में विकृति उत्पन्न हो गई है और समाज में आज दुरंत-भोग-लालसा तीव्रता के साथ बढ़ रही है ।[1] अन्त में व्यक्ति भोगलिप्सा के वशीभूत होकर चिन्ता, अवसाद, क्रोध, निराशा और उत्साहहीनता, का पात्र बन जाता है जिससे उसका जीवन ही अर्थहीन हो जाता है । ऐसी स्थिति में हमारे तीर्थ अपनी अध्यात्मिकता के प्रकाश से भटके हुए मनुष्यों के मार्ग को आलोकित करने में सहायक

---

1. सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी : सारस्वत-सन्दर्शनम् पृ0 144

होते हैं । इस प्रकार यह बात सुस्पष्ट हो जाती है कि हमारे यह तीर्थ हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर, अशान्ति से शांति की ओर, असहिष्णुता से सहिष्णुता की ओर, और भेद से अभेद की ओर चलने की प्रेरणा देते हैं । यहीं हमारी भारतीय संस्कृति का मूल प्रतिपादन है । भौगोलिक एकता में बंधा हुआ यह देश तीर्थों के सांस्कृतिक प्रकाश से सांस्कृतिक एकता का भी अनुभव करता है । हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक, कामरुप से लेकर कक्षतक, हमारा यह देश सांस्कृतिक एकता का आनन्दलाभ युगों से कर रहा है । इसमें तीर्थों का योगदान महत्वपूर्ण है ।

आज हमारे देश में धर्मनिरपेक्ष शिक्षा दी जा रही है और हमारा भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्षता पर बल दे रहा है । आज की परिस्थितियाँ नैतिक और अध्यात्मिक उन्नति के लिए योगकारिणी नहीं हे । आज हम लोग चिंता, अभाव, दारिद्रय, निर्ममता एवं अपराध–वृत्तियों से आबद्ध हैं । अतः इन परिस्थितियों में देश का कल्याण चाहने वालों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे उन आचरणों को अवश्य महत्व दें जो हम सभी को संकीर्णता से दूर कुछ क्षणों के लिए उच्च आशयों निर्मलताओं, उदारताओं, महानताओं और अभिकांक्षाओं के प्रति मननशील बनाते हैं तथा भौतिकवाद के व्यापक स्वरूप से तटस्थ रहने की प्रेरणा देते हैं । तीर्थयात्रां इन्हीं संस्थाओं में एक है । आज की इन परिस्थितियों में उन लोगों को, जिन्हें यह विश्वास है कि तीर्थयात्रा से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, पुण्य पाप्त होते हें तथा इस संसार से छुटकारा मिलता है, तीर्थयात्रा को नये ढंग में ढालना होगा ।[1]

---

1. पी.वी. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ0 1506

आज यह देखना आवश्यक है कि तीर्थों में उनकी दान–दक्षिणा ऐसे भ्रष्ट पुरोहितों को न प्राप्त हो जो प्रमादी और ज्ञान रहित हो । आज तीर्थ स्थलों में प्रयुक्त पुजा–पद्धतियों में सुधार की आवश्यकता है । जिससे वहाँ स्वास्थ्य संबंधी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे और प्रदूषण फैलने न पाये ।

धर्मनिरपेक्ष भारत में पुरोहित वर्ग के लोगों को अब यह स्मरण रखना चाहिए कि आने वाली पीढ़ियों में तीर्थ संबंधी वृत्ति समाप्त सी हो जाने वाली है । आज प्राचीन परम्परायें उन्हें तभी सुदृढ़ रख सकती है जबकि वे अपने तथाकथित धार्मिक कार्यकलापां में परिवर्तन करें । प्रमाद और अज्ञानता से दूर हों, और वास्तविक अर्थ में वे यात्री के पथ–प्रदर्शक सिद्ध हों । कुछ लोगों का अब यह विश्वास है कि जैसे–जैसे धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का प्रचार और प्रसार होता जायेगा, वैसे–वेसे अपेक्षाकृत कम संख्या में तीर्थयात्री तीर्थों में एकत्र होंगे । क्योंकि धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का अन्ततोगत्वा यही परिणाम होता है । आज के इस परिवर्तित परिवेश में यदि पवित्र पर्वतों और नदियों तथा सुरम्य स्थलों की तीर्थयात्रा सर्वथं समाप्त हो जाती है तो सचमुच भारत की नैतिक एवं आध्यात्मिक महत्ता और सांस्कृतिक एकता विपत्ति ग्रस्त हो जायेगी ।[1] ऐसे परिस्थिति में सभी शिक्षित भारतीयों का कर्त्तव्य है कि उन सभी को कुछ पवित्र और दिव्य स्थलों की यात्रा कभी–कभी अवश्य करनी चाहिए । इससे हमारी राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता सुदृढ़ बनी रहेगी । स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनेक वर्ष बीत गये हैं । हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी मातृभूमि के कोटि–

---

1. पी.वी.काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ0 1506

कोटि नागरिकों के चरित्र को उठाये और उन्हें सांस्कृतिक रुप से एक बनाये रखें। भारतीय अपने भौतिक स्वरूपों, खाद्य पदार्थो वस्त्रों और आचरणों आदि से विभिन्न रहते हुए भी एकता के सूत्र में बन्धे हुए हैं। इस विशाल राष्ट्र का जनपद या भाग ऐसा नहीं है जिसमें धार्मिक एवं दार्शनिक विचारों में वृद्धि न की हो। यहाँ विरचित साहित्य और कला तथा तीर्थों में उत्पन्न होने वाली नूतन अभिचेतनायें समृद्धि को प्राप्त होती रही है और फिर भारत के किसी एक कौने के निवासियें के भाग्य देश के अन्य भागों से जुड़े रहे हैं। यह सब इस बात की ओर प्रबल संकेत करते हैं कि हम सब एक हैं।

यदि हमें अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता की रक्षा करनी है तो यह अनिवार्य प्रतीत होता है कि हम भारत के दूर–दूर स्थलों और तीर्थों की यात्रा करते रहे। अन्य भागों के लोगों से मिलें, उनके विलक्षण तौर–तरीकों से परिचित हों, उनकी आवश्यकतायें और दुर्बलतायें समझने का प्रयत्न करें, और इस बहाने उनसे मिलकर राष्ट्र की एकता की अभिवृद्धि करें। अतिप्राचीनकाल से हमारे देश में पवित्र दर्शनीय स्थल मन्दिर एवं तीर्थ विद्यमान रहे हैं। जो महर्षियों, मुनियों एवं वीरों की जीवन गाथाओं से संयुक्त हैं। प्रत्येक भारतीय को, जिसे अपने धर्म और अध्यात्मिकता का अभिमान है, अपने जीवन के कुछ दिन पर्वतां पवित्र नदियां और तीर्थस्थलों की जगह में बिताना चाहिए। जब हम तीर्थों में अद्‌भुत प्राकृतिक सौन्दर्य देखते हैं तो हमारा मन आश्चर्य, हर्ष, उल्लास आदि के साथ उर्ध्वगामिनी भव्य–भावनाओं से भर उठता है। प्रकृति की सुन्दर दृश्यावलियाँ मन में एक अविस्मरणीय अनुभूति उद्‌भाषित करती है और विशालता की ओर हठात् उन्मुख हो जाते हैं। मन की संकीर्णता विलुप्त हो जाती है और उसमें प्रकृति सौन्दर्य एवं सुचिता भर उठती है तथा हम बलात् अनन्त के साथ एकरस, एकभाव तथा एकरंग हो जाते हैं। इसलिए हमारे यह तीर्थ

भावात्मक एकता और सांस्कृतिक एकता के प्रतीक हैं । जिनके गौरव को हमें यथावत् बनाये रखना है ।

भारतीय तीर्थों में चित्रकूट का विशिष्ट स्थान :-

तीर्थ शब्द तृ + थ उणादि प्रत्यय लगाकर सिद्ध होता है । तीर्थ शब्द का अर्थ है-- "पापं तरति येन" जिसके द्वारा पाप से तर जाता है अथवा "तीर्यते अनेन" जिसके द्वारा व्यक्ति तर जाता है । इस प्रकार इन अर्थों में तीर्थ शब्द निष्पन्न होता है । अमरकोष में तीर्थ शब्द के अनेक अर्थ बतलाये गये हैं तदनुसार निपान, आगम, ऋषिसेवितजल, उपाध्याय आदि और अयोध्या काशी और चित्रकूट आदि पवित्र स्थलों को तीर्थ कहा है । विश्व प्रकाश कोषकार ने शास्त्र, यज्ञ, क्षेत्र, उपाय, उपाध्याय, मंत्री, अवतार, ऋषि सेवित जल आदि को तीर्थ कहा है । इसी प्रकार मेदिनीकोषकार और आचार्य हेमचन्द्र भी उपर्युक्त अर्थों में तीर्थ शब्द का प्रयोग करते हैं ।[1] विद्वानों ने तीन प्रकार के तीर्थों का निरुपण किया है । जंगम तीर्थ, जिसमें चलता-फिरता साधु समाज अपने सद्वाक्य रुप निर्मल जल से मलिन जलों के मनों को कल्मष रहित कर देते हैं । दूसरा मानस तीर्थ है इसके अन्तर्गत सत्य, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह, दया, सरलता, मृदुभाषण- ब्रह्मचर्य, ज्ञान, दम, घृति, पुण्य, आदि गुण आते है । यह सभी मानस तीर्थ कहे जाते हैं । इनसे मन की शुद्धि होती है । इसीलिए यह

---

1. अमरकोष 31 थान्त 93

मेदिनीकोष 17/2

विश्व प्रकाशकोष- 8

मन को पवित्र करने वाले मानस तीर्थ कहे जाते है ।[1] तीसरे प्रकार के तीर्थों को भौम तीर्थ कहा जाता है । जिस प्रकार शरीर के कुछ अंग पवित्र तथा श्रेष्ठ समझे जाते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के कुछ विशेष भाग परम-पवित्र प्रकृति की सुन्दरता से भरपूर और महत्वपूर्ण हैं । भौमतीर्थ में भूमि का प्रभाव तथा वहाँ के जल का तेज महत्वपूर्ण हेतु बनता है । महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा गया है कि भूमि के अद्भुत् प्रभाव के कारण, वहाँ के जल की तेजस्विता के कारण और सिद्ध महामुनियों के निवास के कारण पृथ्वी के ये पवित्र भू-भाग पुण्यमय तीर्थ कहे जाते हैं :-

प्रभावादुद भूताद भूमेः सलिलस्य च तेजसा ।
परिग्रहान्मुनीनाम् च तीर्थानां पुण्यतामता ।।[2]

तीर्थों की प्रशंसा न केवल पुराण साहित्य में प्राप्त होती है प्रत्युत वेद भी उनकी प्रशंसा करते हैं । ऋक्-परिशिष्ट ने तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने वालों को अभ्युन्नति प्राप्त होने की बात कहीं गई हैं ।[3] इसी प्रकार तीर्थों का महत्व बतलाते हुए अथर्ववेद

---

1. स्कन्दपुराण काण्ड 6

   गरुड़पुराण उन्तरखण्ड 28/10

   नरसिंहपुराण अध्याय 67

2. महाभारत अनुशासन- पर्व 108/19

3. ऋक् परिशिष्ट, सातवलेकर 22.1

का कथन है कि मनुष्य तीर्थों के सहारे भारी से भारी विपत्तियों से तर जाता है । तीर्थों के सेवन से बड़े से बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं । बड़े–बड़े यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले पुण्यात्मा जन जिस मार्ग से जाते हैं –– तीर्थों में स्नान करने वाले भी उसी स्थान से जाते हैं ।[1] ब्रह्मपुराण सम्पूर्ण भारतवर्ष को ही त्रैलोक्य विश्रुत तीर्थ के रूप में वर्णन करता है । यह राष्ट्र हमारी कर्मभूमि है इसलिए यह हमारा तीर्थ हैं ।[2] अत्रि संहिता 55, 56 मत्स्य पुराण, वायु पुराण और महाभारत, विष्णुपुराण, नरसिंह पुराण और वराहपुराण आदि में तीर्थों के महत्व का प्रतिपादन किया गया है । पितर लोग यह इच्छा करते हैं कि हमारे वंश में कोई ऐसा पुत्र होगा जो तीर्थ यात्रा करेगा और गया तीर्थ जायेगा, इस प्रकार उपर्युक्त वर्णनों से यह स्पष्ट है कि भारतीय धार्मिक जीवन में जो तीर्थों का महत्व बतलाया गया है वह केवल अर्थवाद ही नही है । तीर्थयात्रा के जिन अनेक फलों की प्राप्ति की घोषणा तीर्थकारों ने की है उसका निष्कर्ष यह है कि फल प्राप्ति के बहाने ही देशवासी घर से निकलकर देश के एक कौने से दूसरे कौने पर जायें और वहाँ स्थित तीर्थों के दर्शन और मज्जन कर अपने चित्त को शान्त करें, अपने राष्ट्र के सम्पूर्ण भू–भागों से परिचित हों, वहाँ के निवासियों के रीति–रिवाज, भाषा,संस्कृति, धर्म, आचार और विचारों से सुपरिचित हों, जिससे राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक एकता का यह भव्य प्रासाद यथावत् खड़ा रहे ।

ब्रह्म पुराण 70120–21 के अनुसार सम्पूर्ण भारतवर्ष तीर्थमय है । विष्णुपुराण

---

1. अथर्ववेद 18.14.17

2. ब्रह्मपुराण– 70.120–21

के अनुसार हमारे देश की गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी आदि नदियाँ सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है । यह वेदितव्य है कि उपर्युक्त नदियाँ देश की चारों दिशाओं का प्रतिनिधित्व करती है । आज भी आस्तिक भारतीय स्नान के समय इन नदियों का स्मरण करता है :-

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिंधु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।

उसके मन में राष्ट्रीय प्रेम का संस्कार पैदा होता है; हमारी राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ होती है । इसी प्रकार विष्णु पुराण के अनुसार महेन्द्र, मलय, सह्याद्रि, शुक्तिमान, ऋक्षवान्, विन्ध्याचल और पारियात्र ये सात कुल पर्वत परम पवित्र तीर्थ हैं । यह स्मरणीय है कि चित्रकूट पर्वत विन्ध्याचल श्रेणी का ही एक पर्वत खण्ड है ।

वैसे तो सभी तीर्थों की अपनी अलग-अलग विशिष्टता और विशेषता है, रमणीयता और कमनीयता है, किन्तु चित्रकूट तीर्थ मध्य देश का और विशेष रुप से बुन्देलखण्ड का अलंकारभूत देवतात्मा है । जहाँ एक ओर इसका धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व है वहीं इसका दूसरी ओर प्राकृतिक सौन्दर्य भी अद्वितीय है । इसका प्राकृतिक सौन्दर्य इतना अभिराम है कि राम भी इससे आकर्षित हुए बिना नहीं रहे । श्रीराम अपने वनवास काल में सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट में निवास करते हैं । चित्रकूट अपूर्व शोभा वाला है । श्रीराम के लिए चित्रकूट का कोई धार्मिक महत्व नहीं था प्रत्युत वहाँ का शान्त, निर्मल प्राकृतिक सौन्दर्य उन्हें लुभा रहा था । श्रीराम सीता से चित्रकूट की शोभा का वर्णन करते हुए

कहते हैं कि हे प्रिये ! यह चित्रकूट विचित्र है, हे भद्रे ! इस रमणीय चित्रकूट गिरि को देखकर राज्य का परित्याग और मित्रों का अभाव मेरे मन को दु:खी नहीं करता है ।[1]

श्रीराम के शब्दों में चित्रकूट की भव्यता अद्‌भुत है । इसके शिखरों में अनेक प्रकार के पक्षी बैठे हुए हैं और इसके शिखर मानो गगन का चुम्बन कर रहे हैं । चित्रकूट के शिखरों की शोभा कहीं रजत के समान है तो कहीं शोणित के समान रक्तवर्णी है । कहीं पर पीले वर्ण के कहीं पर मंजिष्ठ वर्ण के और कहीं पर सुन्दर मणि के प्रकाश वाले ये शिखर राम के मन को आकर्षित कर रहे हैं ।

पर्यावरणिक एवं महत्व :–

चित्रकूट का पर्यावरण अत्यन्त निर्मल और स्वास्थ्यकर है । यहाँ पर आम्र, जामुन लोध्र, प्रियाल, पनस, धव, अंकोल, बिल्व, तिन्दुक, बेणु, मधूक, तिलक, बदरी, आमलक, नीप, बेत्र इत्यादि नाना प्रकार के फूलों और फलों से लदें हुए छाया वाले मनोरम द्रुम इस पर्वत की शोभा को निरन्तर बढ़ा रहे हैं । श्रीराम सीता से कहते हैं कि हे भद्रे ! चित्रकूट के सुरम्य शैल प्रदेशों में कामी किन्नरों के जोड़े कैसे बिहार कर रहें है । इसे विधाधर की नारियां अपना क्रीड़ास्थल बनाये हुए हैं । अनेक प्रकार के प्राकृतिक जल–प्रपातों से झर–झर शब्द करते हुए निर्झरों के द्वारा यह पर्वत मद जल प्रवाहित करने वाले हाथी की तरह सुशोभित हो रहा है । इस गिरि के निर्झरों से नानापुष्पों की सुगन्धि से सुगन्धित वायु बह रहा है । यह किस व्यक्ति के घ्राणेन्द्रिय को तृप्त कर उसे प्रसन्न न करेंगा ?

---

1. वाल्मीकि रामायण, 94.3

यह चित्रकूट अनेक प्रकार के पुष्प और फलों से भरा हुआ है, परम रमणीय है विचित्र शिखरों वाला और नानाद्विजगणों से युक्त है । इसके विचित्र शिखरों को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, हे आनिन्दित सौन्दर्य वाली सीते । यदि मैं तुम्हारे और लक्ष्मण के साथ अनेक शरद ऋतुओं तक यहाँ निवास करूँ तो भी मुझे अयोध्या छोड़ने का शोक प्रधर्पित नहीं करेगा चित्रकूट निवासी मुझे अमृत के समान मधुर प्रतीत हो रहा है । इस शैल की विशाल सैकड़ों शिलाएं अनेक वर्णों की रंग–बिरंगी छटा लिये हुए सुशोभित हो रही हैं । रात्रि में इस नगराज की औषधियाँ अग्निशिखा की भाँति प्रकाशित हो रही है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह चित्रकूट मानों वसुधा का भेदन करके निकल आया है । चित्रकूट का यह कूट सब ओर से शुभ प्रतीत होता है । यहाँ नर लोक से लेकर किन्नर लोक तक के निवासी मधुर कामफल का सेवन कर रहे हैं ।[1]

इधर दूसरी ओर श्रीराम की दृष्टि में सरिद्वरा मन्दाकिनी की सुषमा भी अपूर्व है । मंदाकिनी का जल शुभ, निर्मल और रमणीय है । इसके पुलिन विचित्र हैं और हंसों के जोड़े तथा सारस पक्षी बैठे हुए हैं ।[2] एक ओर मृगों के झुण्ड इसका जनपान कर रहे हैं और दूसरी ओर बल्कल वस्त्रधारी जटाजूट वाले ऋषिगण मन्दाकिनी के जल में स्नान कर रहे हैं । इसका जल परम रमणीय है जो मन में आनन्द का संचार कर रहा है । चित्रकूट का दर्शन और मंदाकिनी के स्नान को वे नगर निवास से भी अधिक सुखकर मानती हैं :–

---

1. वाल्मीकि रामायण 2/95/3–30
2. वहीं0, 2.95.10–15

तीर्थानि रमणीयानि रतिं संजनयन्ति मे ।

दर्शनं चित्रकूटस्य मन्दाकिन्याश्च शोभने ।

अधिकम् पुरवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात् ।।[1]

मुझे आशा है कि उपर्युक्त सन्दर्भो में विरचित यह शोध प्रबन्ध न केवल चित्रकूट के अध्यात्मिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्वरूप को प्रकाशित करने में सफल होगा, प्रत्युत उसके पर्यावरण और सांस्कृतिक महत्व को भी चित्रित करने में समर्थ होगा । इसके अतिरिक्त इससे राष्ट्रीय एकता के संस्थापन और संवर्धन में इस तीर्थ के योगदान को प्रकाशित करने का प्रयास किया जायेगा ।

---

1. वाल्मीकि रामायण, 2.85.5-12

अ ध्या य – 2

भारत के प्रमुख तीर्थ

अ. उत्तर भारत के तीर्थ

ब. मध्य भारत के तीर्थ

स. दक्षिण भारत के तीर्थ

2

भारत के प्रमुख तीर्थ

हिमालय से हिन्द महासागर तक और अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक फैले हमारे विशाल देश का चप्पा–चप्पा हमारी आस्था के तीर्थों से भरा हुआ है । हमारे इन तीर्थों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इन्हों के दर्शन से हमारे पुरखों ने अपने देश की विशाल धरती को जाना–पहचाना, उनकी यात्राएं करके भिन्न–भिन्न समुदायों के लोग आपस में हिले–मिले और निकटता के सूत्र में बँधते चले गये । हमारे तीर्थों की एक दूसरी विशेषता यह भी है कि हमारे देश में पैदा हुई या बाहर से आयी किसी भी धार्मिक विचारधारा के तीर्थ या पूजाघर देश के किसी एक ही हिस्से में सीमित नहीं रहे हैं । सभी धर्मों के तीर्थ देश के सभी भागों में फैले हुये है । इस दृष्टि से जब हम विचार करते हैं तो हमारे देश का प्रत्येक तीर्थ अपने आप में छोटा सा भारत ही नज़र आता है ।

प्रस्तुत अध्याय में हम सम्पूर्ण भारत में फैले हुये तीर्थों का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण मूलक परिचय प्राप्त कर रहे हैं । इससे हमें अपने देश के प्रमुख तीर्थों की भौगोलिक स्थिति तथा उनके साथ जुड़ी धार्मिक और सांस्कृतिक आस्था का उपयोगी ज्ञान मिल सकेगा । अध्ययन को क्रमबद्ध करने की दृष्टि से हम राष्ट्रीय तीर्थों का विवरण तीन वर्गों में प्रस्तुत कर रहे है :–

1. उत्तर भारत के तीर्थ
2. मध्य भारत के तीर्थ
3. दक्षिण भारत के तीर्थ

उत्तर भारत के तीर्थ

मानसरोवर :-

हिमालय के प्रमुख तीर्थो में मानसरोवर का महत्त्व अत्यधिक है, मानसरोवर कैलाश (हिमालय का एक शिखर) से जुड़ा हुआ है । मानसरोवर हिमालय की एक झील है जो कैलाश के उत्तर एवं गुरला मानधाता के दक्षिण, मध्य में अवस्थित है ।[1] यह मानसरोवर समुद्र से 14950 फुट की ऊँचाई पर है । यह कहा जाता है कि पृथ्वी पर उस क्षेत्र से बढ़कर अन्य स्थान नहीं है, यह क्षेत्र मानसरोवर, कैलाश एवं गुरला मानधाता के नामों से विख्यात है । यह हीरों के मध्य वैदूर्य-मणियों का गुंफन है ।[2] महाभारत वनपर्व 82 और पद्मपुराण आदि में मानसरोवर के महात्म्य का वर्णन बहुधा प्रापत होता है । मानसरोवर में स्नान करने वाला व्यक्ति रुद्रलोक की प्राप्ति करता है ।[3] वाल्मीकि रामायण में महर्षि विश्वामित्र श्रीराम से कहते हैं कि हे राम ! कैलाश पर्वत पर ब्रह्मा की इच्छा से विनिर्मित एक सरोवर है, विधाता के मन से निर्मित होने के कारण इस मानसरोवर कहा जाता है ।[4]

हिमालय पर्वत की तीर्थयात्राओं में मानसरोवर कैलाश की यात्रा दुर्गम बतलायी जाती है । इसमें समय अधिक लगता है लेकिन तीर्थयात्री को हिमालय का सौन्दर्य, वहाँ की प्राकृतिक रमणीयता हिमाच्छादित रजत के समान चमकती हुई पर्वत-श्रेणियाँ तीर्थयात्री के मन को आकर्षित करती हैं । हिमालय की ऊँची - ऊँची चोटियों में चढ़ता हुआ व्यक्ति न

---

1. महाभारत वनपर्व 130.12
2. वराहपुराण 126.29
3. पद्मपुराण- 21.8
4. वा0रा0 1.24.8

केवल अपने देश की उच्चता का अनुभव करता है प्रत्युत उसे मानसिक उच्चता भी प्राप्त होती है । वह इस देवभूमि को देखकर यह भली-भाँति समझ जाता है कि सचमुच यह भूमि देवभूमि होने के योग्य है ।

मानसरोवर का जल अत्यन्त निर्मल अद्‌भुत और नीलाभ है । यह मानसरोवर 51 शक्ति-पीठों में एक माना जाता है । मानसरोवर हंसों का प्रदेश कहा जाता है इसमें अनेक प्रकार के हंस प्राप्त होते हैं यहाँ राजहंस भी है और सामान्य हंस भी हैं । हंस निर्मलता प्रेमी पक्षी हैं । इनका मन मानसरोवर के बिना कहीं नहीं लगता :[1]

अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीरंनीरजमण्डितम् ।
रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना ।।

अमरनाथ-

अमरनाथ काश्मीर क्षेत्र में है, कश्मीर इस देश का स्वर्ग है । यहाँ की प्राकृतिक छटा मनोहारिणी है, यहाँ अनेक तीर्थ हैं, कश्मीर में एक प्राकृतिक गुफा है, समुद्रस्तर से 16 हजार फुट की ऊँचाई पर पर्वत में यह लगभग 60 फुट लम्बी और 25 से 30 फुट चौड़ी है, इस गुफा में हिम-निर्मित प्राकृतिक शिवलिंग है । यह प्रकृति का अद्‌भुत निर्माण है, जाड़ों में हिम निर्मित यह शिवलिंग आकर्षण का केन्द्र होता है । यह धीरे-धीरे क्षीण होता है, पूर्णरुप से समाप्त नहीं होता । यह अद्‌भुत और आश्चर्यजनक है कि हिमलिंग ठोस और पक्के बर्फ का बना हुआ प्रतीत होता है । अमरनाथ गुफा से नीचे अमरगंगा का जल प्रवाह तीर्थयात्री को आकर्षित करता है, यात्री उस अमरगंगा में स्नान कर अपना जीवन धन्य

---

1. संस्कृत सूक्ति सुधा पृ0 3

बनाता है । प्रत्येक दशा में यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य अपूर्व प्रतीत होता है तीर्थयात्री यहाँ एक अनिर्वचनीय अद्‌भुत सात्विकता और शान्ति का अनुभव करता है ।[1]

वैष्णवीं देवी :-

यह कश्मीर का प्रसिद्ध शक्तिपीठ है यह स्थान जम्मू से 46 मील उन्तर-पश्चिम की ओर एक ऊँची गुफा में स्थित है । नवरात्रि के अवसर पर यहाँ लाखों तीर्थयात्री देश देशान्तर से तीर्थयात्रा में आते हैं वैष्णवी देवी के मूर्तियों के प्रादुर्भाव के संबंध में लौकिक और अलौकिक दन्तकथायें सुनने को मिलती है । पर्वत के शिखर पर गुफा में महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती के मूर्तियों के दर्शन होते हैं, इन मूर्तियों के चरणों से निरन्तर अजस्त्र जलधारा प्रवाहित होती रहती है इसे वहाँ बाणगंगा कहा जाता है । मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत उपलब्ध दुर्गा सप्तशती में वैष्णवीं तीर्थ का महत्व बतलाया गया है । देवी भागवत में भी नवदुर्गाओं के माहात्म्य के सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री प्राप्त होती हैं ।[2] नवरात्र में शक्ति की पूजा की जाती है । तीर्थयात्री शक्ति के पवित्र स्थलों में आते-जाते हैं। शक्ति की साधना से शक्ति प्राप्त होती है । वैष्णवी तीर्थ में प्रकृति सुन्दरी भी अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ प्रकट हुई है । पर्यावरण पवित्र सुखशान्ति प्रदान करने वाला है ।

गंगोत्तरी-

यह हिमालय प्रदेश में स्थित गंगा का उद्‌गम तीर्थ है । गंगा भारत की पविनतम नदी है । ऋग्वेद में सर्वप्रथम गंगा का वर्णन मिलता है । ऋग्वैदिक आर्यों की यह पवित्रतम नदी है ।[3] उन्होंने सर्वप्रयम गंगा का ही आह्वान किया है । ऋग्वेद 6/45/31 में गांग्य शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है, जिसका सम्भाष्य अर्थ गंगा पर वृद्धि

---

1. कल्याण तीर्थांक, पृ0 45
2. देवीभागवत पुराण 3.35
3. ऋग्वद 10.75.5-6

प्राप्त करना है । शतपथ ब्राह्मण 13/5/4/11–13 तथा ऐतरेय ब्राह्मण 39/9 में गंगा के तट पर दुष्यन्त पुत्र भरत की विजयों और यज्ञों का उल्लेख किया गया है ।

गंगा के माहात्म्य एवं उसकी तीर्थयात्रा के महत्व के सन्दर्भ में अनेक ग्रन्थ रत्नों का प्रणयन हुआ है, जो गंगा के अतिशय महत्त्व का वर्णन करते हैं । इन कृतियों में गणेश्वर कृत "गंगा पत्तलक", मिथिला के राजा पदुमसिंह की रानी विश्वास देवीकृत "गंगा–वाक्यावली" गणपति शास्त्री विरचित "गंगाभक्ति तरंगिणी" वर्धमान विरचित "गंगाकृत्यविवेक" और पंडितराज जगन्नाथ विरचित "गंगालंहरी" उल्लेखनीय है ।

गंगालहरी में न केवल गंगा का महात्म्य प्रस्फुटित हुआ है प्रत्युत गंगा का प्राकृतिक सौन्दर्य उसकी पवित्रता गंगातट के पर्वत और वनकान्तार, लताद्रुम, उन्ताल तरंगें, आध्यात्मिक वैभव और देवनदी के पुलिन का अद्‌भुत चित्रण किया गया है । गंगालहरी में पं0 राज जगन्नाथ का अमर कवित्व भी देखने को मिलता है । ऋग्वेदकालीन गंगा, पं0 राज जगन्नाथ को पाकर उनके अनुपम कवित्व से मधुरतम हो गई है । गंगा का पर्यावरणिक और सांस्कृतिक वैभव गान करते हुए पंडित राज जगन्नाथ का कथन है कि यह गंगा सम्पूर्ण वसुधा का समृद्ध सौभाग्य और विधाता का महान् ऐश्वर्य है । यह वेदों का सर्वस्व है, पुण्यात्माओं का परम पुण्य है । सुधा के समान संन्दर गंगाजल अशिव को दूर करने वाला है :–

समृद्ध सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन्
महैश्चर्यं लीलाजनित जगतः खण्डपरशोः ।
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु ।।[1]

---

1. गंगालहरी, 1

पद्मपुराण का कथन है कि पुत्र, पत्नियाँ, मित्र और सगे-संबंधी भले ही उस व्यक्ति का परित्याग कर दें, किन्तु गंगा उन्हें परित्यक्त नहीं करती ।[1]

गंगा में अस्थि-प्रवाह की परम्परा भी अतिप्राचीनकाल से प्रचलित है । सगर के पुत्र ऋषि कपिल के क्रोध से भस्म हो गये थे । इसके पश्चात् भगीरथ के प्रयत्न से गंगा नीचे लायी गई थी, जिसमें सगर के पुत्रों की भस्म और अस्थियाँ प्रवाहित की गईथी, तभी उन्हें स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई थी ।[2] इसलिए श्रीमदभागवत का कथन है कि साक्षात् भगवान यज्ञपुरुष विष्णु त्रिविक्रम के तीन पदक्रमों से पृथ्वी, स्वर्गादि को लांघते हुए वामपाद के अंगुष्ठ से निकलकर उनके चरणपंकज का अवनेजन करती हुई भगवती गंगा जगत् के पाप को नष्ट करती हुई स्वर्ग से हिमालय के ब्रह्मसदन में अवतीर्ण हुई है । वहाँ ये सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नाम से चार भागों में विभक्त होकर चारों दिशाओं में प्रवाहित हुई है । भारत की ओर आने वाली अलकनंन्दा कहलाती है, जो हिमकूट आदि पर्वतों को लांघती हुई भारत में दक्षिण-पूर्व दिशा की ओर बहकर समुद्र में गिरती है ।.

गंगा हमारी राष्ट्रीय अस्मिता की सरिता है उसका भौतिक रुप से मनोहारी और पवित्र है ही, किन्तु उसका धार्मिक और अध्यात्मिक महत्व भी बहुत अधिक है । हमारे देश के अनेक नगर गंगातट पर बसे हैं । आज गंगाजल में इन महानगरों के कारण अत्यधिक प्रदूषण बढ़ गया है, गंगा का चतुर्दिक् पर्यावरण भी प्रदूषित है । तीर्थों में जाकर गंगा का प्रदूषण देखा जा सकता है । इसे देखकर ऐसा लगता है कि आज हमें वही

---

1. पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, 60.25.26
2. महाभारत वनपर्व अध्याय 107-109

पुरानी गंगा चाहिए जिसका प्रत्येक कण पवित्र और निर्मल हो । इस गंगा के किनारे प्राचीनकाल में सघनवन-कान्तार हुआ करते थे नानाप्रकार के पौधों और लताओं तथा पुष्पों के परिमल से इसके तट सुवासित रहते थे । हमारी वही गंगा हमें मिलनी चाहिए ।

हमारी अध्यात्मिक गंगा का विचार आज भी हमारे मनों में पवित्रता की सृष्टि करता है । हमारी यह भौतिकगंगा भले ही आज महान नगरों के प्रदूषण से प्रदूषित हो गई हो, किन्तु जो गंगा हमारे शास्त्रों और विचारों में अवस्थित है वह कभी प्रदूषित नहीं हो सकती । गंगा का विचार ही हमारे मन को पवित्र कर देता है । युगों से यह गंगा हमारी राष्ट्रीय एकता का कारण बनी हुई है, दक्षिणभारत के लोग आज भी उत्तराभारत में आकर गंगाजल में अवगाहन-विगाहन करते हैं अपनी धार्मिक और अध्यात्मिक क्रियायें सम्पन्न करते हैं और गंगा की पवित्रता को अपने मन में बसाते हुए घर वापस लौट जाते हैं । दक्षिण भारतीयों की इस तीर्थयात्रा से उत्तर दक्षिण की एकता की भावना सुदृढ़ होती है । गंगा हमारी भावनात्मक एकता का भी कारण बनी हुई है । उत्तर से दक्षिण तक फैले हुए हिन्दुओं की भावनायें गंगा से जुडी हैं जन्मकाल से लेकर अन्त्येष्टिकाल तक गंगा हिन्दुओं के जीवन के साथ-साथ चलती है । पवित्र-गंगाजल के बिना हिन्दुओं का प्रायः कोई भी संस्कार सम्पन्न नहीं माना जाता । जहां एक ओर गंगा ने हमारी अध्यात्मिक और धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न किया है वहीं दूसरी ओर उसने उत्तरी भारत की जनता को भौतिक और आर्थिक रुप से सम्पन्न बनाया है । यदि वह हमारी धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति का साधन है तो वह भौतिक समृद्धि का भी साधन है ।

<u>यमुनोत्तरी अथवा यमुना तीर्थ</u> -

कूर्मपुराण में कहा गया है कि यमुना भगवान् सूर्य की पुत्री है । गंगा की भाँति

यमुना का भी उद्गम हिमालय पर्वत से हुआ है । गंगा के माहात्म्य की भाँति यमुना का भी माहात्म्य धर्मशास्त्रों और पुराणों में प्राप्त होता है । यह कहा जाता है कि हजारों योजनों से दूर भी कोई यदि यमुना का स्मरण और कीर्तन करें तो उससे उसके पाप विनष्ट हो जाते हैं । यमुनोत्तरी में स्नान तथा जलकण का पान करने वाला व्यक्ति सभी पापों से विनिर्मुक्त हो जाता है उसके सात कुल तक पवित्र हो जाते हैं ।[1]

यमुनोत्तरी समुद्र से 90 हजार फुट की ऊँचाई पर स्थित है यहाँ पर गर्मपानी के अनेक कुण्ड है जिनका पानी हमेशा खौलता रहता है यदि कपड़े में खाद्यान्न बाँधकर डाल दिया जाए तो ये पदार्थ पक जाते हैं । दूसरी ओर यहाँ यमुनाजल इतना शीतल है कि सहसा वहाँ स्नान करना असंभव कार्य है । हिमालय के कलिन्दशिखर से हिम पिघल कर प्रवाहित होता है । कलिन्द पर्वत से हिम पिघल कर प्रवाहित होता है । कलिन्द पर्वत से निकलने के कारण यमुना को कलिन्द–नन्दिनी या कालिन्दी कहा जाता है । यह यमराज सहोदरा कहीं जाती है । यमुनोत्तरी की प्रकृतिशोभा अत्यन्त नयनाभिराम है, यहाँ की हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियां तीर्थ यात्री का मन मोहित कर लेती हैं और जो पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र हैं ।

बदरीनाथ, केदारनाथ –

जोशी मठ के पास से केदारनाथ और बदरीनाथ मन्दिरों के दर्शनार्थ तीर्थयात्री जाते हैं । यह दोनों ही स्थान उत्तर के प्रसिद्धतम तीर्थ हैं, जिस प्रकार यवन अपने जीवन में

---

1. कूर्मपुराण ब्राह्मी संहिता, 39.1.3

एक बार मक्कामदीना जाना चाहते हैं उसी प्रकार हिन्दू भी एक बार बदरीनाथ और केदारनाथ जाना चाहते हैं । बदरीनाथ के पास अलकनन्दा कल-कल ध्वनि करती हुई प्रवाहित हो रही है, यहाँ पर पर्वत घाटियाँ और प्राकृतिक वातावरण अत्यन्त रमणीय और कमनीय है । यहाँ पर एक विशाल मन्दिर है, वहीं पर बदरीनाथ की मूर्ति विराजमान है । कहा जाता है कि यहाँ शंकराचार्य और बौद्धों का शास्त्रार्थ भी हुआ था । उन्होंने बौद्धों को अपनी कर्कश तर्कशक्ति से पराजित कर दिया था । प्राकृतिक सौन्दर्य और मनोहारी पर्यावरण के लिए यह स्थान सचमुच भ्रमण करने योग्य और दर्शनीय है ।

इसी प्रकार केदारनाथ में भव्य शिव मन्दिर है । यहाँ पर शिवमूर्ति पर निरन्तर जल टपकता रहता है । यहाँ का पर्वतीय पर्यावरण सुरम्य और विश्रान्ति जनक है । सम्पूर्ण भारतवर्ष के लोग बदरीनाथ, केदारनाथ की तीर्थयात्रा पर आते हैं । इन तीर्थयात्राओं से न केवल सांस्कृतिक एकता की प्राप्ति होती है, प्रत्युत राष्ट्रीय एकता भी सुदृढ़ होती है ।[1]

हरिद्वार :-

इसके पश्चात् हरिद्वार तथा ऋषिकेश तीर्थों के दर्शन होते हैं । पद्मपुराण में कहा गया है कि हरिद्वार साक्षात् स्वर्ग का द्वार हे, यह गंगा का द्वार भी है । यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि मानों यहाँ पर कोटि तीर्थ एकत्रित हो गये हैं ।[2] कालिदास के मेघदूत का यक्ष भी कनखल-हरिद्वार की गंगा को स्वर्ग की सीढ़ी बताता है । वह मेघ को गंगा दर्शन का परामर्श देते हुए कहता है :- "हे मेघ ! तुम कनखल के समीप हिमालय से

---

1. कल्याण पत्रिका, तीर्थांक पृ0 54-56
2. पद्मपुराण आदिखण्ड 28/27-30

उतरी हुई तथा सगर के पुत्रों की स्वर्ग की सीढ़ी के समान प्रतीत होने वाली गंगा के पास अवश्य जाना, जिन्होंने अपनी नवल के फेनभंगों के द्वारा पार्वती जी के मुख पर की भ्रूभंगिमा का मानव उपहास करते हुए, चन्द्रमा को स्पर्श करती हुई तरंगों रुपी हाथों से युक्त होकर शंकर जी के केशों को पकड़ लिया है ।[1]

हरिद्वार पवित्र सप्तपुरियों में मायापुरी के अन्तर्गत परिगणित की जाती है । प्रति बारहवें वर्ष जब सूर्य और चन्द्र मेष राशि में और वृहस्पति कुम्भराशि में स्थित होते हैं तो यहाँ कुम्भ का मेला लगता है । 6 वर्ष में अर्धकुम्भी का मेला लगता है । कुम्भ के मेले में देश के कौने-कौने से और विदेशों से भी तीर्थयात्री यहाँ एकत्रित होते हैं । यहाँ कोई जाति-पाँति का भेद प्रतीत नहीं होता, अनेक भाषा-भाषी प्रदेशों के लोग यहाँ एकत्रित होते हैं । ऐसे अवसर पर यहाँ गंगा के तट पर सन्तो, महात्माओं, विचारकों, चिन्तकों और दार्शनिकों का अध्यात्मिक सम्मेलन होता है । तीर्थयात्री उनकी विचार गंगा में भी डुबकी लगाते हैं और अपने मन के कल्मष को धो डालते हैं । इस नगर के अनेक नाम है:- हरद्वार, हरिद्वार, गंगाद्वार, कुशावर्त, मायापुरी, कनखल, ज्वालापुर और भीमगोड़ा इन सबका सामूहिक नाम हरिद्वार आजकल अधिक प्रचलित है ।

शुक्रताल :-

यह तीर्थ हिन्दू परम्परा के अनुसार महाभारतकार महर्षि वेदव्यास के सुपुत्र महर्षि शुकदेव से सम्बद्ध माना जाता है । शुकताल उ0प्र0 के मुजफ्फरनगर जनपद के [illegible] का पावनतीर्थ है । यह तीर्थ हरिद्वार से लगभग 40 मील दक्षिप-पूर्व तथा हस्तिनापुर से 30 मील उत्तर में है और इस तीर्थ से मुजफ्फरनगर की दूरी 20 मील है ।

---

1. मेघदूत, पूर्वमेघ 54

शुक्रताल में एक छोटा सा टीला है जिसमें एक प्राचीन वटवृक्ष है । वहाँ की जनता इसे ब्रह्मचारी वट के नाम से पुकारती है । किंबदन्ती से यह विदित होता है कि शुकदेव जी इसी वटवृक्ष के नीचे साधना करते थे, इसके प्रमाण हेतु उनके चरणचिन्ह देखे जा सकते हैं । यह वही शुकदेव जी हैं जिनके मुख से निगम कल्पतरु से गलित फल के समान, शुकमुख के स्पर्श से अमृत के समान मधुर भगवत रस प्रवाहित हुआ था । जिसे सर्वप्रथम राजा परिक्षित ने पान किया था ।[1]

शाकम्भरी देवी –

यह तीर्थ उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जनपद में अवस्थित है । इस जनपद के मुख्यालय से यह 26 मील की दूरी पर है, यहाँ पर शाकम्भरी देवी का भव्य मन्दिर है, जो चारों ओर पर्वतों से घिरा हुआ है । मन्दिर में 1 मील पूर्व एक छोटा सा भैरव मन्दिर मिलता है, यह भैरव देव यहाँ प्रहरी का काम करते हैं । शाकम्भरी देवी के दाहिने भीमादेवी और भ्रामरी देवी विराजमान है तथा बायीं ओर शताक्षी देवी विराजमान है । समीप में गणपति और हनुमान् जी की भी मूर्तिया है । शाकम्भरी देवी दुर्गा का ही प्रतिरुप है, यह देवी शाकाहार पर रहती थी । इसलिए महाभारत और पद्मपुराण में यह शाकम्भरी देवी के नाम से विख्यात और चर्चित है ।[2] यह प्रसिद्ध सिद्धतीर्थ माना जाता है यह लोक विश्रुति है कि भगवान् शंकराचार्य ने यहाँ पर उपर्युक्त तीन मूर्तियों की स्थापना की थी । चैत्र और शारद नवरात्र में यहाँ अपार श्रद्धालु भक्त जन आते हैं और तीर्थयात्रा का फल प्राप्त करते हैं ।

---

1. कल्याण तीर्थांक पृ0 65
2. महाभारत वनपर्व तीर्थप्रकरण 84/14–18 पद्मपुराण 28/14–18

कुरुक्षेत्र -

उत्तरी भारत का यह प्रसिद्ध धर्मक्षेत्र है । सम्प्रति यह क्षेत्र हरियाणा राज्य के अन्तर्गत है । यह पवित्र सरस्वती नदी के तट में अवस्थित है । कविवर कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध कृति मेघदूत में कुरुक्षेत्र और सरस्वती नदी का सांस्कृतिक वर्णन किया है ।

प्राचीन काल से ही कुरुक्षेत्र अनेक प्रसिद्ध घटनाओं से सम्बद्ध रहा है इसलिए इसकी प्रसिद्धि लोकेन्तर रही है । यह कहा जाता है कि इसी पावन भू क्षेत्र में सरस्वती नदी के पवित्र तट पर ऋषियों ने सर्वप्रथम वेदमंत्रों का उच्चारण किया था । यहीं पर प्रथम बार यज्ञों का आयोजन किया गया था और इसी धर्मक्षेत्र में महर्षि वसिष्ठ तथा विश्वामित्र ने ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त किया था । कौरवों और पाण्डवों के मध्य प्रसिद्ध महाभारत का युद्ध इसी क्षेत्र में हुआ था । यह वह पवित्र क्षेत्र है जहाँ पर श्रीकृष्ण ने विश्व को अमरगीता का सन्देश सुनाया था । इसी क्षेत्र में भरतवंशी राजाओं से सम्बन्धित प्रसिद्ध "महाभारत" ग्रन्थ का प्रणयन महामति वेदव्यास ने किया था ।

सम्राट हर्षवर्धन के राजकवि बाणभट्ट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "हर्षचरितम्" में इस क्षेत्र के ऐश्वर्य का विस्तार से वर्णन किया है । उन्होंने लिखा है कि यह क्षेत्र सरस्वती नदी के तट पर बसा है तथा धार्मिक शिक्षा एवं व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र है यहाँ का समस्त वायुमण्डल वेदमन्त्रों की पवित्र ध्वनि से परिपूर्ण है । इस क्षेत्र का ऐतिहासिक महत्व कुछ कम नहीं है । प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी इस क्षेत्र का वर्णन किया है, उसने यहाँ पर वैदिक धर्म की उन्नति की ओर संकेत किया है । इसके बाद मध्यकाल में कुरुक्षेत्र का इतिहास बर्बर आक्रमणों एवं पैशाचिक विनाश का इतिहास है । यह पवित्र भूमि अनेक बार रक्तस्नात हुई और आततायियां तथा आक्रमणकारियों ने इसके पवित्र स्थल ध्वस्त किय है ।

सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में एक बड़ा धार्मिक मेला लगता है जिसमें भारत के प्रत्येक प्रान्त से नर–नारी आकर एकत्र होते हैं । भागवतपुराण के दशम् स्कन्ध में कहा गया है कि महाभारतीय युद्ध से पूर्व सूर्यग्रहण के अवसर पर भगवान् श्रीकृष्ण सभी यदुवंशियों के साथ द्वारिका से कुरुक्षेत्र में पधारे थे और उस समय यहाँ दूर–दूर के राजा लोग एकत्रित हुए थे । उन्होंने सूर्यग्रहण के पर्व पर कुरुक्षेत्र में स्नान पूजन–पाठ तथा धार्मिक कार्य आदि का सम्पादन किया था ।[1]

जहाँ एक ओर कुरुक्षेत्र का ऐतिहासिक महत्व है वहीं दूसरी ओर इसका धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व भी है । देश–देशान्तर से लोग यहाँ सूर्यग्रहण के पावन–पर्व पर आते हैं और सूर्यग्रहण के प्राकृतिक दृश्य का अवलोकन करते हैं । विभिन्न जाति और संस्कृति के लोग एक साथ यहाँ उपस्थित होकर सामाजिक सद्भाव और सांस्कृतिक एकता का परिचय देते हैं ।

मथुरा–वृन्दावन–

मथुरा–वृन्दावन उत्तर भारत का प्रसिद्ध वैष्णव तीर्थ है । यह दिल्ली से दक्षिण पूर्व 200 किलोमीटर के लगभग अवस्थित है । मथुरा–वृन्दावन का सामूहिक नाम ब्रजमण्डल है । मथुरा यमुना नदी के तट पर बसा हुआ है । यह मधुसूदन श्रीकृष्ण का पवित्र जन्म स्थान और लीलाभूमि है । शास्त्रों में मथुरा के अनेक नाम प्रापत होते हैं –– मधुपुरी, मधुपहन, मधुरा तथा मथुरा । कहा जाता है कि रामायण काल में रघुनाथ जी के छोटे भाई शत्रुघ्न ने यहाँ पर मधु नाम के दैत्य और उसके पुत्र महावीर लवणासुर का वध किया था ।[2]

---

1. श्रीमद्भागवत महापुराण– दशम स्कन्ध पृ0 388
2. वा0रा0 उत्तरकाण्ड, 63.23

मथुरा का धार्मिक महत्व अत्यधिक है । महाभारत से लेकर सभी पुराणों में मथुरा तीर्थ की चर्चा की गई है और उसका धार्मिक महत्व बतलाया गया है । श्रीकृष्ण की जन्मभूमि होने के कारण ही मथुरा और वृन्दावन वैष्णवतीर्थों में शिरोमणि माने जाते हैं । पुराणों में इस तीर्थ के सम्बन्ध में अतिशयोक्ति पूर्ण और अतिरञ्जित अर्थवाह प्राप्त होते हैं । वराहपुराण का कथन है कि इस वसुन्धरा में पाताललोक में, अन्तरिक्ष लोक में और मनुष्य लोक में मथुरा के समान प्रिय और पवित्र भूमि नहीं है ।[1]

मथुरा–वृन्दावन का अर्थ सम्पूर्ण माथुर मण्डल या ब्रजमण्डल है, इसका विस्तार चौरासी कोस बतलाया जाता है । मथुरा बृजमण्डल का केन्द्र है । वराहपुराण का कथन है कि जो मथुरा जाकर उसकी प्रदक्षिणा करता है वह मानव सप्तद्विपामेदिनी की प्रदक्षिणा कर चुकता है ।[2]

मथुरा में श्री द्वारिकाधीश मन्दिर, श्रीकृष्ण जन्मभूमि विश्रामघाट, गीता मन्दिर का सभाभवन एवं भगवद् विग्रह नन्द गॉंव बरसाने, आदि प्रसिद्ध स्थल है । उसके पास ही गोवरधन मानसीगंगा, मुखारविन्द, कुसुमसरोवर, श्रीकृष्ण कुण्ड, श्रीराधाकुण्ड, प्रेमसरोवर आदि स्थल पूजनीय और दर्शनीय है ।

<u>वृन्दावन</u> :–

मथुरा से 6 मील उत्तर में वृन्दावन है । यह वैष्णव तीर्थ कृष्णभक्ति का प्रमुख केन्द्र है । ब्रहमवैवर्त की एक कथा के अनुसार यह कहा जाता है कि सत्ययुग में महाराज केदार की पुत्री वृन्दा ने यहा श्रीकृष्ण को पतिरुप में पाने के लिए दीर्घकाल तक

---

1. वराहपुराण, 152/8.9

2. वाराहपुराण 152.13–14

तपस्या की थी । वृन्दा की पावन–तपोभूमि होने से यह क्षेत्र वृन्दावन के नाम से प्रसिद्ध है । श्रीराधाकृष्ण के निकुञ्ज लीलाओं की प्रधान रंगस्थली होने के कारण वृन्दावन श्रीकृष्ण भक्तिरस को प्रवाहित करने वाला श्रेष्ठतम तीर्थ है । इस क्षेत्र की अधिष्ठात्री देवी "वृन्दादेवी" है । इसलिए भी इसे वृन्दावन कहा जाता है ।[1]

मथुरा–वृन्दावन धार्मिक और सांस्कृतिक केन्द्र है । यह कृष्णभक्ति शाखा का उत्पत्ति स्थान है, सम्पूर्ण देश से तीर्थयात्री यहाँ श्रीकृष्णजन्माष्टमी और उनके झूलोत्सव में उपस्थित होते हैं । यहाँ विभिन्न संस्कृतियों का मिलन भी देखने को मिलता है । यह क्षेत्र ललित कलाओं का जन्मस्थल रहा है, यह वही क्षेत्र है जिसे श्रीकृष्ण ने अपने वंशी की ध्वनि से संगीतमय और रसमय बना दिया था । इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण ने अपनी नृत्यकला का प्रदर्शन कर रास लीला से पूरे क्षेत्र को रससिन्धु में निमग्न कर दिया था, वस्तुतः इसी क्षेत्र में ललित कलाओं ने श्रीकृष्ण को पाकर दिव्यता को प्राप्त किया था ।

<u>नैमिषारण्य</u> :–

नैमिषारण्य भी उत्तरीभारत का एक प्रसिद्धतम पुराण वर्णित तीर्थ है । यह तीर्थ गोमती नदी के वामतट पर स्थित है । यह उत्तर रेलवे के बालामऊ स्थान के समीप है । पुराणों में नैमिषारण्य का अतिशय महत्व मिलता है । कूर्मपुराण के अनुसार नैमिषारण्य तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है । यह महादेव को परमप्रिय तथा महापातकों को दूर करने वाला है । वृहदधर्मपुराण, वायुपुराण में इसे परम पवित्र वैष्णव क्षेत्र की संज्ञा दी गयी है । यहाँ पर पौराणिक कथाओं का स्वाध्याय और अनुष्ठान सदैव चलता रहता था । लोमहर्षण के पुत्र सौति ने ऋषियों को यहीं पर पौराणिक कथायें सुनाई थी ।

प्रयाग :–

गंगा यमुना और सरस्वती के पावन संगम पर पूर्व की ओर यह तीर्थ अवस्थित है इसे तीर्थराज प्रयाग कहा जाता है भक्तों का कथन है कि तीर्थराज प्रयाग के प्रभाव का वर्णन नहीं किया जा सकता, यह कल्मष–पुञ्ज–रूपी कुञ्जर के लिए मृगराज के समान है, सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में प्रयाग के वर्णन उपलब्ध होते हैं । प्रत्येक बारहवें वर्ष में जब व्रहस्पति वृषराशि में और सूर्य मकरराशि में होते हैं तब प्रयाग में कुम्भपर्व होता है । इस पर्व में यहाँ लाखों–लाख तीर्थयात्री देश–देशान्तर से यहाँ आते हैं । कुम्भ से छठें वर्ष में अर्ध –कुम्भी का मेला लगता है वैसे प्रत्येक वर्ष सौरमास की मकरसंक्रान्ति से कुम्भ की संक्रान्ति तक बहुत से श्रद्धालु तीर्थयात्री गंगा–यमुना के पवित्र संगम पर कल्पवास करते है । कविकुल गुरु कालिदास ने प्रयाग में स्थित गंगा–यमुना के संगम की भूरि–भूरि प्रशंसा की है । उनका कथन है कि समुद्र की पत्नियों गंगा–यमुना के पवित्र संगम में जो लोग स्नान करते हैं, वे लोग पूतात्मा हो जाते है और अन्त में जन्म–मरण के बंधन से मुक्त हो जाते हैं ।[1]

पद्मपुराण के अनुसार सरस्वती–यमुना का जहाँ संगम है, जहाँ पर स्नान करने वाले ब्रह्मपद को प्राप्त करते हैं, जहाँ श्यामल अक्षयवट अपनी छाया से मनुष्यों को दिव्य सत्वगुण प्रदान करता है वहीं प्रयाग है ।[2] जिस प्रकार समस्त ग्रहों में सूर्य और सम्पूर्ण नक्षों में चन्द्रमा श्रेष्ठ माना जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में प्रयाग सर्वोत्तम है ।

प्राचीनकाल में संगम के पवित्र तट पर यज्ञ–यज्ञादि प्रचुर मात्रा में किये जाते

---

1. रघुवंश 13.58
2. पद्मपुराण– 23.34–35

थे । इसलिए इसे प्रयाग कहा जाता है अथवा यह स्थल सम्पूर्ण यज्ञों में श्रेष्ठ है इसलिए इसे प्रयाग कहते हैं ।[1] गंगा–यमुना का मिलन होने से प्रयाग का पर्यावरणिक सौन्दर्य मनोरम है ।

काशी :–

विश्व का ऐसा कोई नगर या तीर्थस्थान नहीं है जो काशी से बढ़कर प्राचीनता, निरन्तरता एवं आदर का पात्र रहा हो । इतिहास की दृष्टि से काशी संसार की सबसे प्राचीन नगरी है । वेदों में अनेक स्थलों में इसके उल्लेख निरन्तर प्राप्त होते हैं ।[2] पुराणों के अनुसार यह आद्य वैष्णव स्थान है । गंगा के तट पर स्थित यह पुरी भगवान शंकर के त्रिशूल पर बसी है । वरुणा और अशि नामक नदियों के मध्य बसी होने के कारण इसे वाराणसी भी कहते हैं । ब्रह्मतत्व का प्रकाशन होने से इसे काशी कहते हैं । इस दृष्टि से यह ज्ञान की ही नगरी है । काशी भारत का प्राचीनतम विद्याकेन्द्र और सांस्कृतिक पुरी रही है । भारत के सभी प्रान्तों के निवासी यहाँ रहते हैं । काश्मीर से कन्या कुमारी और आसाम–भूटान से कच्छ तक के लोग यहाँ स्थायी रुप से रह रहे हैं । संस्कृत–विद्या का यह सम्मानीय केन्द्र हैं । काशी का वैदुष्य विश्वविश्रुत रहा है । भगवान् विश्वनाथ की पुरी में प्रान्तीयता तथा किसी संकीर्णता का कोई स्थान नहीं है ।

काशी के अनेक उपतीर्थ और मन्दिर है जिनका नामोल्लेख निम्नवत् है —

---

1. स्कन्दपुराण– 7.49
2. ऋग्वेद 7.104.8 तथा 13.30.5

श्रीविश्वनाथ, ज्ञानपापी, अक्षयवट, अन्नपूर्णा, ढुण्ठिराज गणेश दण्डपाणि आदि विश्वेश्वर, लांगलीश्वर, काशीकरवत, गोपाल मन्दिर, कालभैरव, दुर्गामन्दिर, संकट मोचन, पिशाचमोचन, लक्ष्मी कुण्ड, भूतभैरव, कपालमोचन, कबीरचौरा और बटुक भैरव इत्यादि । इस तीर्थ का धार्मिक तथा सांस्कृतिक महत्व अप्रतिम है । यह विद्या और ज्ञान की भूमि है । संस्कृत-विद्या यहाँ प्राचीन काल से पुष्पित और फलित हुई है । संस्कृत के विद्वानों की परम्परा आज तक अविच्छिन्न बनी हुई है । गंगा के किनारे-किनारे धनुषाकार रुप में बसी हुई यह काशी देखने में सुन्दर प्रतीत होती है । यहाँ पर गंगा के अनेक घाट प्रसिद्ध हैं जहाँ पर देश-देशान्तर से आये हुए लोग श्रद्धा भक्ति और प्रेम के साथ गंगा स्थान करते है और यहाँ से गंगाजल लेकर भगवान् विश्वनाथ का अर्चन और वन्दन करते हैं और इस प्रकार जाँति-पाँति को भूलकर, भाषा-विभेद को भूलकर, तथा सर्वोपरि प्रान्तीयता से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता का वर्धन करते है । यह तीर्थ सामाजिक सद्भाव और सांस्कृतिक चेतना का उत्प्रेरक प्रतीत होता है ।

अयोध्या :-

सरयू के पावन तट पर यह पुरी स्थित है यह सात पवित्र पुरियों में प्रथम पवित्र पुरी है । मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की यह जन्मभूमि है और रघुवंशी राजाओं का बहुत बड़ा इतिहास के इसके साथ जुड़ा है । प्राचीनकाल में इस क्षेत्र को अवध कहा जाता था यह पूर्वोत्तर दिशा में बनारस और प्रयाग क समीपवर्ती है । यहाँ पर अनेक दर्शनीय स्थल है

यथा लक्ष्मणघाट, स्वर्गद्वार, अहल्याबाई घाट, नयाघाट, रामकोट, हनुमानगढ़ी, कनकभवन, दर्शनेश्वर श्रीरामजन्मभूमि, तुलसीचौरा, मणिपर्वत, गुप्तारघाट इत्यादि ।

अयोध्या हमारे देश की धार्मिक और सांस्कृतिक नगरी है । जब तक रामकथा समाज में प्रचलित रहेगी तब तक अयोध्या नगरी जीवन्त बनी रहेगी ।[1]

मध्य भारत के तीर्थ

विंध्यवासिनी :-

यह प्रसिद्ध विन्ध्यवासिनी देवी का तीर्थ है । यह मिर्जापुर जनपद के समीप गंगातट पर अवस्थित है । मार्कण्डेय पुराण, देवीभागवत आदि में इस तीर्थ की महिमा का गान मुक्त कण्ठ से किया गया है । शुम्भ और निशुम्भ आदि महादैत्यों के वध हेतु दुर्गा ने नन्दगोप के घर में उनकी पत्नी यशोदा के गर्भ से शक्ति का अवतार हुआ था । इसी शक्ति ने विन्ध्याचल में निवास करते हुए उपर्युक्त असुरों का संहार किया था ।[2]

विंध्यवासिनी एक परम प्रसिद्ध शक्तिपीठ है । शक्ति के उपासक श्रद्धालु भक्त जन यहाँ निरन्तर आते रहते हैं । यह भी अन्य तीर्थों की धार्मिक एकता और सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है ।

---

1. सारस्वत सन्दर्शनम् 23.
2. पद्म पुराण -5.10

<u>उज्जयिनी</u> :-

यह स्थान मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र में है । उज्जयिनी का दूसरा नाम अवन्ती या अवन्तिका हैं। यह पवित्र शिप्रा नदी तटपर स्थित है । जिस प्रकार उत्तरी भारत में धर्म, विद्या और संस्कृति का केन्द्र काशी है उसी प्रकार मध्यभारत का धर्म विद्या और संस्कृति का केन्द्र उज्जयिनी नगरी है । यह भी पवित्र सप्तपुरियों में से एक है ।[1] यहाँ पर प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग'महाकालेश्वर का मन्दिर है, उज्जयिनी मध्यभारत की काशी है, यहाँ का वातावरण काशी-सदृश प्रतीत होता है ।

अनेक पुराणों तथा परवर्ती संस्कृत साहित्य में उज्जयिनी तथा अवन्तिका के निरन्तर उल्लेख प्राप्त होते हैं । स्कन्दपुराण का कथन है कि जहाँ साक्षात् भगवान् महाकाल रहते हैं, और पवित्र शिप्रा नदी है, उस उज्जयिनी में कौन रहना न चाहेगा ? शिप्रा में स्नान और महाकालेश्वर का दर्शन व्यक्ति को निर्भय बना देता है ।[2] इस स्थान को पृथ्वी का नाभिदेश कहा जाता है । यहाँ पर अनेक उपतीर्थ हैं- द्वापर में श्रीकृष्ण और बलराम इस क्षेत्र में स्थित महर्षि संदीपन के आश्रम में विद्याध्ययन के लिए आए थे, यहाँ भी बारह वर्ष में कुम्भ का मेला आयोजित होता है तथा छः वर्ष में अर्धकुम्वी का मेला होता है । प्राचीनकाल में उज्जयिनी एक वैभवशालिनी नगरी रही है । उसे "अवन्ति" भी कहा जाता था । कहा जाता है कि ईशा से पूर्व प्रथम शताब्दी में महाराज विक्रमादित्य के समय यह नगरी उज्जयिनी, इस देश की राजधानी थी । विक्रमादित्य की राजसभा में नव रत्न थे जिनमें से एक कविकुल गुरु कालिदास भी थे । कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध रचना मेघदूत में उज्जयिनी का मनोहारी वर्णन किया है । उनका उज्जयिनी से बहुत लगाव प्रतीत होता

---

1. पदम पुराण 5.10

उज्जयिनी से अलकापुरी का मार्ग कुछ टेढ़ा है फिर भी मेघदूत का यक्ष उसे उज्जयिनी जाने के लिए प्रेरित करता है । प्यारे मेघ ! उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करने वाले यद्यपि तुम्हारा मार्ग वक्र होगा फिर भी उज्जयिनी के निर्मल गगन चुम्बी भवनों के दर्शन से तुम विमुख न होना । यदि तुमने विद्युत के स्फुरणों से चकित और चञ्चल कटाक्षों वाली उज्जयिनी की ललनाओं के नेत्रों से विह्वर नहीं किया तो सचमुच तुम जीवनलाभ से वंचित रह जाओगे ।

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशाम्,

सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ।

विद्युद्दामस्फुरित चकितैस्तत्र पैरांगनानां

लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ।।[1]

अवन्ति देश के निवासी बड़े ही रसिक हैं । वे वासवदन्ता और उदयन की प्रणय कथा का आनन्द लेते हैं। इस प्रकार वह रसिकों की पुरी है । अवन्ती श्री और वैभव से भी विशाल है । ऐसा प्रतीत होता है कि पुण्यफल के क्षीण होने पर पृथ्वी पर लौटे हुए स्वर्ग निवासियों के अवशिष्ट पुण्यों का यह दिव्य खण्ड है । इसलिए उज्जयिनी को बिना देखे आगे न जाना ।[2]

यक्ष मेघ से उज्जयिनी नगरी के सुन्दर पर्यावरण का वर्णन करता है । वहाँ शिप्रा नदी है, जहाँ प्रभात में सारस पक्षियों के मधुर मतवाले शब्दों को तीव्र करने वाला और प्रस्फुटित कमलों की सुगन्धि से सुवासित अंगों को अच्छा लगने वाला शिप्रा का शीतल वायु प्रणय प्रार्थना हेतु तत्पर चाटुकार प्रियतम की तरह, नारियों की सुरत–ग्लानि को दूर करता

---

1. मेघदूत, पूर्वमेघ, 28
2. वही. 31

रहता है ।

> दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां ।
> प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।
> यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमंगानुकूलः
> शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकारः ।।[1]

कालिदास के उपर्युक्त वर्णनों से यह प्रतीत होता है कि कवि के समय में यह नगरी साहित्य धर्म और संस्कृति का केन्द्र थी । ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास उज्जयिनी की धरा के ही कवि थे और उन्होंने उज्जयिनी में रहकर अपनी काव्य–साधना की थी । कवि ने वहाँ स्थित महाकाल शिव का भी वर्णन किया है । मेघ को यह सलाह दी है कि यदि सायंकाल के समय महाकालेश्वर मन्दिर में तुम अपने गर्जन से नगाड़े की ध्वनि की पूर्ति करोगे, तो महाकाल शंकर जी की कृपा से अपने गर्जन का और जीवन का सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लोगे ।[2]

महाकाल शिव की उज्जयिनी में अनेक दर्शनीय स्थल और उपतीर्थ हैं । इनमें महाकाल मन्दिर, हरसिद्धि देवी, बड़े गणेश जी, गोपालमन्दिर, गढ़कालिका, भर्तृहरि–गुहा, कालभैरव, संदीपन आश्रम, सिद्धवट, मंगलनाथ, वेधशाला, शिप्रा उल्लेखनीय है ।

<u>नर्मदा तट तीर्थ</u> :–

नर्मदा मध्यभारत का पवित्रतम नदी तीर्थ है । यह मेकल पर्वत पर स्थित अमर कण्टक स्थान के एक कुण्ड से निकली हैं, मेकलपर्वत से निकलने के कारण इसको मेकल

---

1. मेघदूत, पूर्वमेघ, 32
2. वही. 38

सुता भी कहते हैं । मेकल पर्वत विन्ध्याचल और सतपुडा पर्वत श्रेणियों के मध्य पर स्थित है । यह स्थान विलासपुर से 63 मील पर अवस्थित है । यह किंबदंती है कि नर्मदा का उद्गम बांस के झुरमुटों से हुआ है किन्तु अब तो बांस का झुरमुट वहाँ दिखाई नहीं देता । सम्प्रति, वहाँ पर एकादश कोण का एक पक्का कुण्ड बना हुआ है, कुण्ड के पश्चिम गोमुख है जिससे जल कुण्ड में गिरता रहता है यही कुण्ड नर्मदा का उद्गम है । यह कहा जाता है कि जैसे गंगा हरिद्वार में तथा सरस्वती कुरुक्षेत्र में अत्यन्त पवित्र तथा पुण्यमयी कहीं जाती है किन्तु नर्मदा, चाहे वह गाँव के पास से बह रही हो, या जंगलों के मध्य से, सर्वत्र पवित्र तथा पुण्यमयी कहीं जाती है । यह भी कहा जाता है कि सरस्वती का जल तीन दिनों में, यमुना का एक सप्ताह में तथा गंगा का जल तुरन्त स्पर्श करते करते पवित्र कर देता है । परन्तु नर्मदा का जल दर्शन मात्र से ही पवित्र कर देता है ।[1]

पुण्या कनखले गंगा कुरुक्षेत्रे सरस्वती ।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ।।[1]

पुराणों में यह कहा गया है कि पुरुरवा तथा हिरण्यरेता के तप से नर्मदा जी पृथ्वी पर अवतरित हुई थी । इसके डेढ़ सौ स्त्रोत बतलाये जाते हैं । विद्वान पुरुषों का कथन है चार सौ स्तासी गज की चौड़ाई में इसकी धारा प्रवाहित हो रही है । पुराणों में नर्मदा स्नान का फल यह बतलाया गया है कि यदि कोई भी मनुष्य नर्मदा में जहाँ कहीं भी स्नान कर लेता है, उसका सौ जन्मों का पाप तत्काल नष्ट हो जाता है ।[2] पद्मपुराण के

---

1. पद्मपुराण आदि0 स्वर्ग0 13.6–7

2. स्कन्द पुराण रेवा खण्ड, 7

के अनुसार अमर कण्टक से लेकर नर्मदा समुद्र संगम तक दश करोड़ तीर्थ स्थित है ।[1] जिसका तात्पर्य यह है कि नर्मदा अपनी उद्गम से लेकर समाप्ति तक मार्ग के सम्पूर्ण भूभागों को न केवल सिञ्चित कर रही है प्रत्युत उसे पवित्र भी कर रही है । रेवा जो नर्मदा के नाम से अधिक विख्यात है, मध्यभारत का श्रृंगार है ।

रामटेक :-

यह कहा जाता है कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम पंचवटी जाते समय इस पर्वत पर कुछ दिनों के लिए रुके थे । इसलिए यह पर्वत तीर्थ बन गया है ।

रामटेक पर्वत महाराष्ट्र के नागपुर जिले की समीपवर्ती पहाड़ी है, इस पहाड़ी पर श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी के मन्दिर है और मन्दिर के सामने वाराह भगवान् की एक बड़ी मूर्ति है । रामटेक के पास दो सरोवर है जिनके नाम रामसागर तथा अम्बाला सागर है । ये दोनों सरोवर परम पवित्र माने जाते हैं ।

विद्वानों का कथन है कि मेघदूत में उल्लिखित रामगिरि नागपुर जिले का रामटेक पर्वत है, क्योंकि मेघदूत में मेघ का जो मार्ग वर्णित है वह रामटेक पर्वत से ही ठीक बैठता है ।[2] रामटेक में ही कविवर कालिदास का विरही यक्ष मेघ के द्वारा अलकापुरी स्थित अपनी प्रियतमा को सन्देश भेजना चाहता है । रामटेक में आज भी कुटज-कुसुमों की बहुलता और निचुलवृक्षों की सरसता मन को मुग्ध करती है ।

रामटेक की पहाड़ी में सर्वोच्च स्थान पर स्थित राम मन्दिर के निकट

---

1. मेघदूत, पूर्वमेघ, 20
2. बी.पी.मिराशी : कालिदास

"सीतानहानी" "जनक तनया स्नानपुण्योदकेषु" "रामगिरि आश्रम" की याद दिलाती है ।[1] राम मन्दिर में मूर्ति के सामने "रामपादांक" देखकर "रघुपति चरणों से अंकित" रामगिरि मेखला की स्मृति आ जाना स्वाभाविक है । राममन्दिर के पीछे स्थित "रामझरोखा" में "आषाढ़स्य प्रथम दिवसे" बैठने से किसी भी साहित्यानुरागी भावुकजन का चित्त "अन्यथा वृत्ति" हो सकता है ।[2] राम मन्दिर से अलग, किन्तु निकट ही सामने लक्ष्मण मन्दिर की स्थिति आज भी उस प्राचीन समय की स्मृति उत्पन्न कर देती है, जब भगवान् रामचन्द्र चौदह वर्ष वनवास के प्रसंग में सीता सहित यहाँ कुछ दिनों के लिए ठहरे थे, और लक्ष्मण जी औचित्य की रक्षा करते हुए दम्पत्ति से अलग रहते थे । अतः इसमें आश्चर्य नहीं है कि कवि ने एवंविध परमप्राचीन पूतस्मृति और प्रकृति–रमणीय रामगिरि (रामटेक) को मेघदूत के यक्ष का प्रवासस्थान बनाया है ।

<u>नासिक–त्र्यम्बक</u> :–

नासिकत्र्यम्बक भारत के प्रमुख तीर्थों में से है । नासिक प्रसिद्ध नदी गोदावरी के तट पर स्थित है, यह तीर्थ भी महाराष्ट्र प्रदेश में है । यहाँ पर अनेक उपतीर्थ हैं–– पंचवटी, देवमन्दिर, कपालेश्वर, राममन्दिर, कालाराम मन्दिर, शारदाचन्द्र मौलीश्वर, रामेश्वर, सुन्दर नारायण मन्दिर, उमा माहेश्वर, नीलकण्ठेश्वर, पंचरत्नेश्वर, गोरारामममन्दिर, मुरलीधर, तिलभाण्डेश्वर, भद्रकाली, कपिलासंगम, गंगापुर प्रपात, सीता सरोवर, रामशय्या, त्र्यम्बकेश्वर, पाण्डव गुफा, मृग व्याधेश्वर, जटायु क्षेत्र, सिरडी और आगत्स्याश्रम इत्यादि ।

नासिक में प्रति बारहवें वर्ष, जब वृहस्पति सिंह राशि में होता है तो कुम्भ पर्व

---

1. मेघदूत पूर्व मेघ–4.14
2. मेघदूत, पूर्व मेघ, 2.8

का मेला आयोजित होता है । वृहस्पति के सिंहस्थ होने पर यहाँ वर्षभर गोदावरी–स्नान पुण्यप्रद माना जाता है । इस पूरे क्षेत्र में गोदावरी नदी प्रवाहित होती है । गोदावरी नदी भारत की पवित्र सात नदियों में से एक है ।[1]

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु काबेरि जलेस्मिन्सन्निधिम् कुरु ।

गोदावरी नदी का दूसरा नाम गौतमी है । गौतमी का जल सभी नदियों से दिव्य और मृत्युञ्जय माना जाता है ।[2] आदि कवि वाल्मीकि ने इस पवित्र नदी का विस्तार से

यादों में गोदावरी का एक चित्र दर्शनीय है । यही वह वनप्रदेश है, जहाँ पर पशु–पक्षी और पेड़–पोधे (वृक्ष) भी हमारे बन्धु थे । जहाँ पर वृक्ष और मृग मेरे बन्धुओं के समान थे और ये अनेक कंदराओं और निर्झरों वाले गोदावरी नदी के परिसर में स्थित पर्वतों के तट हैं । जिनमें मैं अपनी प्रियतमा सीता के साथ चिरकाल तक निवास करता था ।[3]

पंठरपुर तीर्थ :–

पंढरपुर महाराष्ट्र का प्रधान तीर्थ है इस तीर्थ के मुख्य देवता श्री पंठरनाथ जी हैं जो महाराष्ट्र के संतों के आराध्यदेव हैं । यह स्थान पूना से 115 मील दूर मीरज–लातूर लाइन पर अवस्थित है । देवरायनी और देवोत्थानी एकादशी को यहाँ भक्तों का सम्मेलन विशेष रुप से होता है । भक्तप्रवर पुण्डरीक इस धाम के प्रतिष्ठाता है । यह सन्तों की

---

1. सारस्वत–सन्दर्शनम् पृ0 35
2. महा0भा0 1.85.33
3. उन्तररामचरित, 4.9

निवास भूमि है, जहाँपर संत तुकाराम जी, नामदेव, स्वामी रांका–बांका जी, नरहरि जी, रहा करते थे । यह तीर्थ भीमानदी के तट पर स्थित है । इस नदी का दूसरा नाम चन्द्रभागा नदी भी है ।

इस तीर्थ में चन्द्रभागा नदी के तट पर श्री विट्ठल भगवान का विशाल मन्दिर है मन्दिर में कमर पर दोनों हाथ रखे हुए बिट्ठल भगवान जिन्हें पंठरी नाथ भी कहते हैं, खड़े हैं । विष्णु भगवान् को ही महाराष्ट्र में बिट्ठल भगवान् कहते हैं । यहाँ पर चन्द्रभागा नदी के तट पर चन्द्रभागा तीर्थ, सोमतीर्थ आदि अनेक छोटे–मोटे तीर्थ हैं और बहुत से मन्दिर है । महाराष्ट्र का यह परमपवित्र तीर्थ माना जाता है । भक्तवर पुण्डरीक की यह लीलाभूमि रही है । पुण्डरीक के संबंध में एक किंबन्दंती यह सुनने को मिलती है कि वे अपने माता–पिता के परम सेवक थे । एक समय वे अपने माता–पिता की सेवा में लगे हुए थे तभी भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें दर्शन देने पधारे । श्रीकृष्ण को देखकर पुण्डरीक उन्हें खड़े होने के लिए एक ईट सरका देते हैं तथा माता–पिता की सेवा छोड़कर वे उठते नहीं हैं । क्योंकि उन्हें इस बात का ज्ञान था कि माता–पिता की सेवा से प्रसन्न होकर ही भगवान उन्हें दर्शन देने पधारे हुए हैं । उनके इस निश्चय से भगवान और प्रसन्न होते हैं सेवा करने के पश्चात वे भगवान श्रीकृष्ण के समीप पहुँचते हैं और वे वरदान में उनसे यह माँगते है कि इस तीर्थ में वे सदैव अपने श्री–विग्रह रुप में निवास करें ।[1]

श्रीक्षेत्र पंठरपुर में एक पवित्र तीर्थ का वातावरण आज भी विद्यमान है । चन्द्रभागा नदी और उसके सुरम्य तट तरु, लता, गुल्म, इसकी प्राकृतिक शोभा को द्विगुणित कर रहे हैं । यहाँ का पर्यावरण अति सुरम्य है ।

---

1. कल्याण पत्रिका तीर्थांक, पृ0 260

एलोरा :-

एलोरा एक बौद्धतीर्थ है । यह बेरुल पर्वत को काटकर गुफा के रुप में निर्मित है, इस गुफा का विस्तार लगभग एक मील तक है, इसमें एक से तेरह तक गुफायें प्राप्त होती है । इनमें महायान सम्प्रदाय की अनेक बौद्ध मूर्तियों के दर्शन होते हैं । बौद्धतीर्थ यात्री यहाँ प्रायः आते रहते हैं ।

संख्या चौदह से उनतीस तक पौराणिक धर्म से संबंधित गुफायें हैं । इनमें एक कैलाश मन्दिर भी है, जो अत्यन्त प्रसिद्ध है । पूर्वी पर्वत को काटकर छोटे छोटे अनेक मन्दिरों का निर्माण किया गया है । इनमें शंकर की लीलामूर्तियाँ तथा दशावतार की मूर्तियों के दर्शन होते हैं । इन मन्दिरों और मूर्तियों की कला प्रशंसनीय है । इसमें जैन-गुफा मन्दिर भी है, जहाँ जैनधर्म से संबंधित सामग्री प्राप्त होती है । एलोरा की कला उत्कृष्ट कोटि की है । आजकल एलोरा तथा अजन्ता पर्यटक स्थल बने हुए हैं । इनकी कलाओं का आनन्द प्राप्त करने के लिए देश-देशान्तर से पर्यटक यहाँ आते रहते हैं ।[1]

अजन्ता :-

अजन्ता, औरंगाबाद और जलगाँव के मध्य स्थित है । अजन्ता के चारों ओर पर्वत माला है यह पर्वत अर्धचन्द्राकार है और इसके नीचे बाघोरा नदी प्रवाहित होती है ।शिखर से पादतल तक, मध्य में पर्वत को काटकर यहाँ पर उनतीस गुफायें बनायी गई है । इनमें से 9, 10, 19 और 26 संख्या की गुफायें चैत्य हैं और शेष गुफायें विह्वर रुप में है ।

अजन्ता की गुफायें बौद्ध धर्म से संबंधित भिन्ति है । वे अपने चित्रों के लिए

---

1. कल्याण, तीर्थांक, पृ0 266

पुष्पर तीर्थ को तीर्थों का गुरु होने का गौरव प्राप्त है । जैसे प्रयाग को तीर्थराज कहते हैं वैसे ही इस तीर्थ को पुष्कर राज कहा जाता है । इसकी गणना पंचतीर्थों में की जाती है पुष्पर, कुरुक्षेत्र, गया, गंगा और प्रभास और पॉंच सरोवरों में भी इसका परिगणन किया जाता है – मानसरोवर, पुष्कर सरोवर, बिन्दु सरोवर, नारायणसरोवर (कच्छ), पम्पा सरोवर ।

प्रायः सभी पुराणों में पुष्कर तीर्थ का वर्णन प्राप्त होता है । बहुत कम पाये जाने वाले ब्रह्मा के मन्दिरों में एक मन्दिर यहॉं पर विद्यमान है, और ज्येष्ठ मध्यम तथा कनिष्ठ नामक तीन कुण्ड भी हैं ।[1]

पुराणों में कहा गया है कि पुष्पर में श्राद करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है ।यहॉं ब्रह्मा की पॉंच वेदियों में से एक वेदी बनी हुई है ।[2]

पद्मपुराण में पुष्कर शब्द की व्याख्या की गई है । इसमें कहा गया है कि इस में कहा गया है कि इस धर्मक्षेत्र में ब्रह्मा ने पंष्कर तथा कमल को गिराया था, इसीलिए यह क्षेत्र पुष्कर तीर्थ के नाम से विख्यात हो गया है ।

पुष्कर में सरस्वती नदी के स्नान का महत्व पुराणों में सर्वाधिक बतलाया गया है । यहॉं यह पॉंच नामों से प्रवाहित होती है – सुप्रभा, कांचना, प्राची, नन्दा और विशालिका । कार्तिकी पूर्णिमा में पुष्कर स्नान हेतु बहुत बड़ा जन संकुल एकत्रित होता है ।[3]

---

1. नारदीय पु0 2.71.12, पद्म पु0 5.28.53, वायु0 पु0 77.40, कूर्म पु0 2.20.34
2. ब्रह्माण्ड पुराण 3.34.11
3. कल्याण पत्रिका तीर्थांक, पृ0 290

उपर्युक्त वर्णनों से यह स्पष्ट है कि पुराणकाल में और आज भी पुष्कर तीर्थ का महत्व है । यह अनेक मन्दिरों का और अनेक घाटों का तीर्थ है, जहाँ सरस्वती नदी के प्रवाह से यह और भी पवित्र हो गया है । तीर्थों में सरस्वती नदी की कल्पना वहाँ के सरस्वत ज्ञानप्रवाह से भी की जा सकती है, क्योंकि तीर्थों में ऋषियों और मुनियों के आश्रम होते हैं और वहाँ अध्यात्मिक विद्या का सारस्वत प्रवाह निरन्तर प्रवाहित होता रहता है । यह विचित्र बात है कि जिस प्रकार पुष्कर में सरस्वती नदी प्रवाहित हो रही है । उसी प्रकार तीर्थराज प्रयाग में भी आदृश्य सरस्वती का गंगा और यमुना में पावन संगम हो रहा है । जो त्रिवेणी संगम के नाम से प्रसिद्ध है । यहाँ भी जिस आदृश्य सरस्वती का वर्णन मिलता है वह कोई सार्थक पार्थिव नहीं है प्रत्युत संगमतट पर उपस्थित ऋषियों और मुनियों का अध्यात्मिक ज्ञान है, जो त्रिवेणी में सरस्वती के रूप में प्रवाहित हो रहा है ।

<u>नाथद्वारा</u>–

भगवान श्रीनाथ जी का मन्दिर राजस्थान में उदयपुर के पास है यह बल्लभ सम्प्रदाय का प्रधान पीठ है भारत के प्रमुख वैष्णव पीठों में इसकी गणना की जाती है । यहाँ बल्लभाचार्य जी की परम्परा आज भी देखने को प्राप्त होती है यह किंवदन्ती है कि श्री बल्लभाचार्य जी के सामने का यह श्रीविग्रह स्वयं प्रकट हुआ था । कहते हैं कि श्रीनाथ जी ने साक्षात बल्लभाचार्य जी, उनके पुत्र बिट्ठलनाथ जी, तथं उनके अनेक शिष्य–प्रशिष्यों के साथ अद्भुत लीलायें की थी । यहाँ पर बनास नाम की एक छोटी नदी भी प्रवाहित होती है जिससे श्रीनाथ जी का यह मन्दिर उन अनेक तीर्थों के समान हो जाता है जिनके पास अनेक सरितायें बहती हैं ।

अर्बुदाचल तीर्थ :-

यह स्थान गुजरात में अहमदाबाद दिल्ली मार्ग पर अवस्थित है । अर्बुदाचल नगाधिराज हिमालय का तनय माना जाता है । यह पर्वत लगभग चौदह मील लम्बा तथा लगभग चार मील चौड़ा है । यह कहा जाता है कि यहाँ महर्षि बसिष्ठ का आश्रम था और मथुरा से द्वारका जाते समय भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे थे और यहाँ पर रात्रि विश्राम किया था । इसीलिए यह अर्बुदाचल प्रसिद्ध तीर्थ बन गया है । महाभारत और पद्मपुराण आदि में इसके महत्व के उल्लेख प्राप्त होते हैं ।

ततो गच्छेत् धर्मज्ञ हिमवत्सुतमर्बुदम् ।
पृथिव्यां तत्र वै छिद्रं पूर्वमासीद् युधिष्ठर ।।
तत्राश्रमो बसिष्ठस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्र फलं लभेत् ।।[1]

यहाँ मठराज अम्बरीष का आश्रम भी है उन्होंने यहाँ कठोर तपस्या की थी इसके समीपवर्ती दर्शनीय उपतीर्थ निम्नवत् हैं -- वसिष्ठाश्रम गौतमाश्रम देलवाड़ा जैन मन्दिर, यज्ञेश्वर, कनरवल, नागतीर्थ गुरुदन्त स्थल, अचलेश्वर, भृगुआश्रम, जैन मन्दिर अचल गढ़, अर्बुदा देवी, रामकुण्ड, आरासुर अम्बा जी, कोठेश्वर, कुंभारिया के जैनमन्दिर, कृष्ण तीर्थ इत्यादि ।

द्वारकातीर्थ :-

द्वारका तीर्थ पश्चिम में सौराष्ट्र प्रदेश में समुद्र तट पर स्थित है । यद्यपि वैदिक

---

1. महा0वन पर्व, तीर्थ यात्रा प्रकरण, 82.55.56

साहित्य में इस तीर्थ का नामोल्लेख प्राप्त नहीं होता, किन्तु द्वारका के विषय में महाभारत और नानापुराणों में प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है । द्वारका सात पवित्र पुरियों में से एक है

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ।।[1]

महाभारत के अनुसार जरासंध के निरन्तर आक्रमणों से विवश होकर श्रीकृष्ण ने इस पुरी को बसाया था । इसका उधान रैवतक एवं पहाड़ी गौमंत थी यह लम्बाई में दो योजन तथा चौड़ाई में एक योजन थी ।[1] वाराह पुराण में यह दश योजन लम्बी तथा पाँच योजन चौड़ी बतलायी गयी है ।[2]

द्वारका के संबंध में पुराणों में अनेक कथानक प्राप्त होते हैं । ब्रह्मपुराण के अनुसार वृष्णियों तथा अन्धकों ने कालियवन के डर से मथुरा छोड़ दी थी और कृष्ण की सहमति लेकर कुशस्थली चले गये थे, वहीं द्वारका का निर्माण किया था । विष्णु पुराण में कहा गया है कि श्रीकृष्ण ने समुद्र से बारह योजन भूमि माँगी थी, उसमें उन्होंने वाटिकाओं, भवनो और सुदृढ़ दीवालों के साथ द्वारका का निर्माण कराया था तथा वहाँ मथुरावासियों को बसाया था ।[3] यह कहा जाता है कि जब श्रीकृष्ण ने शरीर को छोड़ दिया तो उस नगर

---

1. महा0भा0 सभापर्व 14.49.55
2. वाराह पुराण, 149.7–8
3. विष्णु पुराण 5.23.13–15

को समुद्र ने डुबो दिया और उसे बहा दिया था ।[1] श्रीकृष्ण की निवासस्थली होने के कारण सभी तीर्थो में द्वारका का अतिशय महत्व हैं । पुराण इसके महात्म्य को बतलाते हुए थकते नहीं है । कहते हैं कि द्वारका के प्रभाव से कीट, पतंग, पशु–पक्षी तथा सर्प आदि योनियों में पड़े हुए समस्त पापी भी मुक्त हो जाते हैं । फिर जो प्रतिदिन द्वारका में रहते हैं, और श्रीकृष्ण भक्ति परायण है उनके विषय में फलश्रुति की कोई आवश्यकता नहीं है । द्वारका में रहने वाले समस्त प्राणियों को जो सद्‌गति प्राप्त होती है वह उर्ध्वरेता मुनियों के लिए सुंदुर्लभ प्रतीत होती है ।[2]

द्वारका में निवास करने वालों के भाग्य के विषय में भी पुराणों में प्रशंसनीय वचन पढ़ने को मिलते हें । द्वारकावासी जन तीर्थ के समान पवित्र होते हैं जैसे– तीर्थों के दर्शन आदि से मनुष्य पवित्र और पापरहित हो जाता है उसी प्रकार द्वारकावासी व्यय्कत के दर्शन और स्पर्श से मनुष्य को पापों से मुक्ति मिल जाती है । यदि वायु द्वारा उड़ाई गई द्वारका की रज पापात्मा पुरुषों के शरीर पर पड़ जाए तो भी मुक्त हो जाते हैं फिर साक्षात् द्वारका का महत्व बतलाना तो सर्वथा अनिर्वचनीय है ।[3]

आधुनिक पुरातत्व शास्त्रियों ने समुद्रतल में द्वारका के खोजने का अभियान चलाया है जिसमें उन्हें कुछ सफलता भी मिली है । समुद्र के नीचे कतिपय भवनों के ध्वंसावशेष

---

1. महा0भा90 मौसल पर्व 6.23–24
2. स्कन्द–पुराण प्रभास खण्ड द्वारका माहात्म्य 37.7.9
3. वहीं 35.7–8

प्राप्त हुए हैं । इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन और मूलद्वारका समुद्र के गर्भ में समायी हुई । कुछ भी हो द्वारका हिन्दुओं का पवित्रतम तीर्थ और धाम है । यहाँ अनेक उपतीर्थ है जो दर्शनीय हैं– गोमती नदी, चक्रतीर्थ, रुकमणी ह्रद, विष्णु पादोद्भवतीर्थ, गोपी सरोवर, चन्द्रसरोवर, ब्रह्मकुण्ड, पंचनदतीर्थ, सिद्धेश्वर लिंग, ऋषितीर्थ, शंखोद्वार तीर्थ, वरुण सरोवर, इन्द्रसरोवर और गदातीर्थ आदि ।[1]

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ0 जयन्ती लाल जमुनादास ने भूगर्भशास्त्र के आधार पर तथा अन्य अनेक प्रमाणों से यह निरुपित किया है कि प्राचीन द्वारका के स्थान पर ही नवीन द्वारका बसी हुई है । इसलिए वर्तमान द्वारकापुरी ही गोमती द्वारका कहीं जाती है ।

समुद्रतट और गोमती नदी के तट पर अवस्थित द्वारका की प्राकृतिकशोभा परम रमणीय और ह्रदय को शानित प्रदान करने वाली है । यहाँ का पर्यावरण पवित्र और सुरम्य है । इसे पर्यटन स्थल के रुप में भी विकसित किया जा रहा है । देश–देशान्तर से कृष्ण की निवासभूमि द्वारका की भव्यता और उसकी प्राकृतिक चारुता का आनन्द लेने के लिए पर्यटक प्रायः यहाँ आते रहते हैं । द्वारका का सांस्कृतिक महत्व भी कुछ कम नहीं है, यह क्षेत्र श्रीकृष्ण भक्ति का तो केन्द्रीय स्थल ही प्रतीत होता है ।

सोमनाथः –

सोमनाथ ज्योर्तिलिंगों में प्रथम ज्योतिलिंग के रूप में पूजनीय है । यह सौराष्ट्र (गुजरात) में वेरावल प्रभास पाटण से तीन मील की दूरी पर स्थित है । यहाँ भगवान् शंकर का दिव्य मन्दिर है जो अति प्राचीन है ।

---

1. स्कन्द–पुराण प्रभास खण्ड, द्वारका माहात्म्य, 10.1

सोमनाथ की प्रशंसा में अग्नि पुराण का कथन है कि सरस्वती, समुद्र, सोम, सोमग्रह, और सोमनाथ का दर्शन यह पांच सकार दुर्लभ हैं :-

सरस्वती, समुद्रश्च सोमः सोमग्रहस्तथा ।
दर्शनम् सोमनाथस्य सकाराः पंचदुर्लभाः ।।[1]

पुराणों में सोमनाथ की महिमा विस्तार से गायी गई है । शिवपुराण तो सोमनाथ परायण प्रतीत होता है । इसके अनुसार सोमनाथ के दर्शन मात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है और अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है । व्यक्ति जिस कामना से इस तीर्थ का सेवन करता है उसकी वह कामना सफल होती है ।

यह एक शैव तीर्थ हैं अतः शिवपुराण इसकी महिमा का गान करते करते थकता नहीं है :-

सोमलिंगम् नरोदृष्ट्वा सर्वपापात् प्रमुच्यते ।
यद्-यद् फलं समुद्दिश्य कुरुते तीर्थमुत्तमम्
तत्-तत् फलमवाप्नोति सर्वथा नात्रसंशयः [2]

दक्षिण भारत के प्रमुख तीर्थ

दण्डकारण्य :-

श्रीराम अपने वनवासकाल में जब दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं तब वे

---

1. अग्नि पु0 116/23
2. शिव पु0 कोटिरुद्र 15/56-58

महारण्य दण्डकारण्य में प्रवेश करते हैं । वहाँ पर अनेक मुनियों के आश्रम हैं । उस आश्रममण्डल में श्रीराम का भव्य स्वागत होता है । रामजी जहाँ–जहाँ जाते हैं वह स्थल तीर्थ बन जाता है ।[1] दण्डकारण्य श्रीराम के निवास से परमपवित्र हो गया हे, यह वन जहाँ एक ओर ऋषियों और मुनियों के आश्रमों के कारण शान्त दिखाई देता है वहीं दूसरी ओर यह भीषण भी प्रतीत होता है । गोदावरी के तट पर स्थित इस वन में, छाया में कुछ खाने के लिए अपनी चञ्चुओं से भूमि को कुरेदते हुए पक्षियों के झुण्ड दिखाई पड़ते हैं, शब्द करते हुए श्रांत, कपोत और कुक्कुटों के समूह वाले कूलद्रुम कहीं पर दिखाई देते हैं, और कहीं पर अपनी खुजली दूर करने के लिए हाथियों के कपोल भाग की रगड़ से हिलने वाले वृक्ष, फूलों से गोदावरी की पूजा कर रहे हैं ।[2]

दण्डकारण्य के सुरम्य पर्यावरण में कहीं पर जल से स्निग्ध, कोमल, हरित, तृणंकुर, वृक्षलतादि से नीलवर्ण और हरे भरे दिखाई देते हैं, और कहीं दूसरी ओर दूर–दूर तक विस्तृत होने के कारण रुक्ष और कठोर दिखाई पड़ रहे है । स्थान स्थान पर पर्वतीय झरनों की झनकार कहीं सुनाई पड़ रही है और कहीं पर ऋषि सेवित जलों वाले तीर्थ स्थानों, आश्रमों, पर्वतों और नदियों से युक्त भूभाग मन को लुभा लेते हैं ।[3]

पंचवटी :–

पंचवटी महाराष्ट्र प्रदेश का गोदावरी तटवर्ती तीर्थ है । यह तीर्थ स्थान रामकथा से जुड़ा है । वनवासी जीवन में सीता और लक्ष्मण के साथ राम ने यहाँ पड़ाव डाला था ।

---

1. वा0रा0 3.1.1
2. उत्तर रामचरित 2.9
3. उत्तररामचरितम् 2.14

रावण ने सीताहरण यही से किया था । भवभूति ने यहाँ के पर्यावरण का सुन्दर चित्रण किया है । भवभूति के अनुसार पञ्चवटी की शोभा अपूर्व है वह भयावह भी है और आकर्षक भी है । यहाँ एक ओर अस्पष्ट ध्वनि करते हुए कुञ्ज रुपी कुटीरों में कौशिक-कुल की धूतकार ध्वनि सुनाई पड़ रही है और कहीं पर बांसों के तीव्र शब्दों से मौन हुए काककुल से युक्त यह क्रौञ्च गिरि सुशोभित हो रहा है । इस पर्वत पर भ्रमण करने वाले मयूरों के कूजनों से सर्प पुराने चन्दन वृक्षों के तनों पर इधर-उधर सरक रहे हैं।
कहीं पर्वत की कन्दराओं में गदगद शब्द करते हुए गोदावरी नदी के जल सुशोभित हो रहे है और दूसरी ओर अग्रभाग में लटकते हुए मेघों से श्यामवर्ण के शिखरों वाले पर्वत समूह हैं; तथा परस्पर टकराने से सघनता के साथ उठती हुई ऊँची तरंगों के कोलाहलों से उत्कट और गहरे जलों वाले नदियों के ये पवित्र संगम हैं ।[1]

पम्पासर :-

गोदावरी तट प्रदेश में ही स्थित महर्षि अगस्त्य के आश्रम का समीपवर्ती एक अत्यन्त विस्तृत दूसरे समुद्र की तरह प्रतीत होने वाला पम्पा नाम वाला कमलों से भरा हुआ एक सरोवर है ।

इसके पर्यावरण का भव्य वर्णन रामायण में मिलता है । पम्पा का यह कानन शुभ दर्शन वाला है यहाँ पर शैल पर्वत और अत्यन्त उन्नत द्रुम सुशोभित हो रहे हैं । यहाँ पर अनेक प्रकार के पुष्प अवकीर्ण हैं । इसका जल कल्याणकारी और शीतल है । यह कमलों से संहादित शुभ-दर्शन वाली है, सर्प और व्यालों से सेवित मृग और द्विजों से

---

1. उन्तररामचरितम् 2.28.30

समाकुल है । नीले और पीले तथा हरित–दूर्वांकुरों से समलंकृत यह भू–भाग अत्यधिक सुशोभित है । तरुओं के शिखर चारों ओर से फूलों के से समृद्ध हैं । पुष्पित लतायें इसको चारों ओर से घेरे हुए है । यहाँ के वृक्ष ऐसे फूलों की वर्षा करते हैं जैसे मेघ जल बरसा रहे हों ।[1]

गोकर्ण :–

यह तीर्थ बंगलौर–पूना मार्ग पर हुबली से 100 किमी. की दूरी पर स्थित है । यह समुद्रतट पर छोटी पहाड़ियों के मध्य में विद्यमान है । यहाँ पर भगवान् शंकर का आत्मतत्वलिंग है । शंकर का आत्मतत्वलिंग मृगश्रंग के समान है, इसे गोकर्ण–महाबलेश्वर भी कहते हैं । महाभारत और अन्यान्य पुराणों में इस तीर्थ का महत्व वर्णित है । इस तीर्थ की ख्याति त्रिलोकी में व्याप्त है, समुद्र के मध्य में स्थित तथा सभी लोकों से नमस्कृत्य है । यह किंवदन्ती है कि यहाँ ब्रह्मा आदि देवगण, तपोधन, मुनिगण, भूतपक्ष, पिशाच, किन्नर, नागसिद्ध, चारण गन्धर्व, मनुष्य, सागर, सरितायें और पर्वत आदि भगवान् भवानीनाथ शंकर जी की उपासना करते हैं । यह भी कहा जाता है कि यहाँ शंकर जी का अर्चन चन्दन करते हुए जो व्यक्ति तीन रात्रियों तक उपवास करता है तो वह दश अश्वमेघ यज्ञों का फल प्राप्त करता है । वह इस जन्म में कृतार्थ हो जाता है शंकर जी उस पर कृपा करते हैं । यह दक्षिण का परम प्रसिद्ध शैवं तीर्थ है । महाभारत और नानापुराणों में इसका वर्णन प्राप्त होने से इसकी प्राचीनता स्वतः सिद्ध हो जाती है ।[2]

---

1. वा0रा0 किष्किंधा0 प्रथम सर्ग
2. देखिए महाभारत वनपर्व, तीर्थप्रकरण तथा पद्मपुराण स्वर्ग खण्ड 39.22.27

समुद्र के तट में अवस्थित होने के कारण इस शैवतीर्थ की प्राकृतिक शोभा दर्शनीय है । इसके समीपवर्ती अनेक उपतीर्थ भी हैं यहाँ का परिदृश्य और पर्यावरण आकर्षक और परमपवित्र है ।

श्रृंगेरी :–

यह पवित्र स्थान बंगलौर पूना मार्ग पर बिरूर स्थान से 60 मील चिकमंगलूर जनपद बंगलौर के पास स्थित है, यह दक्षिण के तुंगा नदी के तट पर स्थित है । अष्टम शताब्दी के प्रसिद्ध दार्शनिक भगवान् शंकराचार्य ने यहाँ पर अपनी पीठ की संस्थापना की थी । यह पीठ तुंगा नदी के तट पर है और शंकराचार्य मठ के नाम से प्रसिद्ध है । मठ के समीप वर्ती श्री शारदा एवं विद्यातीर्थ माहेश्वर के मन्दिर है । कहा जाता है कि इन दोनों मूर्तियों की स्थापना आदि शंकराचार्य की थी । कहते हैं कि प्राचीन काल में यहाँ विभाण्डक ऋषि का आश्रम था । श्रृंगेरी के समीप में एक वाराह नाम का पर्वत है जिससे चार नदियों का उद्‌गम हुआ है इन नदियों के उद्‌गम स्थान परम पवित्र तीर्थ माने जाते हैं । विभाण्डक ऋषि के आश्रम का विस्तार वाराह पर्वत से श्रृंगेरी तक रहा है । सम्प्रति शंकराचार्य का परम पावन मठ होने के कारण यह हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ है । शंकराचार्य हमारे देश के दर्शन कानन केशरी थे । उन्होंने राष्ट्रीय एकता के निमिन्त देश के चारों कोनों में अपने पीठ स्थापित किये थे । उन्होंने सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रीय सद्‌भाव हेतु जो यह प्रयास किया है उसका हमारे राष्ट्रीय एकता के इतिहास में बड़ा महत्व है ।[1]

मल्लिकार्जुन तीर्थ :–

यह शैव तीर्थ है । मनमाड–काचीगुडा द्रोणाचलम् मार्ग के समीपवर्ती यह तीर्थ है

---

1. कल्याण पत्रिका तीर्थांक, 317

है । यह तीर्थ श्रीशैल पर अवस्थित है । मल्लिकार्जुन द्वादशज्योर्तिलिंगों में से एक है । यहाँ 51 शक्तिपीठों से एक शक्ति पीठ भी है । शिवपुराण में मल्लिकार्जुन के महत्व का वर्णन प्राप्त होता है । लिंग पुराण और स्कन्द पुराण भी इस तीर्थ का स्मरण करते हैं । इससे इसकी प्रचीनता और प्रसिद्धि का पता चलता है । शिवपुराण में कहा गया है कि मल्लिकार्जुन के दर्शन–पूजन से भक्तों को अभीष्ट फल मिलता है ।[1]

तिरूपति बाला जीः–

यह तीर्थ मद्रास से 84 मील की दूरी पर रेनीगुन्टा के पास वेंकटाचल पर अवस्थित है । वेंकटाचल पर्वत में स्थित तिरुपति बाला जी आन्ध्र प्रदेश का विशेष महत्व है । स्कन्दपुराण का कथन है कि सभी वेद भगवान् श्रीनिवास का ही प्रतिपादन करते हैं, यज्ञ भी श्रीनिवास के ही आराधना के साधन है । सब कुछ श्रीनिवास के अधीन है । यह कहा जाता है कि यज्ञ,तप दोनों के अनुष्ठान तथा तीर्थों में स्नान का जो फल है उससे करोड़ गुना अधिक फल श्रीनिवास की सेवा से होता है । उन वेंकटाचल निवासी भगवान श्रीहरि का दो घड़ी चिन्तन करने वाला मनुष्य भी अपनी 21 पीढ़ियों का उद्धार करके विष्णु लोक को प्राप्त करता है ।[2]

अरूपाचलम् तीर्थ :–

आन्ध्र का यह तीर्थ विल्लुपुरम गुडूर मार्ग पर बिल्लुपुरम से 42 मील की दूरी पर है । यह भी शैव तीर्थ है यहाँ पर शंकर जी का भव्य मन्दिर है जो अरूणाचलेश्वर के

---

1. शिवपुराण 41.12
2. स्कन्दपुराणख वेंकटमहात्म्य 38–40

नाम से प्रसिद्ध है । यहाँ एक सरोवर भी है । स्कन्दपुराण में इसका महत्व वर्णित है । इसमें कहा गया है कि दक्षिण दिशा में द्राविड देश के अन्तर्गत भगवान् चन्द्रशेखर का अरुणाचल नामक एक महान् धर्मक्षेत्र है । इसका विस्तार 3 योजन है । यह पृथ्वी के हृदयस्थल के समान है । ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् शंकर यहाँ पर्वतरुप में ही प्रकट हुए थे । स्वयं परमेश्वर रुप होने के कारण यह क्षेत्र महर्षियों के लिए सुमेरु कैलास और मंदराचल से भी अधिक माननीय है–

अस्ति दक्षिणादिग्भागेद्राविडेषुतपोधन । अरुणाख्यं महाक्षेत्रं तरुणेन्दुशिखामणेः ।।
तत्रदेवः स्वयं शम्भुः पर्वताकारतां गतः। अरुणाचलसंज्ञावानस्ति लोकहितावहः ।1

<u>काञ्ची</u> :–

तमिलनाडु का यह तीर्थ मद्रास–धनुषकोटि मार्ग पर मद्रास से 57 मील की दूरी पर स्थित है । यह मोक्षदायिनी सप्तपुरियों– अयोध्या, मथुरा द्वारावती, माया, काशी अवन्तिका के साथ परिगणित की जाती है । इसके दो भाग है शिवकाञ्ची और विष्णुकाञ्ची । काञ्ची 51 शक्ति पीठों में से एक पीठ भी है । पुराणों में काशी की भाँति काञ्चीपुरी का महत्व बतलाया गया है । काशी और काञ्ची शंकर के दो नेत्र हैं । काञ्ची नगरी के साथ अनेक पौराणिक कथायें और किंवदन्तियाँ सम्बद्ध हैं । जिस प्रकार काशी शंकर

---

1. स्कन्द पुराण माहेश्वर खण्ड, अरुणाचलमहात्म्य, 3.10.14

भक्ति का केन्द्र है उसी प्रकार काञ्ची भी शिवशक्ति का केन्द्रीय स्थान है ।

रामेश्वरम् :-

चार दिशाओं के चार धामों में से रामेश्वरम् दक्षिण दिखा का धाम है । यह एक समुद्री द्वीप में स्थित है । द्वादश ज्योतिर्लिंगों में श्री रामेश्वर की गणना होती है । यह कहा जाता है कि श्रीराम जब यहाँ आये थे तो उन्होंने रामेश्वरम् की स्थापना की थी । अनेक पुराणों में रामेश्वर माहात्म्य पढ़ने को प्राप्त होता है । सम्पूर्ण भारतवर्ष में यह प्रतिष्ठित तीर्थ स्थलों में से एक है । भगवान् श्रीराम द्वारा बँधाये हुए सेते से जो परम पवित्र हो गया है वह रामेश्वर तीर्थ सभी तीर्थों और क्षेत्रों में उत्तम है । रामेश्वर सेतु के दर्शन मात्र से संसार सागर से मुक्ति हो जाती है तथा भगवान विष्णु एवं शिव में शक्ति तथा पुण्य की वृद्धि होती है ।[1]

अस्तिरामेश्वरं नाम रामसेतौ पवित्रितम् ।
क्षेत्राणामपि सर्वेक्षां तीर्थानामपि चोत्रमम् ।।
दृष्टमात्रे रामसेतौ मुक्तिः संसार – सागरात ।
हरे हरौ च भक्तिः स्यान्तथा पुण्यसमृद्धिता ।।

समुद्र के तट पर अवस्थित होने के कारण रामेश्वरम् तीर्थ की प्राकृतिक भव्यता अपूर्व है । चिरकाल से न केवल हमारे देश के ही तीर्थयात्री यहाँ आकर मानसिक शान्ति और विश्रांति का अनुभव करते हैं प्रत्युत विश्व के उत्साही पर्यटक यहाँ आते और प्रकृति की इस अपूर्व शोभा को देखकर आनन्दित होते हैं ।

---

1. स्कन्द पुराण, ब्रह्मखण्ड सेतुमाहात्म्य 1.17.19

<u>कन्याकुमारी</u> :-

भारत की दक्षिण नोक पर कन्याकुमारी एक परम पवित्र तीर्थ है । यह एक अन्तरीप है । इसके एक ओर बंगाल की खाड़ी दूसरी ओर अरब-सागर तथा सामने हिन्दमहासागर है । कन्याकुमारी में अरब-सागर, हिन्दमहासागर तथा बंगाल की खाड़ी इन तीन समुद्रों का संगम होता है । यहाँ की प्राकृतिक सुषमा दर्शनीय है । चैत्र की पौर्णमासी को सन्ध्या के समय युगवत् यदि बंगाल की खाड़ी के चन्द्रोदय और अरब सागर में सूर्यास्त को देखा जाए तो यहाँ का परिदृश्य अद्भुत और मनमोहक हो जाता है । उसी प्रकार प्रभात में बंगाल की खाड़ी में सुर्योदय और अरब सागर में चन्द्रास्त का दृश्य बहुत आकर्षक होता है । कन्याकुमारी में सूर्योदय तथा सूर्यास्त के भव्य दृश्यों का अवलोकन करने के लिए देश-विदेश के पर्यटक यहाँ आते हैं । सूरी का बिम्ब समुद्र जल-राशि से कहीं ऊपर उठता हुआ दिखाई देता है तो कहीं समुद्रजल के पीछे होने पर वह पीछे जाता हुआ दिखाई पड़ता है । प्रतिदिन प्रभात एवं सायं कन्याकुमारी की प्रकृति निर्मित नैसर्गिक रमणीयता देखने के लिए समुद्रतट पर जनसमूह एकत्रित होता है ।

इस तीर्थ के साथ देवी के कुमारी रूप का सम्बन्ध तथा बाणासुर और शंकर जी की सम्बद्धता जनश्रुतियों से सुनी जाती है । देवी यहाँ कुमारी कन्या के रूप में आविर्भूत हुई थी इसी लिए यह स्थान कन्याकुमारी के रूप में प्रसिद्ध हो गया है ।[1]

उपर्युक्त प्रकार से इस अध्याय में किया गया भारत के प्रमुख तीर्थों का सर्वेक्षण वास्तव में हमारे देश के तीर्थों का आंशिक विवरण ही कहा जा सकता है । इस विवरण

---

1. पद्म पुराण- 38.23

के अन्तर्गत उत्तर भारत के तीर्थों में हिमालय तीर्थों तथा गंगा–यमुना तीर्थों का ही उल्लेख मुख्यतः किया जा सका है । विस्तार भय से देश के पूर्वांचल के अनेक तीर्थों की चर्चा नहीं की जा सकी है । हमारे उन तीर्थों में "गया" का पितृ तीर्थ, राजगृह, नालन्दा, बेलूर मठ, गंगा सागर और कामाख्या पीठ जैसे हमारे अनेकों राष्ट्रीय तीर्थ है । पूर्व सागर तट के और भी अनेकों ऐसे तीर्थ हैं जिनका हमारे राष्ट्रीय जीवन में बड़ा ही धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व है । पूर्व सागर के तटीय प्रदेशों के इन तीर्थों में उत्कल का जगन्नाथ धाम तथा तमिलनाडु में मदुरै स्थित मीनाक्षी तीर्थ और महाबलीपुरम् विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

हमारा देश सुन्दरतम पर्वतों और सुन्दरतम नदियों का देश है । इन नदियों और पर्वतों ने हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति को जन्म दिया है । पर्वतों की गोद में और नदियों के तटों पर स्थित तीर्थों ने हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया है । तीर्थों के शान्त, एकान्त और सुरम्य पर्यावरण ने देश के दूर–दूर भागों में बसे लोगों का हृदय सदा से अपनी ओर खींचा है और अपने शान्त और एकान्त अंक में हमेशा ही एक छोटा भारत बसाये रखा है ।

अ ध्या य – 3

राष्ट्रीय एकता में तीर्थों का महत्व

3

राष्ट्रीय एकता में तीर्थों का महत्व

भारतीय राष्ट्र की धारणा के विकास में तथा राष्ट्रीय जीवन की एकता का सूत्र पिरोने में हमारे देश के तीर्थों का क्या योगदान रहा है । यह जानने से पूर्व हमें राष्ट्र का स्वरूप और भारतीय राष्ट्र के विकास की कहानी को समझ लेना आवश्यकता लगता है । हमारे संस्कृत वाड्.मय में राष्ट्र की धारणा कोई सर्वथा नई या अपरिचित चीज़ नहीं कही जा सकती । हमारे सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद के उल्लेखों से प्रतीत होता है कि उस युग में किसी खास प्रदेश में रहने वाला वह जनसमुदाय जो एक जातीय धागों में बंधा होता था, जिसकी सामूहिक सुख-सुविधाएं एक सी होती थी तथा जिसके सदस्यों की चारित्रिक विशेषताएँ तथा भाषा एक जैसी होती हैं "राष्ट्र" कहा जाता था । वैदिक राष्ट्र का यह स्वरूप कुरू, इक्ष्वाकु, यदु, अनु आदि नाम वाले जनों के रूप में ही मिलता है, ऐसे राष्ट्र को हम जन-राष्ट्र कह सकते हैं । राष्ट्र का यह स्वरूप बहुत कुछ प्राकृतिक रूप का था प्राकृतिक रूप से जिन लोगों की भाषा एक, धर्म संस्कृति एक, नस्ल एक और भौतिक जिन्दगी का रवैया एक, वे लोग एक राष्ट्र कहलाते थे ।[1]

प्रारम्भिक युगों के वैदिक राष्टों में समुदायिक जन चेतना के साथ-साथ समुदायगत राजनीतिक चेतना भीपैदा हो चुकी थी । रामायण और महाभारत का युग आते-आते तो राष्ट्र की पहचान ही उसकी राजनीतिक चेतना से निर्धारित हो गई । इस युग में राष्ट्र का संबंध प्राकृतिक कारणों तक सीमित न रहकर राजसत्ता का पर्याय बन चुका था । इस नये युग में जो जन अपना राजनीतिक अस्तित्व खो देता था, उसका राष्ट्र रूप ही विनष्ट

---

1. व्योमशेखर, राजसत्ता का अनुशासन पृ0 126

हो जाता था । इसीलिए रामायण और महाभारत में पदे-पदे "हतं राष्ट्रमराजकम्" का विचार प्रगट किया गया है ।[1]

रामायण-महाभारत के बाद पुराणों का युग आने तक हम राष्ट्र की धारणा एक बहुत ही स्वस्थ रूप में प्राप्त कर लेते हैं । विष्णु पुराण में हमें भारत राष्ट्र का सर्वोत्कृष्ट रूप उपलब्ध होता है :-

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।।[2]

विष्णु पुराण द्वारा प्रस्तुत की गई भारत राष्ट्र की रूपरेखा की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं । इसमेंराष्ट्र का निर्माण करने वाले दो तत्वों को सबसे अधिक महत्व दिया गया है । प्रथम तत्व वह धरती है जिस पर स्थायी रूप से आवासित होकर अपने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन को एक व्यवस्था में बाँधने वाला कोई जन-समुदाय राष्ट्र बनता था । दूसरा तत्व, जन स्वयं होता है । एक सबसे बड़ी विशेषता जो विष्णु पुराण के भारत राष्ट्र में मिलती है वह यह है कि इसमें हिमालय से लेकर दक्षिण सागर तक फैले पूरे भू-प्रदेश को एक इकाई माना गया है । इसके साथ ही इस भू-प्रदेश में रहने वाले सभी जन के लिए बिना किसी भाषा-भेद, धर्म-भेद के "भारतीय-जन" कहा गया है । भारत राष्ट्र की इस उदात्त-चेतना के महत्व को रेखांकित करते हुए डा0 विशनलाल गौड़, व्योमशेखर ने लिखा है :- हिमाद्रि से लेकर हिन्दी महासागर तक विस्तीर्ण भूखण्ड भारतवर्ष है तथा इसमें जन्में जन-गण भारतीय हैं । हम नहीं कह सकते कि आज की 'राष्ट्र' धारणा जैसा कट्टरपन इसमें है या नहीं, परन्तु इतना अवश्य है कि इसमें विविधताओं को पचाकर राष्ट्र की एकात्मकता कायम करने का संकल्प अवश्य है । इसलिए सतही तौर पर यह मान लेना कि भारत के विविध जग-गणों की एक राष्ट्रात्मक चेतना का उदय

---

1. व्योमशेखर, राजसत्ता का अनुशासन, पृ0126
2. विष्णु पुराण, 2.3.1

ब्रिटिश उपनिवेशवाद की देन था, ठीक नहीं जँचता ।

हिमाद्रि से सागर तक "हम सब भारतीय है ।" यह अहसास ही भारतीय राष्ट्रीयता है और इस ऐतिहासिक अहसास से ओत-प्रोत जनसमुदाय अपनी अनेक निजताओं और विविधताओं के बाबजूद आज का महान भारतीय राष्ट्र है ।[1]

राष्ट्र की एकता का एक अद्भुत स्वप्न सभ्यता के अरुणोदय से ही भारत के लोगों के मन में समाया रहा है । वह एकता किन्हीं बाहरी कारणों से आरोपित संधारणा नहीं थी, और न ही एक जैसे बाहरी रूपों अथवा एक जैसे धार्मिक विश्वासों की देन थी; यह एकता भारत के लोगों की कोई आन्तरिक भावना थी इसमें धार्मिक विश्वासों, आचारों और आस्थाओं की व्यापक सहिष्णुता थी । प्रत्येक विचारधारा और आस्था को सम्मान और प्रोत्साहन दिया जाता था ।[2]

एकता की जिस आन्तरिक भावना की बात पं0 जवाहर लाल नेहरू ने अंकित की है, उस आन्तरिक भावना का उत्तरोत्तर विकास करने में वैदिक काल से लेकर आज तक हमारे देश के तीर्थों का बहुत भारी योगदान रहा । हमारे तीर्थ आरम्भ काल से ही अलग-अलग पर्वों पर छोटे-बड़े राष्ट्रीय मेलों का केन्द्र बने रहे हैं । इससे हमारे देश की भावात्मक एकता को बड़ा बल मिलता रहा है । राष्ट्र के जन जीवन में तीर्थों के इस महत्व की पहचान वैदिक युग से ही आरम्भ हो गई थी । यही कारण है कि रामायण, महाभारत और पुराणों में तीर्थों के विस्तृत विवरण तथा तीर्थ यात्राओं के विस्तृत माहात्म्य-वर्णन

---

1. व्योमशेखर, राजसत्ता का अनुशासन, पृ0 127
2. नेहरू, भारत की खोज 1946

उपलब्ध होते हैं । केवल इतना ही नहीं पुराण युग के साहित्य से भी तीर्थों के इस राष्ट्रीय योगदान का परिचय मिलता है । हम यह नहीं भुला सकते कि कालिदास के नाटकों का अभिनय कभी उज्जयिनी के "महाकाल शिव" के पूजा–पर्वों पर हुआ था, भवभूति के नाटकों का अभिनय भी कालप्रिया (कालपी) के तीर्थ–उत्सवों में ही कभी हुआ था । इससे हमारे इस विचार की और अधिक पुष्टि हो जाती है कि तीर्थों में होने वाले उत्सव हमारे देश के राष्ट्रीय मेलों का ही रूप रहे हैं । इसी दृष्टिकोण के साथ हम अपने तीर्थों का सही महत्व समझ सकते हैं तथा प्राचीन युगों से चले आ रहे उनके स्वच्छ पर्यावरणों की रक्षा हेतु उचित योजनाएं बना सकते हैं ।

राष्ट्र के प्राचीन साहित्य में तीर्थशब्द की धारणा :–

वैदिक संहिताओं में तीर्थ शब्द का बहुधा प्रयोग हुआ है । ऋग्वेद संहिता के अनुशीलन परशीलन के पश्चात् यह विदित होता है कि उसमें तीर्थ शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग किया गया है । कुछ स्थान पर तीर्थ शब्द का अर्थ 'मार्ग' प्रतीत होता है और कुछ स्थलों पर इसका अर्थ 'नदी का उथला भाग' प्रतीत होता है और कहीं पर तीर्थ शब्द का अर्थ "एक पवित्र–स्थान" प्रतीत होता है ।[1] ऋग्वेद 8.19.37 की व्याख्या में, महर्षि यास्क के निरुक्त में कहा गया है कि उक्त मन्त्र में आये हुए "सुवास्तु" शब्द का अर्थ नदी है और "तुग्वन" का अर्थ तीर्थ है । जिसका तात्पर्य तरण–स्थल या पवित्र स्थान से है ।

इतना ही नहीं, ऋग्वेद में सभी नदियों तथा कुछ विख्यात नदियों की ओर बड़ी श्रद्धा के साथ नमन किया गया है, और उन्हें दैवी शक्ति सम्पन्न होने के कारण पूजनीय माना गया है । ऋग्वेद का नदीसूक्त अत्यन्त प्रसिद्ध है । इसमें ऋषि विश्वामित्र नदियों से प्रार्थना करते हैं ।[2] ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में जलों को देवी जलधारा के रूप में चित्रित

---

1. देखिये ऋग्वेद 1.169.6, 8.47.11, 10,31.3
2. ऋग्वेद, 3.33.1

किया गया है ।[1]

ऋग्वेद के पंचम और दशम मण्डल में लगभग बीस नदियों का आवाहन किया गया है । ऋग्वेद के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ अष्टम और दशम मण्डल में सप्तसिन्धुओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है । गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि (सतलज) परुष्णी, असिक्नी, वितस्ता इत्यादि ऋग्वेद की प्रसिद्ध और पवित्र नदियाँ है ।

ऋग्वेद 8.6.28 के अनुसार विदित होता है कि उस युग में पर्वतघाटियाँ और नदियों के संगम परम पवित्र माने जाते थे । वैदिक ऋषियों का विश्वास था कि महान् पर्वतों में देवता निवास करते हैं ।[2] वशिष्ठ धर्म सूत्र में प्रसिद्ध पर्वतों पवित्र नदियों, पवित्र सरोवरों, ऋषि-निवासों, गोशालाओं और देवताओं के मन्दिरों को, पाप विनष्ट करने वाले तीर्थस्थल के रूप में चित्रित किया गया है ।

वैदिक युग से आगे बढ़कर जब हम पुराणों में आते हैं तो तीर्थ संस्कृति का अभ्युदय अपनी चरमसीमा का स्पर्श कर चुका है । वायुपुराण एवं कूर्मपुराण के अनुसार हिमालय के सभी भाग पुनीत है । गंगा सभी-स्थानों में पवित्र है, समुद्र में गिरने वाली सभी नदियाँ पवित्र हैं और समुद्र सबसे अधिक पवित्र है ।[3]

पद्मपुराण में कहा गया है कि सभी नदियाँ चाहे वह ग्रामों से, नगरों से या वनों से होकर जाती हों, पवित्र हैं । जहाँ नदियों के तट का कोई तीर्थ नाम न हो, उसे

---

1. ऋग्वेद 7.49
2. ऋग्वेद 1.122.30; 1.132.6; 6.49.14
3. वायु पुराण 77.1.17

विष्णु तीर्थ कहना चाहिए ।[1] पुराणों में महान् पर्वतों को कुलपर्वत कहा जाता है । इन कुलपर्वतों को परमपवित्र तीर्थ कहा गया है इन कुलपर्वतों की संख्या 7 कहीं गयी है ।[2]

महेन्द्रोमलयः सह्यः शुक्तिमान ऋक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ।।

कालिदास ने भी अपने प्रसिद्ध काव्य कुमारसंभव में हिमालय का "देवतात्मा" के रूप में वर्णन किया है । श्रीमद्भागवत पुराण में पवित्र पर्वतों के सत्ताइस नामों का परिगणन किया गया है ।[3] और ब्रह्माण्ड पुराण में पवित्र पर्वतों के तीस नाम बताये गये हैं ।[4]

ऋग्वेद में विशाल वनों को भी देवता के रुप में चित्रण किया गया है । इसी से प्रभावित होकर वामन पुराण में कुरुक्षेत्र के सात वनों को पुण्यप्रदाता और पापाहारी के रुप में चित्रित किया गया है जो निम्नांकित हैं-- काम्यक वन, अदितिवन, व्यासवन, फलकीवन, सूर्यवन, मधुवन एवं पुण्य शीतवन ।[5]

वैदिक और पौराणिक साहित्य के उपर्युक्त विवरणों से यह बात सिद्ध होती है कि हमारे आर्य पूर्वज नदी-सागर वन और पर्वतों से गहरा लगाव रखते थे । वे प्रकृति के प्रेमी ही नहीं प्रकृति के सच्चे मित्र भी थे ।

---

1. पद्मपुराण, भूमिखण्ड 39.46-47
2. कूर्मपुराण,1.47.23-24
3. भागवतपुराण 5.19.16
4. ब्रह्माण्ड पुराण 2.16.20-23
5. वामन पुराण, 34.3-5

हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियाँ, प्राणदायिनी विशाल नदियाँ एवं बड़े-बड़े वनों की सौन्दर्य शोभा एवं गरिमा सभी लोगों के मन को मुग्ध कर लेती है । ऐसी दृश्यावलियाँ देखकर मन यह सोचने को बाध्य हो जाता है कि अवश्य कोई इनमें दैवी सत्ता विद्यमान है और इस प्रकार विचार करते ही इनमें परमब्रह्म की आंशिक रुप में अभिव्यक्ति होने लगती है । प्रकृति के इन सुरम्य स्थलों को देखकर मन विश्राम को प्राप्त होता है । चञ्चल वृत्तियों का समाधान होने लगता है ।

महाभारत और पुराणों में तीर्थयात्रा का महत्व-

महाभारत और पुराण तीर्थों के महत्व को यज्ञ से बढ़कर बताते हैं । महाभारत के वनपर्व में देवयज्ञों और तीर्थयात्राओं की तुलना की गई है । यह कहा गया है कि यज्ञों में बहुत से पात्रों, यन्त्रों, संभार संचयन, पुरोहितों का सहयोग पत्नी की उपस्थिति आदि की आवश्यकता होती है । फिर यज्ञों में धन भी बहुत खर्च होता है, अतः उनका सम्पादन केवल राजकुमार अथवा धनिक लोग ही कर सकते हैं । निर्धन, विधुर, असहाय लोग यज्ञों का सम्पादन भली-भाँति नहीं कर सकते, इसलिए कहा गया है कि तीर्थयात्रा द्वारा जो पुण्य प्राप्त होते हैं वे अग्निष्टोम जैसे यज्ञों द्वारा प्राप्त होते हैं, वे अग्निष्टोम जैसे यज्ञों द्वारा प्राप्त नहीं हो सकते, इसलिए तीर्थयात्रा यज्ञों से भी श्रेष्ठ और उत्तम फल प्रदान करने वाली है ।[1]

अनेक पुराणों में तीर्थों में फलप्राप्ति और अप्राप्ति के विषय में अनेक वचन प्राप्त होते हैं । प्रायः सभी पुराण इस बात पर सहमत प्रतीत होते हैं, कि श्रद्धालु, जितेन्द्रिय,

---

1. महाभारत वनपर्व 82.13-17

आस्तिक, और विशुद्ध अन्तःकरण वाले व्यक्ति को तीर्थ फल प्राप्त होता है । इस सम्बन्ध में वायुपुराण का कथन है कि जो श्रद्धारहित, पापात्मा, नास्तिक और संशयात्मक तथा कुतर्क करने वाला है, ये लोग तीर्थ फलभागी नहीं होते ।[1] स्कन्दपुराण के अनुसार पवित्र स्थान अर्थात् तीर्थ, यज्ञ और दान मन को शुद्ध करते हैं ।[2] पद्मपुराण का कथन है कि यज्ञ, व्रत, तप एवं दान कलियुग में भली प्रकार से सम्पादित नहीं हो सकते, किन्तु गंगा स्नान और हरिकीर्तन सर्वथा निर्दोष हैं । विष्णु धर्मोत्तर पुराण सभी वर्णों और सभी आश्रमवासियों को तीर्थ सेवन का परामर्श देता है, उसके अनुसार तीर्थ पापों का शमन करने वाला तथा सज्जनों में धर्म की वृद्धि करने वाला होता है ।[3]

कतिपय पुराण भौमतीर्थों के अतिरिक्त मानसतीर्थों का भी उल्लेख करते हैं । इन ग्रन्थों में मानस तीर्थ की प्रशंसा में अनेक वचन प्राप्त होते हैं । मानसिक शुद्धि का महत्व सर्वोपरि है क्योंकि यदि मन मलिन अर्थात् दोषयुक्त बना रहता है तो तन सुन्दर नहीं हो सकता, इसलिए अन्तःकरण की शुद्धि हेतु मानसतीर्थ महत्वपूर्ण है । कुछ ऐसे सदाचार और शीलाचार हैं, जिन्हें मानस तीर्थ कहा जा सकता है । तदनुसार सत्य, क्षमा, इन्द्रिय–संयम, दया, ऋजुता, दान, आत्म निग्रह, संतोष, ब्रह्मचर्य, मृदुवाणी, ज्ञान, धैर्य और तप तीर्थ हैं, और सर्वोच्च तीर्थ मन की शुद्धता है । लोभान्ध, कामान्ध, दुष्ट, क्रूर वंचक, कपटी, विषयासक्त पुरुष यदि सभी तीर्थों में स्नान कर लें फिर भी वे पवित्र नहीं हो सकते । जलचर प्राणी जल में जन्म लेते हैं और उसी में अपना शरीर छोड़ देते हैं किन्तु वे स्वर्गलोक नहीं चले जाते । इसलिए यदि मन शुद्ध नहीं है तो दान, यज्ञ, तप, निर्मलता, तीर्थयात्रा और

---

1. वायुपुराण 77.125
2. स्कन्द पुराण, 1.1.31–37
3. विष्णु–धर्मोत्तर पुराण 3.273.7–9

विद्या को तीर्थ का पद नहीं प्राप्त हो सकता ।[1]

इधर ब्रह्मपुराण भी कहता है कि जो दुष्ट हृदय है उसे तीर्थों में स्नान करने से शुद्धि प्राप्त नहीं हो सकती । यदि किसी पात्र में मदिरा रखी गई हो और उसे सैकड़ों बार भी धोया जाए तो भी वह पवित्र नहीं होता है । उसी प्रकार जिन लोगों की इन्द्रियाँ असंयमित हैं, जिनके हृदय पुष्ट और कपटी हैं उन्हें तीर्थ, दान और यज्ञ इत्यादि पवित्र नहीं कर सकते । जितेन्द्रिय जहाँ कहीं भी रहता है वहीं कुरुक्षेत्र है वहीं प्रयाग है, वहीं काशी मथुरा और पुष्कर क्षेत्र है ।[2] यह कहा जाता है कि आत्मारुपी नदी संयमरुपी जल से भरी हुई है और वह सत्य से प्रवहमान है उसका तट शील है तथा उसकी लहरें दया है, हे पाण्डु पुत्र ! उसी में स्नान करना चाहिए, जल से अन्तरात्मा शुद्ध नहीं होती ।[3]

पद्मपुराण 2.39.56–61 ने तीर्थों के अर्थ का परिष्कार करते हुए उसके परिधि को विस्तृत कर दिया है । तदनुसार जहाँ अग्निहोत्र या श्राद्ध होता है, मन्दिर, वेदध्वनि से युक्त गृह, गोशाला, सोमपायी आवास, अस्वत्थ वृक्ष युक्त वाटिकायें, पुराणपाठ परायण निकेतन, गुरु का आवास, पतिव्रतानारी का गृह, आदर्श–पिता और आदर्श पुत्र का निवास स्थल ये सभी स्थान तीर्थ हैं ।[4]

स्कन्दपुराण का कथन है कि तीर्थयात्रा के प्रसंग का परम प्रयोजन संतसमागम है, अतः जिस भू–भाग में संत निवास करते हैं वही स्थल तीर्थ कहलाता है । भगवद्भक्त,

---

1. स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, 6.28–45
2. ब्रह्मपुराण, 25.4.6
3. वामनपुराण, 43.25
4. पद्मपुराण, 2.39.56

संत, तीर्थों को भी तीर्थत्व प्रदान करते हैं । अतः संतसमागम, सज्जन मिलन, तीर्थों का भी तीर्थ है । श्रीमदभागवत पुराण में भी भागवत पुरुषों को तीर्थों से श्रेष्ठ तीर्थ कहा गया है। धर्मराज युधिष्ठर महात्मा विदुर से कहते हैं कि हे प्रभु ! आप जैसे भगवद् भक्त स्वयं तीर्थ स्वरूप हैं क्योकि आप लोग अपने हृदय में विराजित भगवान् गदाधर के प्रभाव से तीर्थों को भी तीर्थ बना देते हैं । इसलिए महात्मा, संत और सज्जन पुरूषों के संग को तीर्थों से भी श्रेष्ठ तीर्थ, पवित्रता का संविधान करने वाला जंगम तीर्थ कहा गया है । स्कन्दपुराण के अनुसार श्रेष्ठ पुरुषों का समागम, तीर्थ से बढ़कर बताया गया है क्योकि उसका परिपक्व फल शीघ्र प्राप्त होता है और वह दुरन्त–पाप विनाशी होता है किं बहुना, श्रेष्ठ पुरुषों का संग सहस्त्र किरणों से प्रकाशमान सूर्योदय की भाँति अपूर्व प्रकाशकेन्द्र है, जो कि अन्तःकरण में व्याप्त अज्ञानरुपी अंधकार का विनाश करने वाला है ।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त पर्यालोचन से यह विदित हो जाता है कि तीर्थों में अन्य बातों के अतिरिक्त साधु–संगमों का महत्व सर्वोपरि है । कहना न होगा कि साधु संगम से मन में ज्ञान का उदय होता हैं जिससे प्राणी को त्रिकालाबाधित, अद्वैत आत्मा का साक्षात्कार होता है यह ज्ञान गुरुजन प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा से प्रदान करते हैं ।[2]

इस प्रकार पुराणों में और धर्मशास्त्रों में मानसतीर्थो का प्रतिपादन और उनके महत्व का वर्णन बड़े उत्साह के साथ किया गया है । स्कन्दपुराण का यह दृढ़तर कथन है कि ध्यान से पवित्र ज्ञानरुप जल से भरे हुए तथा रागद्वेष रुप मल को दूर करने वाले मानसतीर्थ में जो पुरुष स्नान करता है वह परम गति को प्राप्त कर लेता है ।[3]

---

1. स्कन्द पुराण, 11.6–7
2. गीता 4.34
3. स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, 6.41

उपर्युक्त सन्दर्भों और उद्धरणों एवं विवेचन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि धर्म शास्त्रकारों ने तीर्थों की तीन श्रेणियाँ की है । (1) जंगम तीर्थ (2) मानसतीर्थ (3) भौमतीर्थ । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इन त्रिविध तीर्थों के मध्य केवल भौम तीर्थ ही हमारा प्रतिपाद्य और अध्ययन का विश्लेषणीय विषय है ।

भौम तीर्थ :-

हमारा देश भारत देवभूमि कहा जाता है यह अपने प्राकृतिक वैभव के लिए विश्व में विख्यात है, प्रकृति सुन्दरी की जैसी अपूर्व शोभा यहाँ देखने को मिलती है अन्यत्र नहीं । ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता ने विश्व के सम्पूर्ण बिखरे हुए सौन्दर्य को एक ही स्थान में देखने की इच्छा से इस देवभूमि भारत की रचना की है । इसलिए यह किंबदन्ती सत्य है, कि यहाँ देवता लोग भी जन्म लेने के लिए अपनी आतुरता दिखाते हैं । जहाँ पर भूमि का प्रभाव अद्‌भुत होता है और जलधारायें अत्यन्त पवित्र होती हैं वे स्थल परम पवित्र स्थल और तीर्थ कहे जाते हैं । नदियाँ, पर्वत और समुद्र तथा सप्तपुरियाँ ये सब भौम तीर्थ कहे जाते हैं ।

हमारे धर्मशास्त्रों और पुराणों में पवित्र धार्मिक स्थलों और तीर्थों का उल्लेख मिलता है और उनमें भारतभूमि में प्राप्त होने वाले तीर्थों की संख्या का भी उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु तीर्थों की संख्या के विषय में शास्त्रों और पुराणों में मत-मतान्तर प्राप्त होते हैं । मत्स्यपुराण के अनुसार आकाश अन्तरिक्ष और भूमि में प्राप्त होने वाले तीर्थ पैंतीस करोड़ हैं, और ये सभी गंगा में अवस्थित माने जाते हैं । वामन पुराण का कथन है कि पैंतीस करोड़ शिवलिंग हैं, जो तीर्थ है । महाभारत वनपर्व 83/202 के अनुसार केवल पुष्कर क्षेत्र में ही दश सहस्त्र कोटि तीर्थ प्राप्त होते हैं ।

शास्त्रों में और पुराणों में तीर्थों के सम्बन्ध में और फलश्रुति के संबंध में अतिरंजनापूर्ण कथन प्राप्त होते हैं । ऐसा प्रतीत होता हैं कि तत्–तत् तीर्थों के लेखक पुरोहितों ने बहुत बढ़ा–चढ़ाकर इनके अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किये हैं । यदि कोई व्यक्ति किसी एक तीर्थ के विषय में पढ़े और उसके विषय में उल्लिखित प्रशस्तियों पर ध्यान न दें तो उसे ऐसा प्रतीत हो सकता है कि एक ही तीर्थ की यात्रा से इस जीवन एवं परलोक में उसकी सारी अभिलाषायें पूर्ण हो सकती है ।

इन अतिरंजनापूर्ण वर्णनों के कतिपय पौराणिक वर्णन अवलोकनीय है । वाराणसी के प्रशस्ति में कूर्मपुराण का कथन है कि वाराणसी से बढ़कर कोई अन्य स्थल नहीं है और न कोई ऐसा होगा । फलश्रुति की अतिशयोक्ति इतनी तीव्रतर है जिस पर विश्वास करना कठिन कार्य है । इसी तारतम्य में उक्त पुराण का कथन है कि आमरण काशी में निवास कर लेने से न केवल व्यक्ति ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है प्रत्युत वह जन्म–मरण के शाश्वत चक्र से भी मुक्त हो जाता है और उसे पुनर्जन्म नहीं ग्रहण करना पड़ता ।[1] अग्निपुराण मत्स्य कूर्म में काशीवास की महिमा का वर्णन इतना अतिरंजनापूर्ण है कि वैसा अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता, तदनुसार उनका कथन है कि काशी में जाने के बाद व्यक्ति को अपने पैरों को पत्थरों से कुचल डालना चाहिए जिससे कि वह अन्य तीर्थों में न जा सकें और सदा के लिए काशीवास करें और वहीं निधन को प्राप्त हो ।[2]

सभी पुराणों में से ब्रह्मपुराण में तीर्थों का विशद वर्णन प्राप्त होता है । ब्रह्म पुराण ने तीर्थों को चार भागों में विभक्त किया है, 1. दैवतीर्थ – जो देवताओं के द्वारा

---

1. कूर्मपुराण 1.31.64 तथा मत्स्य पुराण 182.16.17

2. अग्निपुराण 122.3

उत्पन्न माने जाते हैं, (2) आसुरतीर्थ जो गय, बलि जैसे असुरों से सम्बन्धित है । (3) आर्ष तीर्थ- जो ऋषियों द्वारा संस्थापित हैं ।
(4) मानुष तीर्थ - जो अम्बरीष, मनु और कुरु इत्यादि राजाओं द्वारा निर्मित हैं ।[1] यही पुराण देव, आसुर, आर्ष, मानुष तीर्थों को क्रमशः कृतयुग (सतयुग), त्रेता, द्वापर एवं कवि नामक युगों से सम्बन्धित बतलाता है । ब्रह्मपुराण अपने तीर्थवर्णन के प्रसंग में विन्ध्याचल के दक्षिण की 6 नदियों और हिमालय से निर्गत 6 नदियों को देवतीर्थों में सर्वाधिक पवित्र मानता है । ये पवित्र नदियाँ निम्नांकित है- गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी, भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका एवं वितस्ता ।

विश्व धर्मो में तीर्थ का महत्व :-

विश्व में प्रायः सभी धर्मों में तीर्थयात्रा के महत्व के वर्णन प्राप्त होते हैं । प्रायः सभी देशों में कतिपय स्थल पवित्रतम माने जाते हैं । ऐसे पवित्रतम स्थल ही तीर्थपद-वाच्य होते हैं । इन स्थलों की तीर्थयात्रा के सम्बन्ध में सभी धर्मों में प्रशंसापरक वचन उपलब्ध होते हैं । जिस प्रकार मुस्लिम धर्मावलम्बियों के धार्मिक कर्त्तव्यों में हज के लिए जाना आवश्यक माना जाता है । इसलिए वे अपने तीर्थ मुहम्मद साहब के जन्म एवं मृत्यु के पवित्र स्थल मक्का मदीना जाया करते हैं । उसी प्रकार बौद्ध धर्मावलम्बी लोग महात्मा बुद्ध से सम्बन्धित अपने चार तीर्थ स्थलों- लुम्बिनी, बोधगया, सारनाथ और कुशीनारा अवश्य जाते हैं । ईसाई धर्मावलम्बी लोगों के लिए जेरुसलम सर्वाधिक पवित्र स्थल माना जाता हैं । ऐतिहासिक अध्ययन से यह बात विदित होती है कि प्राचीनकाल में अपने तीर्थस्थान जेरुसलम को प्राप्त करने के लिए सैनिक तीर्थ यात्रायें तक की गई थी । उस समय जेरुसलम पर मुसलमानों का

---

1. ब्रह्मपुराण, 70.16-19

अधिकार था, वे मुसलमानों को इस अधिकार से हटाना चाहते थे, और अपना तीर्थस्थल प्राणों की बाजी लगाकर भी स्वतन्त्र कराना चाहते थे। ईसाई के पवित्रतम तीर्थस्थल जेरुसलम को प्राप्त करने के लिए अपना सर्वस्व त्याग और जीवन तक का बलिदान कर दिया था। इतिहास में अपने पवित्रतम स्थल जेरुसलम तीर्थ के प्रति इनका अगाध प्रेम आज भी चर्चित है।[1] इसी प्रकार विश्व के विस्तृत भूपटल पर प्रायः प्रत्येक जाति और धर्म के पवित्रतम स्थल तीर्थ के रुप में दिखाई देते हैं।

भारत : तीर्थों का देश :-

भारतवर्ष तो तीर्थों का देश ही कहा जाता है। हिन्दू धर्म में तीर्थों को जो स्थान प्राप्त है वह अतुलनीय है। भारतवर्ष में पवित्र स्थानों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनका महत्व केवल धार्मिक ही नहीं प्रत्युत सांस्कृतिक और पर्यावरणिक भी है। यहाँ विशाल और श्लम्बी नदियाँ, पर्वत एवं वनकान्तार, पुण्य प्रदान करने वाले दिव्यस्थलों के रुप में वर्णित हैं। यहाँ की प्राकृतिक शोभा और सम्पूर्ण परिवेश मन को शान्ति प्रदान करने वाले हैं। यह अद्‌भुत और विचित्र बात है कि भारतवर्ष ने तीर्थ यात्रा के स्थलों को वहाँ चुना है, जहाँ प्रकृति में कुछ विशिष्ट रमणीयता या सुन्दरता रही है। प्रकृति के इस रमणीय और उदान्त रुप के दर्शन से मन की संकीर्णता दूर होती है और उसमें देवत्व-भाव उत्पन्न हो जाता है। और अनन्त में वह अपनी स्थिति का परिज्ञान करने में सफल होता है। यही कारण था कि भारत में जहाँ एक समय सभी लोग मांस भक्षी थे, वे प्रकृति के इन दिव्यस्थलों के सम्पर्क में आकर जीवन के प्रति सार्वभौम सहानुभूति की भावना के पक्षधर हो जाते हैं, और पशु

---

1. रवीन्द्र नाथ ठाकुर, साधना, पृ0 15

भोजन का परित्याग कर देते हैं । यह मानव जाति के इतिहास में एक विलक्षण घटना है ।[1]

तीर्थ : सांस्कृतिक एकता के **सूत्र**:-

प्राचीनकाल में हमारे देश में तीर्थ यात्राओं से व्यक्ति और समाज दोनों को बहुत लाभ मिलता था । उस समय भारतवर्ष अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, और लोग छोटे-छोटे सम्प्रदायों में बंटे हुए थे । यह तीर्थ यात्राओं का ही महत्वपूर्ण योगदान है जिन्होंने भारतीय संस्कृति एवं देश की महत्वपूर्ण मौलिक एकता की भावना का सम्बर्धन किया है । हमारे देश के सभी निवासी, हिन्दुओं ने चाहे वह उत्तरी भारत के निवासी हो, या दक्षिणी भारत के निवासी हों, सभी के लिए वाराणसी और रामेश्वरम् पवित्र स्थल और तीर्थ हैं प्राचीनकाल में हिन्दूसमाज वर्णव्यवस्था से चार भागों में विभाजित हो गया था । जातिगत संकीर्णता के कारण हिन्दू समाज में भिन्नता दिखाई देती थी । किन्तु तीर्थयात्राओं ने सभी को पवित्र नदियों और पवित्र स्थलों में लाकर एक स्थान में एक साथ बेठा दिया है । ऊपर से वर्ण और जाति के कारण, राज्य और सम्प्रदाय के कारण भिन्न-भिन्न प्रतीत होने वाले मानव समूह, पवित्र स्थलों और तीर्थस्थानों में आकर एक हो जाते हैं । यहीं अनेकता में एकता, भेद में अभेद, तीर्थ संस्कृति की देन है ।

भारतीय तीर्थों में संतो, सज्जनों, दार्शनिकों, विचारकों और साधुओं का समागम सदा से होता रहा है । बहुत से तीर्थ ऋषियों और मुनियों के तपोवन रहे हैं । इसलिए तीर्थों के वातावरण का स्तर उच्च अध्यात्मिक, धार्मिक, सात्विक विचारों वाला रहा है । तीर्थयात्री ऐसे वातावरण में जाकर श्रद्धाभक्ति और भव्यभावनाओं तथा विचारों से ओतप्रोत हो जाता था और

---

1. रवीन्द्र नाथ ठाकुर, साधना, पृ0 15

उसके मन में उर्ध्वगामिनी वृत्ति का उदय होता था ।[1]

हमारे देश में तीर्थयात्रा करना एक ऐसा साधन रहा है, जो साधारण लोगों को स्वार्थ मय जीवन कर्मों से दूर रखने में सहायक होता था । तीर्थ यात्रा उन्हें उच्चतर एवं दीर्घकालीन महान नैतिक एवं अध्यात्मिक जीवन मूल्यों के विषय में सोचने के लिए प्रेरित करता रहता था ।[2]

हिन्दू धर्मावलम्बियों का यह विश्वास है कि पवित्र तीर्थस्थलों पर देवताओं का निवास रहता है । इसीलिए कविकुल गुरु कालिदास हिमालय का वर्णन देवतात्मा के रुप में करते हैं । उनके अनुसार हमारे देश के उत्तर में स्थित नगाधिराज हिमालय केवल पर्वतराज ही नहीं प्रत्युत उत्तर दिशा का देवतात्मा है ।[3] इसी भावना से प्रेरित होकर संभवतः धर्मशास्त्रियों ने जनसामान्य को तीर्थ यात्राओं के लिए प्रेरित किया है । तीर्थयात्राओं से जनसामान्य के हृदय में धर्म के सर्वमान्य गुणों का उदय होता है । सर्वसाधारण सामान्य धर्म का लक्षण शास्त्रों में निम्नवत् बताया गया है ।[4] क्षमा, सत्य, दम, शौच, दान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा, गुरु शुश्रुषा, तीर्थानुशरण दया, आर्जव, निर्लोभता, देव ब्राह्मण पूजन, ईर्ष्या से मुक्ति आदि सर्वसाधारण और सामान्य धर्म कहे जाते हैं । तीर्थयात्रा में जाने वाले तीर्थयात्री को तीर्थों में साधुसंगम का लाभ मिलता है जिससे उसे -रामादिवत् प्रवर्तितव्यम् न रावणादिवत्' का सन्देश-

---

1. रामजी उपाध्याय : भारतीय संस्कृति पृ0 18
2. पी.वी. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास तृतीय खण्ड पृ0 1300
3. कुमार संभव 1.1
4. विष्णुधर्म सूत्र 2.16-17

मिलता है, और उसकी चित्रवृन्ति उर्ध्वगामिनी हो जाती है । मन की संकीर्णता समाप्त हो जाती है, भेदभाव दूर हो जाता है, तीर्थयात्रा का यही लाभ विश्वबन्धुत्व की भावना और राष्ट्रीय एकता के रुप में पर्यवसित होता है । किन्तु आज आधुनिकता का दम्भ भरने वाले कतिपय लोग हमारे पूर्वपुरुषों के धार्मिक विश्वासों, धार्मिक मान्यताओं पर आस्था नहीं रखते और आजकल तीर्थों में विचरण करने वाले पुरोहितों और पण्डों की लोभान्धता, कर्मकाण्ड की प्रचुरता और उद्विग्न कर देने वाली रुढ़िवादिता ने उनके विश्वास को और डगडमा दिया है जिससे तीर्थ उन्हें निरर्थक लगते हैं । लेकिन फिर भी तीर्थों से संबंध रखने वाली प्राचीन रुचि और प्रवृन्ति को यों ही अनर्गल नहीं समझना चाहिए ।[1]

तीर्थों का पर्यावरण -

आज भी बीसवीं शताब्दी में तीर्थों का पर्यावरणिक और सांस्कृतिक महत्व कुछ कम नहीं है । यद्यपि आजकल तीर्थों में भी मलिन बस्तियाँ, जनसंख्या प्रभार और प्रदूषण दिखाई देता है तथा दूसरी ओर तीर्थ पुरोहितों और पण्डों की लोभान्धता से तीर्थयात्री त्रस्त हो रहे हैं, फिर भी कुछ तीर्थों की प्राकृतिक छटा, नयनाविराम, निसर्ग-निर्मित दृश्यावलियाँ, मनोहर जल प्रपात, लघु और विशाल पर्वत श्रेणियाँ, सुगन्धित पुष्पों से अवनत लताएं और पादप, कल-कल निनाद करती हुई पवित्र नदियाँ, स्वाभाविक उछल-कूद करते हुए वन्य पशु-पक्षी किस तीर्थ यात्री का मन मोहित नहीं करते ? आज भी तीर्थों में ऋषियों और मुनियों, तपस्वियों और साधकों के आश्रम अवस्थित हैं । समय समय पर संतसमागम, वेदान्तप्रवचन, दर्शनभक्ति तत्वमीमांसा आदि का आयोजन होता रहता है । इन आयोजनों में सम्मिलित होकर तीर्थ-यात्रियों का मानसिक संस्कार और परिष्कार होता है और वह पशु सुलभ धरातल से ऊपर

पी.वी. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास तृतीय खण्ड पृ0 1300

उठकर देवत्व की प्राप्ति करने का प्रयास करता है । देश के एक कौने में रहने वाले लोग दूसरे कौनों में स्थित तीर्थों में जाकर एकता का अनुभव करते हैं । हिन्दुओं की एक देशव्यापी स्तुति में मातृभूमि के स्वरूप की कल्पना और पूजा, गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और काबेरी इन सात नदियों के रुप में की गई है । यह सभी नदियाँ तीर्थ हैं और इस समस्त भूखण्ड में फैली हुई हैं । हिन्दुओं की एक दूसरी स्तुति है, जिसमें मातृभूमि का स्वरूप बताते हुए उसे अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची-अवन्तिका और द्वारावती इन सात पुरियों का देश कहा गया है । यह सातों पुरियाँ हमारे देश के प्रसिद्ध तीर्थ हैं । हिन्दुओं की तीर्थयात्रा इन प्रार्थनाओं की भावना को पुष्ट करती है । इसके अनुसार प्रत्येक हिन्दू का कर्त्तव्य है कि वह अपने जीवनकाल में अपने पवित्र धर्मस्थलों का दर्शन करें, इन तीर्थयात्राओं से राष्ट्रीय एकता सुदृढ होती है । हिन्दु धर्म के मुख्य रूप से तीन सम्प्रदाय है । वैष्णव, शैव और शाक्त । हिन्दू धर्म के इन तीनों सम्प्रदाओं ने अपने अपने तीर्थ स्थानों की सूचियाँ दी है । जो भारतवर्ष भर में फैले हुए किसी एक प्रान्त तक सीमित नहीं है । इस प्रकार हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदाय अपने अनुयायिओं को देश के विभिन्न और दूरतम भागों में तीर्थयात्रा के लिए प्रेरित करते रहे हैं । जिससे समान मातृभूमि के प्रति उनके हृदयों में जीवित जागृत प्रेम उत्पन्न होती थी । संभवतः इसी विचार से प्रसिद्ध दार्शनिक शंकराचार्य ने अपने चार मठ देश के चार कौनों में बनाये थे । उत्तर में हिमालय के पास ज्योर्तिमठ, पश्चिम में शारदामठ, पूर्व में गोवर्धन मठ और दक्षिण में श्रृंगेरी मठ । ऐसा प्रतीत होता है कि देश की चारों दिशाओं में शंकराचार्य ने जब अपने चारों मठों की स्थापना की थी,

---

1. राधाकुमुद मुकर्जी, हिन्दू सभ्यता, पृ0 75

तो उनके मन में समग्र राष्ट्र की एकता और राष्ट्रीयता के भाव समाये हुए थे । हमारे धार्मिक ग्रन्थ श्रीमद्भागवत महापुराण और मनुस्मृति में अनेक स्थलों में राष्ट्रीयता उत्पन्न करने वाले वचन पाये जाते हैं । इन ग्रन्थों में भारतवर्ष को देवों के द्वारा निर्मित देश कहा गया है । हमारे देवता भी इस भूमि को स्वर्ग मानकर यहाँ जन्म लेने की इच्छा करते हैं ।[1] एक स्थान पर लंकाविजय के पश्चात् श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं कि हे लक्ष्मण । यह लंका यद्यपि स्वर्णमयी है, किन्तु फिर भी मुझे अच्छी नहीं लगती । जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठतर होती है ।[2] इन कथनों से यह विदित होता है कि हिन्दुओं के धर्म का अंग देशप्रेम भी रहा है । और इसी देशप्रेम से प्रेरित होकर राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता हेतु प्राचीनकाल में तीर्थ यात्रायें की जाती थी ।

तीर्थ : राष्ट्रीय भावात्मक एकता के स्रोत -

यह सर्वविदित है कि विश्व के सभी धर्मों में कुछ विशिष्ट भूभागों और स्थलों को पवित्र माना गया है तथा इन पवित्र स्थलों में जाने के लिए शास्त्रीय व्यवस्था के विधान भी लिखित रुप में प्राप्त होते हैं । शास्त्रों में तीर्थ यात्रा करने के विषय में अनेक अर्थवादमूलक प्रशंसावचन भी प्राप्त होते हैं ।

हमारे देश भारत में मनुष्य के लिए प्राप्तव्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पदार्थ

---

1. गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे ।
ब्रह्मपुराण ।40
तं देवनिर्मितं देशम् ब्रह्मावर्तप्रचक्षते । मनुस्मृति- 2.17
2. अपि स्वर्णमयी लंका नमेलक्ष्मणरोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।।
सुभाषितश्लोक

बतलाये गये हैं । झोपड़ी से लेकर राजमहलों तक रहने वाले निर्धन और धनी सभी लोगों के लिए सम्पूर्ण जीवन भर इन्हीं चार पदार्थों की प्राप्ति हेतु प्रयत्न करना है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों में परस्पर जो क्रम निर्धारित किया गया है, वह सार्थक और समीचीन है । धर्म के प्रथम प्रयोग का तात्पर्य यह है कि धर्म, अर्थ और काम का विशेषण है । धर्म पूर्वक अर्थोपार्जन और धर्म पूर्वक कामसेवन मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति करा सकता है । इसलिए मानवजीवन में सर्वत्र धर्म की ही प्रधानता शास्त्रों में प्रतिपादित की गई है । शास्त्र का यह उद्घोष है कि जहाँ धर्म होता है वहीं विजय की प्राप्ति होती है ।[1]

अष्टादश पुराणों के प्रणेता और महाभारतकार वेदव्यास का कथन है कि मैं अपने दोनों हाथ उठाकर कहता हूँ, किन्तु कोई भी मेरी बात नहीं सुनता । धर्म से अर्थ और काम की प्राप्ति जब संभव है, तो उस धर्म का सब लोग सेवन क्यों नहीं करते ? यदि धर्म की रक्षा की जाती है तो धर्म भी उस व्यक्ति की रक्षा करता है । इस प्रकार मानव जीवन में धर्म का अतिशय महत्व है । इसीलिए भारतीय संस्कृति में ईश्वर के नाना अवतारों का परम प्रयोजन धर्म की संस्थापना और अधर्म का समूलोन्मूलन है । अधर्म की वृद्धि होने पर और धर्म का ह्रास होने पर ईश्वर के अथवा महापुरुषों के प्रत्येक युग में अवतार होते हैं । ईश्वर के अवतार से सज्जनों का परित्राण और दुष्टों का विनाश तथा धर्म की स्थापना होती रही है ।[2]

वेदोक्त धर्म दो प्रकार का है एक प्रवृत्ति रुप और दूसरा निवृत्ति रुप । जो जगत् की स्थिति का कारण तथा प्राणियों की उन्नति और मोक्ष का साक्षात् हेतु है एवं कल्याणकारी मनुष्यों द्वारा जिसका अनुष्ठान किया जाता है, उसका नाम धर्म है । हमारे

---

1. महाभारत आदि0 3.10

2. गीता 4.7-8

भारतीय संस्कृति के उन्नायकों की यह हार्दिक इच्छा रही है, कि गुणी पुरुषों द्वारा ग्रहण किया गया अभ्युदय और निःश्रेयस का कारणभूत धर्म सदैव विस्तार को प्राप्त हो । धर्म प्राणियों में उच्च नैतिकता और आदर्श दया और परोपकारादि उर्ध्वगामी भव्य भावों की सृष्टि करता है । इसलिए वह मानव जीवन में बड़े महत्व का है ।

धर्म का यह मांगलिक रुप हमारे तीर्थों में प्राचीनकाल से देखने को मिलता है । हिन्दु धर्म के समस्त प्रमुख तीर्थ किसी न किसी रुप में धर्म की अभिव्यक्ति करते हुए दिखाई देते हैं । तीर्थ भारतवर्ष के पवित्र स्थानों के पर्याय है । ये पवित्रस्थल ऋषियों, महर्षियों, मुनियों, तपोधनों और चिंतकों तथा विचारकों के साधनास्थल रहे हैं । भारत के ज्ञान का सूर्योदय इन तीर्थों में ही हुआ है । धर्म का पथ इन तीर्थों ने ही आलोकित किया है । मुक्ति का मार्ग तीर्थों की देन है । नैतिकता की सृष्टि तीर्थों के तट पर हुई है । किं बहुना, तीर्थ संस्कृति ने ही सत्य, दया, करूणा, परोपकार, सादा जीवन उच्च विचार, अध्यात्मिकता, त्याग, सेवा आदि के आदर्श मानव मात्र को प्रदान किये हैं । जिससे मनुष्य पशु सुलभ धरातल से उठकर देवत्व को प्राप्त करने में समर्थ हो सका है ।

भारतवर्ष तीर्थों का देश है । विशाल और लम्बी यात्रा करने वाली नदियाँ, हिमाच्छादित पर्वत मालाएं, निर्जन वन-कान्तार, अथाह जलराशि वाले समुद्र सदैव पुण्यप्रद और दिव्यस्थल रहे हैं । हमादे देश के तीर्थ प्रायः वहीं अवस्थित हैं जहाँ प्रकृति में विशिष्ट रमणीयता और सुन्दरता विद्यमान है । तीर्थों की यह प्राकृतिक सुन्दरता अनन्त और अपार है तीर्थयात्री इन सुन्दर और पवित्रस्थलों के दर्शन कर अपनी संकीर्णता का परित्याग कर देता है और उसके मन में तत्क्षण उर्ध्वगामी विचारों का उदय होने लगता है । लघुचिन्त वाले लोगों

के मन में जैसे अपने और पराये का भाव भरा रहता है, किन्तु उच्च विचार सम्पन्न पुरुषों के लिए तो न केवल अपना देश, प्रत्युत सम्पूर्ण वसुधा ही कुटुम्ब की भाँति एकता के सूत्र में अनुस्यूत प्रतीत होती है ।

प्राचीन काल से ही हमारे देश के तीर्थ राष्ट्रीय एकता के प्रतीक रहे हैं । प्राचीनकाल में यद्यपि भारतवर्ष अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था और लोग भिन्न भिन्न सम्प्रदायों और उप-सम्प्रदाओं के अनुयायी थे, किन्तु राष्ट्र के चारों दिशाओं में फैले हुए तीर्थों के दर्शनार्थ जो तीर्थयात्रायें की जाती थी, उन्होंने निश्चित रुप से भारतीय संस्कृति और राष्ट्र की महत्वपूर्ण मौलिक एकता की भावना को संवर्द्धित किया है ।

कुछ लोगों का कथन है कि भाषा वेश और रहन-सहन आदि के भिन्न होने के कारण उत्तर और दक्षिण भारत के ये दो भेद हैं । किन्तु यह बात मिथ्या है । भारत एक ओर अखण्ड है और इस एकता तथा अखण्डता का प्रतिपादन करने वाले हमारे तीर्थ हैं । कौन सा उत्तर-भारतीय हिन्दू है जिसके मन में श्रीरामेश्वरम् कन्याकुमारी, श्रीजगन्नाथ, श्रीरंगनाथ आदि तीर्थों के दर्शनों की लालसा का उदय नहीं होता ? इसी प्रकार कौन सा ऐसा दक्षिण-भारतीय व्यक्ति होगा जिसके मन में काशी, विश्वनाथ, रामजन्मभूमि अयोध्या, कृष्णजन्म भूमि मथुरा वृन्दावन, श्रीरामपादांकित-चित्रकूट कामदगिरि, नगाधिराज देवतात्माहिमालय, बदरीनाथ केदारनाथ और मानसरोवर जैसे परम पवित्र तीर्थों के दर्शन की कामना न उदित होती हो ? वाराणसी एवं रामेश्वर को, अयोध्या, मथुरा, काशी, काञ्ची माया, अवन्तिका, पुरीद्वारावती को गंगा यमुना गोदावरी नर्मदा, काबेरि, सरस्वती, सिन्धु आदि को, चाहे वे उत्तरभारत के हों या चाहे दक्षिण भारत के हों, समान रुप से पवित्र मानते हैं ।

हम जब प्राचीन इतिहास की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि हिन्दू-समाज बहुत सी जातियों में विभक्त था और जाति संकीर्णता में फँसा हुआ था । किन्तु हमारी तीर्थयात्राओं ने सभी को पवित्र नदियों के तट पर और पवित्र स्थलों, तीर्थो के अञ्चल में एक स्थान पर बैठा दिया है । पवित्र तीर्थों से सम्बन्धित परम्पराओं, तीर्थयात्रियों की श्रद्धाभक्ति, तीर्थस्थलों में पवित्र एवं दार्शनिक लोगों के समागम और सर्वोपरि तीर्थों के पवित्र वातावरण में यात्रियों को एक उच्च अध्यात्मिक स्तर पर पहुँचा दिया था, और तीर्थ यात्रियों के मन में एक ऐसी श्रद्धाभक्ति की भावना भर उठती थी, जो तीर्थ यात्रा की समाप्ति के पश्चात् भी दीर्घकाल तक उन्हें अभिभूत किये रहती थी । तीर्थयात्रा करना एक ऐसा पवित्र साधन बन गया था जो साधारण लोगों को स्वार्थमय जीवन कर्मो से दूर रखने में सहायक होता था, और उन्हें महा नैतिक और अध्यात्मिक जीवन मूल्यों के विषय में सोचने के लिए प्रेरित करता रहता था ।[1] उन्तर में भगवान् शंकर के धाम हैं कैलास और काशी । इसी प्रकार ही भगवान् श्रीराम अयोध्या में, और श्रीकृष्ण मथुरा में प्रकट हुए है । महाभारतकार वेदव्यास और रामायणकार महर्षि बाल्मीकि आदि का जन्म देश के उन्तर भाग में ही हुआ है । दक्षिण भारत के निवासी भी इन्हें उतना ही पूजनीय, आराध्य और ज्ञानदाता मानते हैं जितना उन्तर भारतीय, इसी प्रकार शंकराचार्य रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, और वल्लभाचार्य इत्यादि आचार्यगण दक्षिण भारत की देन है, उन्तर भारत के निवासी उसी श्रद्धा और भक्ति के साथ उन्हें अपना मार्गदर्शक मानते हैं । यह ज्ञातव्य है कि ये सभी ऋषि-मुनि, चिंतक, विचारक दार्शनिक और आचार्यगण तीर्थों के निवासी रहे है और तीर्थ संस्कृति के जनक रहे है । आज भी भारत का कोई भी आस्तिक निवासी जब स्नान करता है तो चारों दिशाओं में प्रवाहित होने वाली गंगा यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और काबेरी आदि नदी तीर्थों का स्मरण करता

---

1. पी.वी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास पृ0।300

है जिससे राष्ट्रीय भावना की एकता सुदृढ़ होती है ।

हमारे शास्त्रों और चिंतकों की यह मान्यता रही है कि तीर्थस्थलों में देवों का निवास रहता है इसीलिए कालिदास ने हिमालय को 'देवतात्मा' के रुप में चित्रित किया है । तीर्थों में समष्टि रुप विराट् का दर्शन होता है । तीर्थयात्रा से धर्म की सामान्य बातों का ज्ञान होता है । जिससे तीर्थयात्री की मानसिक संकीर्णता दूर होती है और उसमें क्षेत्रीयता के स्थान पर राष्ट्रीयता के बीज अंकुरित होने लगते हैं । इसलिए राष्ट्रीय एकता में तीर्थों का योगदान अप्रतिम है ।

आज परिस्थितियाँ परिवर्तित हो गई हैं । हमारा देश धर्मनिर्पेक्ष हो गया है, आर्थिक उन्नति और अवनति ने लोगों की मानसिकता बदल दी है । भौतिकवादी विचारधारा अपने शिखर पर है । इसलिए आधुनिक लोगों को सम्प्रति पूर्व पुरुषों के धार्मिक विश्वासों के कुछ स्वरुपों पर आस्था नहीं रह गयी है और तीर्थ आधुनिक लोगों के लिए किसी लाभ के नहीं प्रतीत होते, किन्तु फिर भी तीर्थों से सम्बन्ध रखने वाली प्राचीन रुचि अथवा प्रवृत्ति को यों ही अनर्गल नहीं समझना चाहिए । तीर्थ हमारी राष्ट्रीय एकता के हेतु जिस प्रकार पूर्व काल में रहे हैं उसी प्रकार आज भी तीर्थ हमारी राष्ट्रीय एकता के सर्जक हैं ।

आज तीर्थयात्रायें स्वर्ग-प्राप्ति के लिए नहीं की जा सकतीं । अपने विशाल राष्ट्र के अञ्चल में प्रतिष्ठित ये तीर्थ मनुष्यों की मानसिक संकीर्णता, क्षुद्रता, निर्ममता, कठोरता आदि दुर्गणों को दूर कर उनमें राष्ट्रीय एकता के भव्य-भाव करने में सहायक हैं । यदि पवित्र पर्वतों पवित्र नदियों और पवित्र तीर्थों की तीर्थयात्रा सर्वथा समाप्त हो जाती है तो सचमुच भारत की नैतिक एवं अध्यात्मिक महन्ता विपन्ति ग्रस्त हो जायेगी । आज भी हमारे ये तीर्थ, अपनी

मातृभूमि के कोटि-कोटि नागरिकों के चरित्रों को उठायेंगे और उनमें उदान्त भावों की सृष्टि कर राष्ट्रीय एकता की संसृष्टि करेंगे ।

आज हमारा सबसे महत्वपूर्ण और मानवीय कर्तव्य है कि हम अपने देश की नदियों पर्वतों और तीर्थों के उस सुन्दर और स्वस्थ पर्यावरण की रक्षा करें जिसका सुरम्य वर्णन हमारे प्राचीन साहित्य में मिलता है । हमारे तीर्थों ने सदा से मानव और प्रकृति के पारस्परिक सहयोग की संस्कृति प्रदान की है । इस संस्कृति का रक्षा करना हमारा राष्ट्रीय कर्म हो जाता है ।

4

भारतीय तीर्थों में चित्रकूट का वैशिष्ट्य

भारतीय तीर्थों में चित्रकूट का अतिशय महत्व है । वैदिककाल के पश्चात् महाकाव्यकाल से लेकर अद्यावधि प्रायः रामकथा से संबंधित संस्कृतके अनेक ग्रन्थों में चित्रकूट की रमणीयता, पवित्रता और भव्यता के उल्लेख प्राप्त होते हैं ।

चित्रकूट की भौगोलिक स्थिति असंदिग्ध है। वाल्मीकि रामायण 2.54.28 के अनुसार चित्रकूट पर्वत की दूरी प्रयाग से पश्चिम-दक्षिण की ओर 10 कोस मानी गई हैं :-

> दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन् निवत्स्यसि ।
>
> महर्षि-सेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः ।।[1]

उ0प्र0 के बाँदा जनपद एवं मध्यप्रदेश के सतना जनपद में यह तीर्थ अवस्थित है । सम्प्रति झाँसी मानिकपुर रेलमार्ग में चित्रकूट धाम स्टेशन से दक्षिण पश्चिम पाँच किलोमीटर की दूरी पर चित्रकूट तीर्थ पहुँचा जा सकता है । चित्रकूट के समीपवर्ती प्रवाहित होने वाली सरिता का नाम मन्दाकिनी है । यह भी उतनी ही प्रसिद्ध है कि जितना चित्रकूट । चित्रकूट का विस्तार बीस-पच्चीस किलोमीटर की परिधि में है, और इसमें अनेक प्राचीन तीर्थाश्रम हैं जो अपनी अध्यात्मिकता तथा प्राकृतिक सुषमा के लिए विख्यात हैं । इनमें चित्रकूट, कामद्गिरि, अनुसूया आश्रम, पंचगंगा प्रयाग, मड़फा, गुप्तगोदावरी, सरभंगआश्रम, विराधकुण्ड, अमरावती, भरतकूप, हनुमान धारा, कोटितीर्थ, बाँकेसिद्ध, वाल्मीकि आश्रम, राघव प्रयाग घाट,

---

1. वा0रा0 2.54.28

रामघाट, ब्रह्मपुरी, जानकीकुण्ड, स्फटिक शिला, और मत्तगजेन्द्र आदि विशेषरुप से उल्लेखनीय है । यह सम्पूर्ण क्षेत्र चित्रकूट क्षेत्र के नाम से विख्यात है ।

रामकथा के नायक श्रीराम अपने वनवास काल में यहाँ बारह वर्षों तक सीता और लक्ष्मण के साथ रहे थे, इसलिए इनके सम्बन्ध से चित्रकूट का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व और अधिक बढ़ गया है । वैसे भी चित्रकूट की सुषमा अपूर्व है । रामकथा के आदि गायक आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने सुन्दर शब्दों में इस क्षेत्र की रमणीयता पर प्रकाश डाला है । चित्रकूट पर्वत महर्षियों से सेवित है । पुण्यवान् और शुभदर्शनों वाला है, यहाँ का वन कान्तार मृग, वानर, ऋक्ष, गो, लांगूल आदि से निषेवित हैं । कोई भी व्यक्ति जब चित्रकूट पर्वत के शिखरों के दर्शन करता है तो वह कल्याण परम्पराओं का ही वरण करता है और पापाचरण से दूर हो जाता है । यह चित्रकूट पर्वत गन्धमादन पर्वत के समान विख्यात है :-

महर्षि सेवितः पुण्यः पर्वतः शुभ-दर्शनः ।।
गोलांगुलानुचरितो वानरर्क्ष - निषेवितः ।
चित्रकूट इतिख्यातो गन्धमादन संनिभः ।।[1]

यह वह पवित्र क्षेत्र है, जहाँ पर अनेक ऋषिवर्यों ने सैकड़ों वर्षो तक तपस्या की है । यह भी कहा जाता है कि धर्मराज युधिष्ठिर ने भी यहाँ तप किया था और उन्हें अपने तप का फल प्राप्त हुआ था तथा राजानल ने भी इसी क्षेत्र में तपस्या करके अपने समस्त अशुभ

---

1. वा0रा0 2.54/28-29

कर्मों को जलाकर विनष्ट राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया था ।[1]

चित्रकूटे शुभे क्षेत्रे श्रीरामपदभूषिते ।
तपश्चचार विधिवद् धर्मराजो युधिष्ठिरः ।।

वृहद् रामायण में चित्रकूट माहात्म्य :-

इस शोध अध्ययन के दौरान हमें चित्रकूट क्षेत्र से बृहद्-रामायण के एक भाग के रुप में चित्रकूट माहात्म्य नामक एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई हैं ।[2] जिसमें चित्रकूट के धार्मिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणिक महत्व का वर्णन प्रचुरता से प्राप्त होता है । फलतः चित्रकूट सर्वोन्तम तीर्थ हैं, और चित्रकूट श्रेष्ठ गिरिवर है, जो श्रीराम के चरणों से अंकित है, जिसमें सर्वदा श्री जानकीनाथ रमण करते हैं । इस पाण्डुलिपि में एक अद्भुत विशेषता यह प्राप्त होती है कि चित्रकूट गिरि के लिए यहाँ 'रामगिरि' शब्द का प्रयोग हुआ है । कालिदास ने अपने मेघदूत में जिस 'रामगिरि' का उल्लेख किया है, और उस पर विद्वान् टीकाकारों ने अपने मत-मतान्तर उपस्थित किये हैं, इस संबंध में भी रामगिरि शब्द के प्रयोग की निरन्तरता से चित्रकूट गिरि के ही रामगिरि होने की बात सिद्ध होती है :-

चित्रकूटोगिरिश्रेष्ठः श्रीरामपदभूषितः । यस्मिन् श्रीजानकीनाथो रमते सर्वदैवहि ।।[2]

वृहद् रामायण के अनुसार यह चित्रकूट रामगिरि तीन योजन विस्तीर्ण और चारों दिशाओं में सर्वोन्तम तीर्थ है, और इस चित्रकूट क्षेत्र में विविध तीर्थ स्थित हैं । वृहद् रामायण

---

1. कल्याण तीर्थांक पृ0 121

2. वृहद् रामायण, चित्रकूट-माहात्म्य, 1/8-9

के इस कथन से यह विदित हो जाता है कि प्राचीन काल में चित्रकूट की ख्याति दिग्दिगन्तर-व्यापी थी । चित्रकूट का रहस्य अत्यन्त उदार है । यह ब्रह्मपुरी है । इस पुरी में तीस धनुष के समान लम्बी-चौड़ी यज्ञवेदी स्थित है । प्राचीनकाल में इस परमपावनी यज्ञवेदी का निर्माण विधाता ने किया था । इस यज्ञवेदी में मुनि, बालखिल्य तथा अन्य नरों ने यज्ञादि धर्म कार्यों को संपादित करके परमसिद्धि को प्राप्त हुए थे । यह यज्ञवेदी मन्दाकिनी तट पर स्थित है ।

चित्रकूट के पास स्थित मन्दाकिनी नदी सर्वथा रामरूपा है इसमें सन्देह नहीं है, इसमें स्नान करने वाले लोग परम सिद्धि को प्राप्त करते हैं । जब तक पर्वत में गिरि-मालायें स्थित हैं और जब तक इस जगतीतल में सागर स्थित रहेंगे, तब तक इस क्षेत्र की कीर्ति चिरस्थायी बनी रहेगी । मन्दाकिनी के प्रभाव से लोगों का दुरितक्षय होता है । यह मन्दाकिनी नदी मन्दराचल के मूल से प्रादुर्भूत हुई है यह संसार में शीघ्र पाप हरने वाली देवगंगा के नाम से विख्यात है ।[1]

चित्रकूट क्षेत्र शाप से मुक्ति के लिए भी परमोत्तम तीर्थ माना गया है । ब्रह्मा का कथन है कि श्रीराम पद से अंकित चित्रकूट गिरि शाप विमोचनार्थ सर्वश्रेष्ठ है जहाँ पर पाप-विमोचनी मन्दाकिनी नदी प्रवाहित हो रही है । उसमें स्नान करके लोग शापमुक्त हो जाते हैं । चित्रकूट शुभ क्षेत्र है और वहाँ मन्दाकिनी देवनदी है । उसमें स्नान कर रामगिरि की प्रदक्षिणा श्रीरामदर्शन, शापमोचन और संकटमोचन है ।[2]

---

1. देखिए परिशिष्ट, वृहद् रामायण, चित्रकूट माहात्म्य, 1.13-25
2. देखिए परिशिष्ट- वृहद् रामायण, चित्रकूट माहात्म्य, 1.34-38

महर्षि अत्रि के अनुसार चित्रकूट के माहात्म्य श्रवण से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है । चित्रकूट गिरि जहाँ एक ओर श्रीराम पद से विभूषित है वहीं दूसरी ओर वह स्वर्ण और राजतादि से खचित है और इसमें सभी तीर्थों का समाहार है, यह प्रयाग के पश्चिम भाग में सप्तयोजन परमित विस्तीर्ण है । यह श्रेष्ठ पर्वत मणिकाञ्चन से चित्रित है । इस चित्रकूट की रमणीयता और कामनीयता अवर्णनीय है । यह पुर-नारियों के भव्य-भावों से भरे हुए नेत्रों के द्वारा देखा जाता है, ग्राम की ललनायें अपने चंचल हाथों से इसकी सेवा करती हैं और इसके चारों ओर पूजार्थ, लाजा (लावा) को विकीर्ण करती हैं । इस प्रकार चित्रकूट पर्वत और यहाँ प्रवाहित होने वाली पापनाशिनी मन्दाकिनी का प्रभाव अमित है । मन्दाकिनी में गंगा, कालिन्दी, सरयू, सरस्वती, शतुद्रि चन्द्रभागा इत्यादि समस्त पवित्र नदियाँ समाहित हैं ।

बृहद् रामायण में चित्रकूट को जो शाप विमोचन करने वाला कहा गया है, दुःखियों के दुःख और सुख को हरने वाला बतलाया गया है तो यह बात यथार्थ प्रतीत होती है । कविवर कालिदास इसीलिए अपनी प्रसिद्ध रचना 'मेघदूतम्' के शापग्रस्त नायक यक्ष को रामगिरि (रामगिरिचित्रकूट) भेजते हैं । वह यक्ष रामगिरि पर्वत में स्थत सघन-शीतल-छाया वाले वृक्षों वाले आश्रमों में निवासार्थ आता है, और वहाँ रहते हुए कुबेर-शापमुक्ति की आशा और प्रार्थना करता है ।[1]

महर्षि अगस्त्य के कथनानुसार चित्रकूट मोक्ष प्रदान करने वाला महातीर्थ है । यह तीर्थों का तीर्थ है और मंगलों का मंगल है, यह पवित्र पीठों का श्रेष्ठ पीठ है, और पवित्र पर्वतों मे श्रेष्ठ पर्वत है । धर्माभिलाषा की बुद्धि से आने वाले तीर्थयात्रियों के लिए यह धर्मराशि है । यह याचकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला और मुमुक्षुओं को मोक्ष प्रदान

---

1. मेघदूत पूर्व मेघ- ।

करने वाला है। यह सिद्धगणों क्षेत्र और तपोवन है जहाँ पर ऋषिगण निर्बाध रूप से अपनी तपश्चर्या संपादित करते हैं । चित्रकूट गिरि के दर्शन से पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है ।

वृहद्रामायण के अनुसार वह चित्रकूट तीर्थ और सरिद्वरा मन्दाकिनी, कावेरि, नर्मदा, प्रयाग, नैमिषारण्य, धर्मारण्य, गयातीर्थ, वाराणसी, श्रीगिरि, केदार, पुष्कर, मानसरोवर, चक्रतीर्थ तथा अन्य सरोवर पवित्र सरिताओं और पुण्य क्षेत्रों से भी श्रेष्ठ है । यहाँ पर प्रादुर्भूत मन्दाकिनी साक्षात् महानदी गंगा है । गोदावरी भी यहाँ अन्तर्लीन होकर प्रवाहित हो रही है, यह चित्रकूट श्री 'रामगिरि' के नाम से भी विख्यात हैं ।[1]

वृहद् रामायण के वर्णनानुसार श्रीराम इस चित्रकूट पर्वत में जानकी के साथ बिहार करते हैं । इसमें विश्वकर्मा के द्वारा विनिर्मित मणि-मणिक्यों से विभूषित एक मन्दिर है इसमें इन्द्रनील, महानील और पद्मरागादि मणियाँ जटित है, और चार दरवाजे हैं । इसके शिखर में मणि-मणिक्यों से सुशोभित एक सुवर्ण कुम्भ है, और मोतियों की मालायें लटक रही है । यहाँ निरन्तर हंस, पारावत, मयूर, कोकिल, सारिकायें और शुकवृन्द मधुर ध्वनि करते रहते हैं । इस मन्दिर में सहस्त्र-स्तम्भ है जो वज्रों से निर्मित हैं । स्तम्भों के मध्य में दिव्य रत्नों से विरचित एक यज्ञवेदी है, जिसमें ऋषि मुनि यज्ञादि धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन करते हैं, इस वेदी के समीप में वृक्षाधिपति कल्पवृक्ष है जो देवताओं सेसुशोभित है । यहाँ पर अनेक पारिजात वृक्ष है जिनकी निरन्तर पुष्पवर्षा होती रहती है । इस मन्दिर में सीता के साथ प्रभु श्रीराम विराजमान है । उन्होंने पीताम्बर वस्त्र धारण कर रखे हैं और कौस्तुभ मणि उनके वक्षस्थल की शोभा बढ़ा रही है, वे वनमाला और मुक्ताहार से भी सुशोभित हैं । वे

---

1. देखिए परिशिष्ट वृ0रा0 चित्रकूट मा0 1.10-12 तथा अध्याय 2

कोटि-कोटि कन्दर्पों का दर्प दलन करने में समर्थ हैं । लक्ष्मण जी चामर से उनकी सेवा कर रहे हैं । वृहद् रामायणकार का कथन है कि इस सचराचर जगत् में इतस्ततः प्रकीर्ण जो शोभा है, वह चित्रकूट में एकत्रीभूत हो गई है । यह चित्रकूट क्षेत्र भक्ति और ज्ञान को बढ़ाने वाला और भौतिक संतापों को विनष्ट करने वाला है ।[1]

चित्रकूट में निवास करते हुए श्रीराम की सेवा सीता के साथ उनकी अनेक सखियाँ भी कर रही है । वे सभी विमल कान्ति वाली अनेक शुभ लक्षणों से मण्डित विभूति और ऋद्धि को देने वाली ज्ञान भक्ति से प्रेम करने वाली और श्रीराम के चरणों में प्रेम करने वाली है । ये सभी सखियाँ राम के समान रमणीय, राम से अनुराग करने वाली और रामनाम परायणा जानकी के चरणों की सेवा करने वाली इस चित्रकूट क्षेत्र में वे राम के मनोविनोदार्थ वीणा मृदंग, ताल लय से युक्त, नृत्य आदि संगीत का समारम्भ कर रही हैं । यद्यपि यह विचित्र बात है कि रामकथा के आदिप्रणेता आदिकवि बाल्मीकि ने श्रीराम के ललित-कला प्रेम का वर्णन नहीं किया है और किसी वर्णन से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि श्रीराम नृत्यगान और वाद्य प्रेमी थे, किन्तु वृहद् रामायण में राम का ललितकलाप्रेम प्रकट हुआ है ।

यह चित्रकूट क्षेत्र प्रसिद्ध तपोवन है । यहाँ दूर-दूर से आकर ऋषिगण तपस्या करते हैं कहा जाता है कि यहाँ तपस्या करने के लिए वशिष्ठ, वामदेव, देवल, गौतम, बाल्मीकि, अंगिरा, गर्ग, गालव, च्यवन, भृगु पुलस्त्य, विश्वामित्र, वामन, पराशर, वेदव्यास, बोधायन, रेभ्य, कौंडिन्य, दुर्वासा, मुनिश्रेष्ठ सुचन्द्र, शुक, शारदा, हारीत, भरद्वाज, माण्डव्य,

---

1. देखिये परिशिष्ट- वृ0 रा0 चित्रकूट माहात्म्य, चतुर्थ अध्याय

जाबालि, जाजलि, शांडिल्य, सनत कुमार, मुद्गल, मातंग, भागुरि, भर्गु, गार्ग्यायण, गोभिल, कपिल, पंचशिख, असुरि, इत्यादि अनेक ऋषिगण और आचार्यगण यहाँ आकर श्रीराम का ध्यान करते हैं ।[1]

वृहद्रामायणकार का कथन है कि चित्रकूट क्षेत्र में हमारे देश की पवित्र नदियाँ गंगा, यमुना, नर्मदा, सरस्वती, काबेरि, भीमरथी, निर्विन्ध्या, सरयू, कौशकी, ताम्रपर्णी, गौतमी, इत्यादि गोपनीय रुप से यहाँ स्थित हैं और श्रीराम का ध्यान कर रही हैं ।[2]

चित्रकूट का पर्यावरण, वन कान्तार और परिवेश नानातरूलताओं से परम रमणीय प्रतीत होता है । यहाँ अनेक प्रकार के वृक्ष इस क्षेत्र की शोभा का वर्धन कर रहे हैं । यहाँ पर प्रियाल, चम्पक, अशोक, आम्र, पारिजात, हरे भरे तमाल, शिन्शपा, साल, कुदाल, कदम्ब, मधूक, मन्दार इत्यादि तरुवर और लतायें चित्रकूट पर्वत की प्राकृतिक शोभा को बढ़ा रहे हैं । इस पर्वत में श्रीजानकीनाथ सखीवृन्दों से युक्त होकर सदैव बिहार करते हैं ।[3] यह चित्रकूट पर्वत नानाधातुओं से विरचित होने के कारण विचित्र प्रतीत होता हैं ।[4] आदिकवि वाल्मीकि ने भी चित्रकूट पर्वत में विविधरंगों वाली धातुओं की विद्यमानता के प्रति संकेत किया है । चित्रकूट के कुछ शिखर रजत के समान श्वेत वर्ण वाले कुछ शोणित के

---

1. देखिये परिशिष्ट- वृ0 रा0 चित्रकूट माहात्म्य- पंचम अध्याय
2. तदेव 6/8
3. तदैव 5/9
4. वा0रा0 अयोध्या काण्ड- 94.5-6

समान रक्त वर्ण वाले, कुछ पीले और मंजिष्ठ वर्ण वाले, कुछ मणि के समान निर्मल प्रभा वाले, कुछ रामगिरि चित्रकूट पुष्पों की शोभा वाले अनेक रंग–बिरंगी धातुओं से मण्डित हैं :–

केचित् रजतसंकाशाः केचित् क्षतज सन्निभाः ।
पीतमञ्जिष्ठवर्णाश्च केचिन्मणिवर प्रभाः ।।
पुष्पार्क केतकाभाश्च केचिज्ज्योति रसप्रभाः ।
विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः ।।[1]

चित्रकूट पर्वत का जैसे दूसरा नाम रामगिरि है उसी प्रकार इसका तीसरा नाम कामदगिरि भी है । यह प्राणियों के लिए पुरूषार्थ–चतुष्टय का प्रदाता है, लोगों की विपन्तियों का नाश करता है और कामनाओं की पूर्ति करता है इसलिए इसे कामदगिरि भी कहते हैं । वृहद् रामायणकार का कथन है कि राज्यविहीन पाण्डव यहाँ आये थे, और यहाँ पर युधिष्ठिर और अर्जुन आदि ने तपश्चर्या की थी । उनके साथ गुरुवर्य धौम्य थे और साथ में द्रुपद कन्या भी थी, इन सभी के साथ धर्मराज युधिष्ठिर मन्दाकिनी में स्नान करते थे और कामदगिरि की परिक्रमा करते थे । कुछ दिनों के पश्चात् उस महात्मा धर्मराज युधिष्ठिर की विपन्तियों का विनाश हो जाता है और उनके सभी शत्रुगण विनष्ट हो जाते हैं और उन्हें विजय की प्राप्ति होती है । यह चित्रकूट क्षेत्र का ही प्रभाव है कि महाभारत के नायकों की विपन्ति दूर हो जाती है :–

---

1. वा0रा0 अयोध्याकाण्ड, 94.5,6

वृहद रामायणकार का कथन है कि यह चित्रकूट का ही प्रभाव है कि जनार्दन वासुदेव ने पाण्डवों की तत्परता के साथ सहायता की थी । चित्रकूट में की गई उनकी तपस्या से संतुष्ट होकर ही उन्होंने अर्जुन का सारथी होना स्वीकार किया था और उनके पार्षद तथा दौत्य आदि विविध कार्यो को संपादित किया था । चित्रकूट गिरि इस प्रकार के प्रभाव वाला है जिसके दर्शन मात्र से हरि का साक्षात्कार होता है । आदिकवि वाल्मीकि ने भी चित्रकूट के वर्णन में कहा है कि व्यक्ति जब-जब चित्रकूट के पवित्र शिखरों का अवलोकन करता है तब तब उसका कल्याण ही होता है । और फिर उसका मन पापाचरण में प्रवृत नहीं होता ।

यावता चित्रकूटस्य नरः श्रृंगाण्यवेक्षते ।
कल्याणनि समाधन्ते न पापे कुरूते मनः ।।[1]

इस प्रकार वृहद्रामायण के अनुसार चित्रकूट का न केवल धार्मिक महत्व है अपितु चित्रकूट की प्रकृति भी अत्यन्त सजीव है जैसे- शरीर के कुछ अंग पवित्रतम माने जाते हैं उसी प्रकार पृथ्वी के भी कुछ स्थान पवित्रतम और पुण्यतम होते हैं । भूमि अद्भुत प्रभाव से जल का अधिक पवित्रता से महर्षियों के तेज और प्रभाव से यह भौम तीर्थ चित्रकूट सर्वथा वन्दनीय स्पृहनीय और पूजनीय है । वैसे तो पृथ्वी में अनेक तीर्थ हैं एक से एक दिव्य हैं, दर्शनीय और महनीय हैं किन्तु रघुपति राम के सीता के साथ यहाँ द्वादशवर्ष रहने के कारण चित्रकूट गिरि सचमुच न केवल "बुन्देलखण्ड" का प्रत्युत सम्पूर्ण भारतवर्ष का "देवतात्मा" बन गया है । यह मध्यदेश का अलंकारभूत है । यह भारतीय

---

1. वा0रा0 अयोध्या काण्ड 54/30

आस्तिक जनता का विमल दर्पण है, जिसमें प्रत्येक आस्तिक भारतीय अपनी आत्मा के ही बिम्ब का प्रतिबिम्ब देखता है ।[1] इस प्रकार चित्रकूट तीर्थ श्रेष्ठ तीर्थों में भी श्रेष्ठ तीर्थ है और इसकी ख्याति तीनों लोकों में विश्रुत है ।[2]

महाकाव्यकाल में चित्रकूट क्षेत्र अपने परम उत्कर्ष को प्राप्त करता है । चित्रकूट की ख्याति उस समय एक शान्त तपोवन के रुप में दूर-दूर तक फैली हुई थी तपस्या करने वाले ऋषियों, मुनियों और तपोवनों के लिए यह पवित्रस्थली परम रम्य थी । वनवास काल में श्रीराम जब अपने निवास के लिए महर्षि भरद्वाज से परामर्श करते हैं तो भरद्वाज उन्हें बिना किसी संकोच के चित्रकूट पर्वत में निवास हेतु परामर्श देते है । एक तो चित्रकूट पर्वत महर्षियों से सेवित, पुण्य प्रदाता और शुभदर्शन है, और दूसरे वहाँ वन्य जीवजन्तु के परिभ्रमण से वह सजीव जैसा दिखाई देता है । ऋषियों, महर्षियों और तपोधनों की तपस्या के कारण और वहाँ की अपूर्व प्राकृतिक छटा के कारण वह इतना शान्त स्वरुप वाला है जैसे यह "साक्षात् गन्धमादन पर्वत ही हो, जब तक इस "देवतात्मा" चित्रकूट के शिखरों के दर्शन व्यक्ति को होते रहेंगे, तब तक उसका कल्याण ही कल्याण है सैकड़ों शरद ऋतुओं तक ऋर्षिगण वहाँ विहार करते रहे हैं, और वहीं से वे स्वर्गारोहण कर गये हैं । भरद्वाज का श्रीराम से कथन है कि यह गिरिराज चित्रकूट आपके निवासार्थ अत्यन्त शान्त एकान्त और सुख प्रदान करने वाला है ।

भरद्वाज के कथनानुसार चित्रकूट की शोभा अपूर्व है, वह मधुर कन्दमूलफलों से युक्त है, वहाँ पर अनेक प्रकार के नाग, किन्नर और उरग, मयूर तथा गजराज आदि है ।

---

1. वृ0रा0 चित्रकूट माहात्म्य,
2. तदैव

जिससे उसकी शोभा और अधिक बढ़ी हुई है । उस विख्यात चित्रकूट में आप जाइये, वह पुण्य प्रदाता, रमणीय और अनेक कन्दमूलफलों से युक्त है । उस पर्वत के पास अनेक कुञ्जरयूथ और मृगयूथ भ्रमण करते हैं, ऐसे वन-कान्तार आपको देखने को मिलेंगे । चित्रकूट की गुफाओं, कन्दराओं, प्रवाहित होने वाले निर्झरों, नदियों के उद्‌गम स्थानों को देखकर सीता के साथ भ्रमण करते हुए आपका मन प्रसन्न होगा । वहाँ कोयल की मधुर ध्वनियाँ आपका मनोविनोद करेंगी । चित्रकूट का वनाञ्चल मतवाले मृगों और अनेक कुञ्जरों से सुशोभित होने के कारण तथा पवित्र पर्यावरण के कारण आपके निवास योग्य है ।

महर्षि सेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः ।
गोलांगुलानुचरितो वानरर्क्षनिषेवितः ।
चित्रकूट इति ख्यातो गन्धमादनसन्निभः ।।
यावता चित्रकूटस्य नरः श्रृंगाण्यवेक्षते ।
कल्यामि समाधत्ते न पापे कुरुते मनः ।।
ऋषयस्तत्र बहवो विहृत्य शरदां शतम् ।
गम्यतां भवता शैलश्चित्रकूटः स विश्रुतः ।
पुण्यश्च रमणीयश्च बहुमूलफलायुतः ।।[1]

श्रीराम से मिलने जाते हुए भरत को चित्रकूट दूर से ही दिखाई पड़ जाता है । चित्रकूट उन्हें नील मेघ के समान दिखाई देता है । सम्प्रति, भरत को चित्रकूट गिरि के शिखर परम-रमणीय प्रतीत होते हैं । पर्वत के समान उनकी सेना के हाथी चित्रकूट के

---

1. वा0रा0 अयोध्या काण्ड, 54.28-31, 40, 41

शिखरों का अवमर्दन कर रहे हैं । चित्रकूट पर्वत के शिखरों में पुष्प–वर्षा को देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे जलधर मेघ जलवर्षा कर रहे हों । चित्रकूट पर्वत में किन्नर भ्रमण कर रहे हैं और यह सुन्दर अश्वों से भी समाकीर्ण हैं । शीघ्रगामी मृगों का झुण्ड दौड़ रहा है । ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे अम्बर में वायु के द्वारा उड़ाया गया मेघमण्डल दौड़ता हो । दाक्षिणात्य लोगों की तरह मेघ के समान नीलवर्ण वाले ये वृक्ष सुगन्धित फूलों की वर्षा कर रहे हैं । भरत का कथन है कि हे शत्रुघ्न ! यह चित्रकूट वनाञ्चल मुझे अत्यन्त मनोज्ञ प्रतीत होता है । यह तपस्वियों का निवास स्थल है, निश्चित रूप से यह स्वर्गपथ को दिखाने वाला है । इस चित्रकूट वनाञ्चल में चितकबरे मृग, मृगवधुओं के साथ भ्रमण कर रहे हैं । रंग–बिरंगे फूलों के समान चित्र–विचित्र प्रतीत होने वाले ये मृग अत्यन्त मनोज्ञ प्रतीत हो रहे हैं ।[1]

गिरेः सानूनि रम्याणि चित्रकूटस्य सम्प्रति ।
वारणैरवमृद्यन्ते मामकैः पवतोपमैः ।।
मुञ्चन्ति कुसुमान्येते नगाः पर्वत सानुषु ।
नीला इवात˘पापाये तोयं तोय धराधनाः ।।
किन्नराचरितं देशं पश्य शत्रुघ्न पर्वते ।
हयैः समन्तादाकीर्णं मकरैरिवसागरम् ।।
अतिमात्रमयंदेशों मनोज्ञः प्रतिभाति मे ।
तापसानां निवासोऽयं व्यक्तं स्वर्गपथोऽनघ ।।
मृगामृगीभिः सहिता बहवः पृषता वने ।
मनोज्ञरुपा लक्ष्यन्ते कुसुमैरिव चित्रिताः ।।[1]

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड– 93.8–11, 18, 19

जगन्माता जानकी और श्रीराम भारतीय संस्कृति के सुमेरु हैं । वे जहाँ जहाँ गये हैं अथवा निवास किया है, वे सभी स्थल दिव्यता और भव्यता सम्पन्न ही नहीं बन गये हैं प्रत्युत वे तीर्थ शिरोमणि बने हुए है । वनवासकाल में श्रीराम का चित्रकूट से सम्बन्ध दीर्घकालिक है । श्रीराम सीता और लक्ष्मण जी के साथ चित्रकूट वनाञ्चल में अपने वनवास काल में निवास कर लगभग बारह वर्ष का समय व्यतीत किया है । भारतीय संस्कृति के उन्नायक श्रीराम का चित्रकूट से यह लम्बा संबंध, उसकी श्रेष्ठता की अभिव्यक्ति कर रहा है । ऐसा कोई भारतवर्ष में तीर्थ दिखाई नहीं देता, जिसमें इतनी दीर्घकालावधि तक श्रीराम सुखपूर्वक रहे हों । विपन्तिकाल में, चित्रकूट में श्रीराम के इस निवास ने ऐसी परम्परा डाल दी है, जिससे यह चित्रकूट पर्वत न केवल राम की अपितु समस्त जनता–जनार्दन की विपन्तियों को हरने वाला हो गया है । संस्कृत साहित्य में चित्रकूट पर्वत की ख्याति विपन्ति दूर करने वाले स्थल के रूप में निरन्तर बढ़ते रहने के उल्लेख प्राप्त होते हैं । धनपति कुबेर के शाप से ग्रस्त कालिदास प्रणीत मेघदूतम् खण्डकाव्य का यक्ष रामगिरि (चित्रकूट) ही आता है, और कुछ दिन वहाँ रहकर उसकी वियोग–जनित व्यथा और विपन्ति दूर हो जाती है ।[1]

यक्षश्चक्रे जनकतनया स्नानपुण्योदकेषु ।
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।।

---

1. पूर्वमेघ 1.

अबला से विप्रयुक्त, कनकवलयों से रहित कलाई वाला वह यक्ष कुछ महीने चित्रकूट आश्रम में यथा-तथा व्यतीत करता है किन्तु आषाढ़ के प्रथम दिवस में वप्रक्रीड़ा करते हुए गज के समान प्रेक्षणीय मेघ के दर्शन कर उसका मन व्यथित हो जाता है :-

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्त प्रकोष्ठः ।
आषाढ़स्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्ट सानुं
वप्रक्रीड़ापरिणत गजप्रेक्षणीयं ददर्श ।।[1]

चित्रकूट उसके दुःख को दुर करता है, इसी प्रकार अनेक ऋषिगण तपोधन, मुनि महर्षि, पृथ्वीपति और नारी-नर सुदूर प्राचीनकाल से विपन्तिग्रस्त होने पर गिरिवर चित्रकूट की शरण में आते रहे हैं । इसलिए इसमें कोई आश्चर्य प्रतीत नहीं होता कि श्रीराम दीर्घकाल तक इस क्षेत्र में रहे हों ।

चित्रकूट निश्चित रुप से अन्य भारतीय तीर्थों से विशिष्ट प्रतीत होता है, जिसने राम को अपने अञ्चल में निवासार्थ आकर्षित किया है । यह उसकी प्राकृतिक शोभा ही है, उसका नितान्त, शान्त और पवित्र वातावरण ही हे, उसके हरे-भरे लता तरु और पादप आदि ही हैं, उसके सरल और शान्त वनचर जीव-जन्तु ही हैं, उसके झर-झर करते आषस्त स्त्रोत वाले निर्झर हैं, मधु कलरव और कल-निनाद करते हुए खगकुल हैं, पुष्पों और फलों से युक्त छायाद्रुम ही हैं और पुष्पों की सुगन्धि लेकर चित्रकूट गिरि-गह्वरों से प्रवाहित होने वाले ये वनानिल ही है जिन्होंने अपनी ओर श्रीराम को इस क्षेत्र में दीर्घकाल तक सुख

---

1. पूर्वमेघ- 1

पूर्वक रहने के लिए उत्साहित और प्रेरित किया है ।

श्रीराम चित्रकूट की शोभा देखकर गद्-गद् हैं । चित्रकूट में रहकर वे जन्म भूमि अयोध्या छोड़ने का दुःख भूल जाते हैं । श्रीराम की दृष्टि में चित्रकूट की शोभा अद्वितीय हैं । ऐसे कम ही भारत के भूभाग होंगे, जिसकी प्रशंसा श्रीराम ने इतनी प्रखर-मुखरता के साथ की हो । वे चित्रकूट की शोभा से अकेले ही आनन्दित नहीं होना चाहते, प्रत्युत अपनी प्रियतमा सीता को भी इस गिरिराज की अपूर्व प्राकृतिक शोभा के आनन्द का भागीदार बनाते हैं । पर्वतों से प्रेम करने वाले श्रीराम चित्रकूट की शोभा देखकर अपना तथा वैदेही का मनोरञ्जन करते हैं ।[1]

दीर्घकालोषितस्तस्मिन् गिरौ गिरिवरप्रियः ।
वैदेह्याः प्रियमाकांक्षन् स्वं च चित्तं विलोभयन्।

चित्रकूट की अनुपम और अप्रमेय शोभा रघुनन्दन श्रीराम के मन में समायी हुई है । वे सीता से खुलकर कहते हैं कि इस रमणीय पर्वतराज को देखकर उन्हें राज्यभ्रंश का कोई सन्ताप नहीं है । मित्रों के बिना शून्य संसार के समान कोई दुःख नहीं है ।[2]

न राज्यभ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः ।
मनो ने बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम् ।।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति के अद्भुत सौन्दर्य वाले इस गिरिवर को देखकर उसके मन की संकीर्णता और संताप दूर हो जाते हैं और पहले से ही पवित्रतम अन्तःकरण

---

1. वा0रा0अयो0 94.1

2. तदैव 94.3

वाले रघुनन्दन श्रीराम इस पर्वतराज के पवित्र परिदृश्य को देखकर आपादमस्तक रोमाञ्चित हो उठते हैं । प्रकृति का यह कार्य नैसर्गिक है वह अधोगामी को उर्ध्वगामी बना देती है, तमोगुणी को सत्वगुणी कर देती है, अंधकार को प्रकाश में बदल देती है, और अधर्म को धर्मोन्मुख कर देती है ।

अन्य तीर्थों से चित्रकूट की विशिष्टता के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं । ऋषिगण के लिए तो यह क्षेत्र पवित्र तपोवन है और वनचरों जीव-जन्तुओं के लिए अभयारण्य है । नाना प्रकार के शकुनिकुल यहाँ निर्भय रह रहे हैं इसके रंग-बिरंगे शिखर इस पर्वतराज की शोभा को बढ़ा रहे हैं । यह अचलेन्द्र अनेक वर्णों के पुष्पों से अलंकृत और विभिन्न धातुओं से विभूषित किसे आकर्षित नहीं कर रहा है ?[1]

पश्येममचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम् ।
विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः ।।

संस्कृत साहित्य में वर्णित चित्रकूट पर्यावरणिक दृष्टि से भी प्रायः समीतीर्थों से विशिष्ट रहा है । पर्यावरण के अन्तर्गत स्थूलरुप से पृथ्वी, जल, तेज, वायु और जीवजन्तु आते हैं, प्राणी मात्र के शरीर की रचना पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि से मिलकर होती हे, इन्हीं पाँच प्राकृतिक तत्वों के बल पर ही पृथ्वी पर जीवन विद्यमान रहता है । पर्यावरण के इन मूलतत्वों के कारण अथवा शब्दान्तर में संतुलित पर्यावरण के कारण ही पृथ्वी एक जीवित ग्रह है । इस पृथ्वी में भी कुछ ऐसे पवित्रतम क्षेत्र, अञ्चल या भूभाग होते हैं जो अपनी प्राकृतिक सुषमा, सुन्दरता, रमणीयता और कमनीयता से दिव्य और भव्य

---

1. वा0रामायण, 2.94.6

होते हैं । चित्रकूट ऐसे ही दिव्याञ्चलों में से एक विशिष्ट अञ्चल है । यहाँ की पृथ्वी, जल, तेज वायु और वनस्पति निसर्गतः परम रमणीय है । इसीलिए इस अञ्चल की ओर आकर्षित होते हुए श्रीराम बरबस कह उठते हैं कि यह चित्रकूट पर्वत अनेक दृष्टियों से विशिष्ट सुन्दरता वाला है । यहाँ आम्र, जामुन, लोध्र, प्रियाल, पनस, धव, अंकोल, बिल्व, विन्दुक, वेपु, केशर वर्ण के मधूक वृक्ष, तिलक, बेर, आँवले, कदम्ब, वेत्र, धनु और बीजक आदि पुष्प, फल और छाया वाले वृक्ष इस गिरिराज की शोभा बढ़ा रहे हैं ।

इस गिरिवर के सुन्दर शैल–प्रस्थों में मनस्वी, काम का वर्धन करने वाले किन्नरों के जोड़े दर्शनीय हैं । यहाँ पर विद्याधर सुन्दरियों के सुन्दर क्रीडास्थल भी शोभायमान हैं, जहाँ पर तरुशाखाओं में खड्ग और अम्बर लटक रहे हैं ।[1]

पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावद्भिर्मनोरमैः ।
एवमादिभिराकीर्णः क्षिप्रं पुष्यत्ययं गिरिः ।।
शैलप्रस्थेषु रम्येषु पश्येमान् कामहर्षणान् ।
किन्नरान् द्वन्द्वशो भद्रे रममाणान् मनस्विनः ।।
शाखावसक्तान् खड्गांश्च प्रवराण्यम्बराणि च ।
पश्य विद्याधर स्त्रीणां क्रीडोद्देशान् मनोरमान् ।

चित्रकूट के इस परिदृश्य से ऐसा प्रतीत होता है कि रमण करते हुए किन्नरों के जोड़े क्रीड़ावसक्त विद्याधर सुन्दरियाँ राम के मन में श्रृंगार के स्थायीभाव रति की सृष्टि करने में समर्थ होते हैं । जिससे श्रीराम का मन इस रमणीय निसर्ग सुषमा को देखकर आनन्द से रोमाञ्चित हो उठता है ।

---

1. वा0रामायण – 2.94.10–12

मधुर जल प्रपातों की दृष्टि से भी यह चित्रकूट अन्य तीर्थों से विशिष्ट प्रतीत होता है । यह पर्वत, मदजल प्रवाहित करने वाले गजराज की भाँति प्रतीत होता है । कहीं पर यहाँ कलरव निनाद करते हुए जलप्रपात दृष्टिगोचर होते हैं तो कहीं निस्पन्द निर्झर शनैः-शनैः आगे बढ़ रहे हैं । जल प्रपातों का जल निर्मल और मधुर है ।[1]

जलप्रपातैरूदभेदैर्निष्पन्दैश्च क्वचित् क्वचित् ।
स्त्रवद्भिर्भात्ययं शैलः स्त्रवन्मद इव द्विपः ।।

जल पर्यावरण का प्रमुख घटक है । जल को ही जीवन कहा जाता है । हमारे देश भारत में इसीलिए वर्षाऋतु का विशेष महत्व है । वर्षाऋतु से ही सम्पूर्ण सृष्टि चक्र गतिमान् हो उठता है । आकाश में आषाढ़ के प्रथम दिवस में कटाक्षपात की कला से अनभिज्ञ, प्रीति और स्नेह से भरी हुई जनपद-वधुएं घुमड़ते हुए काले मेघों को बड़े प्रेम से निहारती हैं । क्योंकि कृषि का फल मेघों की जलवर्षा पर आधारित है ।[2]

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः ।
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ।।

मेघ जल का जीवन्त प्रतीक है । वह चेतन पुरुष की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान में जाकर सन्तप्तों के संताप को दूर करता है । सरसता जल की देन है, परोपकार- भावना की सृष्टि करने वाला जलरुप मेघ ही है । वह (जलरुप मेघ) प्रवासी उद्गृहीत अलकों वाली, पथिक-वनिताओं के द्वारा धैर्य और विश्वास के साथ निहारा जाता है । सम्पूर्ण सृष्टि जल वर्षा से सराबोर हो जाती है । यह जल नायक और नायिकाओं

---

1. वा0रा0 2.94.13

2. मेघदूतम् पूर्व0 16

के मन को भी सरस बना देता है और उनमें मिलन की भावना की तीव्रानुभूति कराने में सहायक होता है ।

वर्षाकाल में उन्तुंग शिखर वाले चित्रकूट शैल की शोभा अवर्णनीय है । यद्यपि वह पुरुषों के द्वारा वन्दनीय रघुपति श्रीराम के चरणों से मेखला पर्यन्त अंकित है फिर भी दीर्घकाल के बाद जलवर्षा करने वाले मेघ के आने पर जलों से गहरी मित्रता के कारण, प्रथम मिलन पर वह अपने स्निग्ध अश्रुओं का विसर्जन करने लगता है ।[1]

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुंगमालिंग्य शैलं ।
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु ।।

इससे प्रतीत होता है कि जल (मेघ) और पर्वत का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ होता है इसीलिए मेघ सर्वप्रथम पर्वतों के आस-पास दिखाई देते हैं । पर्वतों की शोभा का प्रमुख कारण उसके जलस्रोत हैं । ये पर्वत मानव-जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं ये न केवल जल वायु, प्रत्युत मानव स्वास्थ्य को भी अत्यधिक प्रभावित करते हैं । खनिज पदार्थों और वनसम्पदा के अक्षय भण्डार होने के साथ-साथ ये जलों के निर्झरों के और नदियों के अक्षय स्रोत होते हैं जो मानव जीवन के विकास में अत्यधिक सहायक होते हैं । संस्कृत साहित्य में वर्णित चित्रकूट इसका मनोरम उदाहरण है । इस शैलराज के समीप में प्रवाहित होने वाली सरिद्वरा मन्दाकिनी की सुषमा इस सन्दर्भ में उल्लेखनी है । कोई भी तीर्थ किसी पवित्र नदी के बिना शोभित नहीं हो सकता । चित्रकूट में स्थित मन्दाकिनी इस क्षेत्र की शोभा द्विगुणित कर रही है । इसका जल शुभ्र है, और यह देखने में परम रमणीय है । मन्दाकिनी में स्नान न केवल, शारीरिक मल का प्रक्षालन करता है प्रत्युत यह मन के

---

1. मेघदूतम् पूर्व0 12

कल्मष को भी धो देता है । मन्दाकिनी के पुलिन, विचित्र शोभा वाले हैं वहाँ हंसों के जोड़े और सारस पक्षी बैठे हुए हैं । अनेक प्रकार के पुष्पों और फलों वाले तीर तरुओं से विराजित मन्दाकिनी किसका मन आकर्षित नहीं करती ? कहीं पर मृगों के झुण्ड मन्दाकिनी के मधुर जल का पान कर रहे हैं । यह रमणीय तीर्थ राम के मन में रति की सृष्टि कर रहा है । चित्रकूट ऋषियों, महर्षियों, जटाधारी मुनियों, वल्कलवस्त्रधारी ब्रह्मचरियों और तपोधनों का तीर्थ है । वे सभी प्रभात में इस सरिद्वराः मन्दाकिनी का अवगाहन विगाहन कर रहे हैं । यहाँ अपने व्रत में दृढ़ मुनिगण ऊपर हाथ उठाकर भगवान् सूर्य की उपासना कर रहे हैं ।[1]

जटाजिनधराः काले वल्कलोत्तरवाससः ।
ऋषयस्त्ववगाहन्ते नदीं मन्दाकिनीं प्रिये ।।
विचित्र पुलिनां रम्यां हंससारस संविताम् ।
कुसुमैरूपसम्पन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम् ।।
नानाविधैस्तीररूहैर्वृतां पुष्पफलद्रुमैः ।
मृगयूथनिपीतानि कलुषाम्भांसि साम्प्रतम् ।
तीर्थानि रमणीयानि रतिं संजनयन्ति मे ।।

यह गिरिवर चित्रकूट वायु के द्वारा प्रकम्पित शिखरों वाले पादपों से मन्दाकिनी नदी में पुष्प और पल्लवों की वर्षा करता हुआ, नर्तन सा कर रहा है । कहीं पर मणि के समान निर्मल जल वाली, कहीं पर सुन्दर किनारों वाली और कहीं पर सिद्ध जनों से समाकीर्ण यह मन्दाकिनी नदी परम रमणीय है । वायु के द्वारा उड़ाये गये और फैले हुए

---

1. वा०रा० 2.95.3–7

पुष्पों के समूह मन्दाकिनी के जल प्रवाह में तैरते हुए दिखाई दे रहे हैं । तो दूसरी ओर सुन्दर वचनों का उच्चारण करने वाले खग कुल तीर तरुवरों पर उड़ रहे हैं । चित्रकूट और मन्दाकिनी का दर्शन नगर निवास से अत्यधिक महत्वशाली प्रतीत होता है ।[1]

दर्शनं चित्रकूटस्य मन्दाकिन्याश्च शोभने ।
अधिकं पुरवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात् ।।

श्रीराम मन्दाकिनी की सुषमा से अत्यधिक अभिभूत हैं । वे सीता से कहते हैं कि तप, दम और शम से युक्त और निर्धूत कल्मष वाले सिद्ध महात्माओं के द्वारा नित्य विक्षोभित जल वाली इस मन्दाकिनी में तुम मेरे साथ अवगाहन करों । हे सीते । इन कमलपत्रों का स्पर्श करती हुई प्रिय सखी की तरह मन्दाकिनी नदी का सेवन करों । यहॉ के वन्य जीवों और जलचरों को पुरवासी जनों की भॉति और गिरिवर चित्रकूट को अयोध्या की भॉति और मन्दाकिनी नदी को सरयू की तरह सम्मान प्रदान करों । गज समूहों के द्वारा आलोडित–बिलोड़ित, सिंह, गज, वानर, आदि के द्वारा निपीत जल वाली पुष्पों के समूह से अलंकृत इस सरिद्वरा मन्दाकिनी को देखकर ऐसा मुझे कोई मनुष्य दिखाई नहीं देता, जो इसमें अवगाहन कर विगत श्रम और सुखी न हो जाता हो । नयनों में लगे हुए कज्जल के समान रमणीय यह चित्रकूट मुझे अति रमणीय प्रतीत होता है ।[2]

इमां हि रम्यां गजयूथलोडितां ।
निपीततोयां गजसिंहवानरैः ।
सुपुष्पितां पुष्पभरैरलंकृतां,
नसोऽस्ति यः स्यान्न गतक्लमः सुखी ।।

---

1. वा0रा0 2.95.12
2. वा0रा0 2.95.18

न केवल ऋषियों और महर्षियों की दृष्टि में चित्रकूट का भारतीय तीर्थों में विरल वैशिष्ट्य है प्रत्युत रामकथा के नायक श्रीराम की दृष्टि में चित्रकूट अतुलनीय शोभा वाला है । पर्यावरण की दृष्टि से भी यह श्रीराम को परम रम्य प्रतीत होता है । पर्यावरण का एक दूसरा प्रमुख और महत्वपूर्ण घटक वायु है, जो जीवन के लिए अपरिहार्य तत्व है । इसके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती, इसीलिए इसे शब्दांतर में प्राणवायु कहा जाता है । चित्रकूट में नाना प्रकार के पुष्पों के सम्पर्क से सुगन्धित गिरि–गह्वरों से निकलता हुआ वायु प्राणेन्द्रिय को तृप्त कर रहा है ओर कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो इस चित्रकूट बनाञ्चल की सुगन्धित वायु का सेवन कर प्रहर्षित न होगा ?[1]

गुहासमीरणो गन्धान् नानापुष्पभवान् बहून् ।
घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं न प्रहर्षयेत् ।।

वायु अष्टमूर्ति शंकर की एक मूर्ति के रुप में विख्यात है । शंकर शब्द का यहाँ तात्पर्य यह है कि जो सबका कल्याण करता है वहीं शंकर है । इस दृष्टि से वायु शंकर की मूर्ति है, क्योंकि वह सबका कल्याण करती है । वायु से ही प्राणी प्राण वाले कहे जाते हैं ।[2]

इसीलिए राम सीता से कहते हैं कि हे अनिन्दित सौन्दर्य वाली सीते । यदि इस चित्रकूटाञ्चल में तुम्हारे और लक्ष्मण के साथ अनेक शरद् ऋतुओं तक मैं निवास करता रहूँ, तो मुझे शोक पीडित नहीं करेगा । अनेक पुष्प और फलों से रमणीय नाना द्विजगणों से

---

1. वा0रा0 2.94.14

2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1.1

मण्डित विचित्र शिक्षरों वाला यह चित्रकूट सचमुच आनन्द का स्रोत है । इसलिए श्रीराम वैदेही जानकी से पूछ बैठते हैं कि हे सीते ! मन, वाणी और कर्म से सम्मत विविध भावों विभावों और अनुभवों का साक्षात् करती हुई क्या तुम मेरे साथ चित्रकूट में आनन्दित हो रही हो ? चित्रकूट जैसे वनाञ्चल का निवास राम के लिए अमृत की तरह मधुर प्रतीत होता है ।

प्राकृतिक शोभा की दृष्टि से चित्रकूट तीर्थ का अन्य तीर्थों से अपना अलग वैशिष्ट्य है । चित्रकूट शैल की विशाल सैकड़ों शिलायें नील, पीत, श्वेत और अरुण वर्णों में देदीप्यमान हो रही हैं । यह पर्वतराज नाना प्रकार के औषधियों का केन्द्र है । रजनी के उपस्थित होने पर औषधियाँ हुताशन-शिखाओं की भाँति चमकने लगती है । इसमें कहीं पर बिखरे हुए प्रस्तर खण्ड दिखाई देते हैं तो कहीं पर उघानों की शोभा प्रकट हो रही है । ऐसा प्रतीत होता है कि सभी प्रकार से शुभदर्शन वाला यह दिव्य और भव्य चित्रकूट वसुधा का भेदन करके मानों ऊपर उठ खड़ा हुआ है ।[1]

किंबहुना, यह गिरिवर कामीजनों के लिए भी अतयन्त सुखकारी है । यहाँ पर अगर पुन्नाग और भोजपत्रों के बिछौने वाले, कामियों के विस्तर दिखाई दे रहे हैं । यहाँ पर कमलों की मालायें कामियों के द्वारा विमर्दित और अवदलित दिखाई देती हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि यह चित्रकूट दम्पतियों की शान्त विहारस्थली भी बना हुआ है । सचमुच यह गिरिवर चित्रकूट अत्यधिक कन्दमूल फल और जलवाला होने से यहाँ के निवासियों के लिए आनन्द की वर्षा कर रहा है ।

---

1. वा0रा0 2.93.23

कुष्ठस्थगरपुंनागभूर्जपत्रोत्तरच्छदान् ।

कामिनां स्वास्तरान् पश्य कुशेशयदलायुतान् ।।

पर्वतश्चित्रकूटोऽसौ बहुमूल फलोदकः ।[1]

चित्रकूट की असामान्य विशेषता यह है कि प्रायः रामकथा से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों में कवियों ने इसकी रमणीयता से प्रभावित होकर सुन्दर-सुन्दर वर्णन किये हैं । भारत के अन्य तीर्थों को यह गौरव प्राप्त नहीं है, इसीलिए चित्रकूट तीर्थ को छोड़कर संस्कृत ग्रन्थों में किसी अन्य तीर्थ के निरन्तर रमणीय वर्णन प्राप्त नहीं होते । न केवल वाल्मीकि ने प्रत्युत कविकुलगुरु कालिदास ने भी पावन गिरिवर चित्रकूट का वर्णन कर अपनी वाणी को पवित्र किया है । कालिदास के युग में भी इस तीर्थ का तेज फैला हुआ था यह प्राचीनकाल से ही सामाजिक सद्भाव महान् धार्मिक, सांस्कृतिक, अध्यात्मिक और पर्यावरणिक चेतना का उत्प्रेरक रहा है । इसलिए जिस चित्रकूट ने कविचक्र-चूड़ामणि कालिदास जैसे कवि को भी अपनी ओर आकर्षित किया है तो फिर उसकी विशिष्टता के विषय में क्या कहा जा सकता है । कालिदास के समय में भी चित्रकूट वनाञ्चल शस्य श्यामल नाना पुष्पों और फलों से सम्पन्न था । पर्यावरण की दृष्टि से वनस्पतियों का अतिशय महत्व था । यहाँ के सघनतरु, शीतल छाया और मधुर फलों से अतिथियों का स्वागत उसी प्रकार से करते थे जैसे सुपुत्र अपने घर में आये हुए अतिथियों का स्वागत करते हैं ।[2]

छाया-विनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठ सम्भाव्य-फलेष्वमीषु ।

तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु ।।

---

1. वा०रा० 2.94.24-26

2. रघुवंश 13.46

चित्रकूट में स्थित महर्षि अत्रि के आश्रम की विशेषता वस्तुतः अलोक–सामान्य है । ऋषिगण सामूहिक रुप से यही तपस्या कर रहे हैं जिससे यहाँ का वातावरण बहुत पवित्र सौम्य और सात्विक हो गया है । मनुष्यों के लिए कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, हिंसक व्याघ्रादि भी सात्विक प्रकृति के दिखाई देते हैं । प्रकृति का यह नियम है कि प्रथम कुसुमोदय होता है तदनन्तर फलोत्पन्ति होती है, पहले धनादेय होता है और फिर जलवर्षा होती है, संसार में कारण और कार्य का यह नियम पूर्व निर्धारित है ।[1]

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः ।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमस्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः ।।

किन्तु मरीचि आश्रम के समान अत्रि के आश्रम में वृक्षों में पुष्पोदय के बिना ही मानो फलोत्पन्ति हो रही है । यह चित्रकूट वनाञ्चल महर्षि अत्रि की तपः साधनास्थली है । जिनकी उग्रतर तपस्या का अमित प्रभाव उपर्युक्त है । महर्षि अत्रि की अध्यक्षता में अनेक ऋषिगण वृक्षों के नीचे वीरासनों से ध्यान मग्न है । उत्तुंग शिखरों वाला, शुभ–दर्शन यह चित्रकूट बन्दनीय रघुपति–श्रीराम के चरणों से भी अंकित है । इसलिए इसका धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व भी कुछ कम नहीं है ।

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुंगमालिंग्य शैलं ।
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु ।।[2]

यहाँ का वन–कान्तार विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी से संयुक्त है, जो अनेक शतहृदों से अलंकृत घनश्यामला (वर्षाकाल) प्रावृट् की तरह शोभायमान है । चञ्चल वानर वृन्दों

---

1. अभिज्ञान् शाकुन्तलम्, 7.30

2. मेघदूतम्, पूर्वमेघ, 12

के द्वारा तोड़े जाते हुए ऊँचे-ऊँचे शालवृक्षों वाला, हरित कुश, समिधा, पुष्प शमीवृक्ष और पलाश वृक्षों से मंडित कोकिलकुल के मधुर-स्वर वाला, तमालवृक्षों से नीला, अर्जुन के रथ पताका की तरह वानराक्रान्त, वेत्रलताओं से दुष्प्रवेश्य अपरिमित पल्लवों से आच्छादित, क्रूर और हिंसक जानवरों से संकुल होते हुए भी मुनिजनों से संसेवित पुष्पवान् और पवित्र यह चित्रकूटाञ्चल किसके मन को आकर्षित नहीं करता ? ऐसा प्रतीत होता है कि यह धर्म का उत्पन्ति क्षेत्र है, यह प्रियपुत्रों के समान पादपों से सुशोभित है । यह वह पवित्र चित्रकूटारण्य है जहाँ पिता दशरथ की आज्ञा का पालन करते हुए राज्य को छोड़ देने वाले दशमौलि रावण की राज्यलक्ष्मी के विलास को विराम देने वाले श्रीराम, लक्ष्मण द्वारा विरचित रूचिर पर्णशाला में सीता के साथ चिरकाल तक रहे थे । पूजन के लिए पुष्पों का चयन करने वाली सीता के करतल से निकला हुआ राग (लालरंग) आज भी यहाँ की लताओं के किसलयां से प्रकट होता हुआ सा दिखाई दे रहा है, ऐसा प्रतीत होता है कि आज भी वर्षाकाल में गंभीर अभिनव मेघों के समूह का निनाद सुनकर त्रिभुवन विवरव्यापी श्रीराम की चापध्वनि का स्मरण करते हुए निरन्तर प्रवाहित अश्रुजल से विह्वल, कातर दृष्टि वाले, जरा से जर्जरित विषाणकोटि वाले जानकी के द्वारा संबर्धित जीर्णमृग, संभवतः आज भी शष्पकवल ग्रहण नहीं करते हैं । आज भी चित्रकूट के पावन कुटीरों में स्थित सीता की प्रतिमा श्रीराम के निवास से पवित्र कुटीरों को देखने के लिए धरणीतल से पुनः मानों ऊपर उठती हुई सी वनेचरों के द्वारा देखी जाती है ।[1] विंध्याटवी और वहाँ के समीपवर्ती आश्रमों के संबंध में कविर बाणभट्ट न श्रीरामकथा से सम्बन्धित अपने जिन भव्य विचारों का प्रसाद खड़ा किया है वह पवित्र चित्रकूट वनाञ्चल से सम्बद्ध प्रतीत होता है । चित्रकूट श्रीराम का वनवास कालीन निवास भूमि रही है, सीता और लक्ष्मण के साथ उन्होंने यहाँ अनेक वर्ष व्यतीत किये हैं, वन्य मृग पशु और पक्षी राम और सीता को परम प्रिय रहे हैं । इसलिए कविवर

---

1. कादम्बरी कथामुखम्, चौखम्भा संस्करण पृष्ठ 66

बाणभट्ट का उपर्युक्त वर्णन सर्वथा समीचीन और चित्रकूट से सम्बद्ध प्रतीत होता है ।

गिरिवर चित्रकूट सचमुच मनोहर है । यह न केवल साधारण पुरुष को बल्कि श्रीराम को और कविवर कालिदास को नयनाभिराम प्रतीत होता है । इसकी छवि ललित, मोहन और दृप्त साँड़ की तरह प्रतीत होती है । गिरिगुफा ही इसका मुख है, जलधारा की ध्वनि ही इसका शब्द है, पर्वत शिखर इसके सींग हैं और शिखरों में छाये हुए मेघ ही मानो श्रृंगाग्र में लगा हुआ वप्रपंक है ।[1]

धारास्वनोद्गारिदरी- मुखोऽसौ श्रृंगाग्रलग्नाम्बुदवप्रपंकः ।
बन्ध्नाति मे बन्धुरगात्रि । चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः।।

संस्कृत साहित्य में चित्रकूट रामगिरि के नाम से भी वर्णित है, चूँकि यह स्थल शोक, संताप और पीड़ा हारी है इसलिए न केवल राम, प्रत्युत कालिदास के मेघदूत का विरही यक्ष भी रामगिरि (चित्रकूट) के आश्रम में निवास हेतु आता है, अपने बन्धु-बान्धवों तथा प्रियतमा से दूर रामगिरि के पवित्र आश्रमों में निवास करता है । रामगिरि (चित्रकूट) के शिखरों में मेघों को घुमड़ते देख प्रियतमा की वियोग व्यथा उसे उद्वेलित कर देती है ।[2]

रामगिरि के संबंध में विद्वानों के मध्य अत्यधिक मत-मतान्तर प्राप्त होते हैं । पाश्चात्य विद्वान् बेंगलर महोदय रामगिरि का संबंध मध्यप्रदेश के सरगुजा जनपद में अवस्थित रामगढ़ पर्वत से स्थापित करते हैं । परन्तु दसूरे पाश्चात्य विद्वान कनिंघम ने तथा अन्य चिंतकों ने उनकी इस मान्यता का खण्डन करते हुए बुन्देलखण्ड में स्थित चित्रकूट को ही रामगिरि माना है ।[3]

---

1. रघुवंश, 13.47
2. मेघदूतम् 1.1
3. आर्कालॉजिकलरिपोर्ट भाग 21 पृ0 10.12

आज चित्रकूट की भौगोलिक स्थिति असंदिग्ध है। संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों के अवगाहन-विगाहन से तथा प्रचलित किंवदन्तियों और लोक परम्परा से यह निश्चित हो गया है कि चित्रकूट प्रयाग से पश्चिम दक्षिण बुन्देलखण्ड का प्रसिद्ध आरण्यक तीर्थ है । वाल्मीकि रामायण से यह स्पष्ट है कि श्रीराम सीता और लक्ष्मण के साथ महर्षि भरद्वाज के निर्देश पर वनवास का कुछ समय चित्रकूट में व्यतीत किया था और बाद में उसे छोड़कर दक्षिण दिशा की ओर इसलिए चले गये थे कि चित्रकूट अयोध्या के समीपवर्ती है, इसलिए उनसे मिलने के लिए भरत पुनः वहाँ आ सकते हैं ।[1]

रामस्त्वासन्नदेशत्वात् भरतागमनं पुनः ।
आशंक्योत्सुकसारंगां चित्रकूटस्थलीं जहौ ।।

इसलिए स्पष्ट है कि प्रयाग से पश्चिम दक्षिण दिशावर्ती चित्रकूट ही रामगिरि है वाल्मीकि रामायण में भी चित्रकूट को प्रयाग के समीपर्ती दश कोश की दूरी पर स्थित बतलाया गया है ।[2]

दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन् निवत्स्यसि ।
महर्षि-सेवितः पुण्यः पर्वतः शुभ-दर्शनः ।।

डा0 वी.वी. मिराशी ने रामगिरि की, जनपद सरगुजा स्थित रामगढ़ पहाड़ी से सम्बद्धता का, कतिपय विद्वानों की मान्यता का अपनी प्रखर-युक्तियों से खण्डन कर दिया है। किन्तु महाराष्ट्रीय विद्वान् होने के कारण क्षेत्रवाद से प्रेरित होकर उन्होंने रामगिरि का सम्बन्ध नागपुर के पास स्थित रामटेक पहाड़ी से स्थापित किया है । यद्यपि उन्होंने अपने विद्वत्तापूर्ण तर्कों और युक्तियों से मेघदूत में वर्णत मेघ के मार्ग का भौगोलिक दृष्टि से विस्तृत अध्ययन किया है । जिसके निष्कर्ष स्वरूप उन्होंने रामगिरि को रामटेक पर्वत माना है ।[3]

---

1. रघुवंश 12.24
2. वा0रा0 2.54.28
3. मिराशी, मेघदूत में रामगिरि अर्थात् रामटेक, पृ0 35

किन्तु मिराशी महोदय का उक्त विचार समीचीन प्रतीत नहीं होता है । उनके उक्त विचारों से अनेक प्राचीन और अर्वाचीन विद्वान् सहमत नहीं है । मेघदूत के प्राचीन टीकाकार काश्मीरी विद्वान् बल्लभदेव जिनका समय दशम शताब्दी है, ने अपनी मेघदूत की टीका में "रामगिर्याश्रमेषु" पद का अर्थ "चित्रकूटाचल तपोवनेषु" किया है ।[1] कालिदास के काव्यों के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ (ग्यारहवीं शताब्दी) ने भी मेघदूत की अपनी संजीवनी टीका में रामगिरि का अर्थ चित्रकूट ही किया है ।[2] इधर आधुनिक संस्कृत साहित्य के अध्येता और विद्वान् वंगीय पण्डित महामहोदाध्याय पद्मभूषण हरि दास सिंद्धान्त वागीश भी मेघदूत की अपनी टीका में रामगिरि को बुन्देलखण्ड का चित्रकूट मानते हैं तथा अन्य मतों को वितण्डावाद कहते हैं ।[3]

संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य व्याख्याता और प्रवक्ता आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का भी यह निष्कर्षात्मक मन्तव्य है कि रामगिरि चित्रकूट ही है । उनके अनुसार जो लोग रामगिरि को चित्रकूट न मानकर नागपुर के पास रामटेक पहाड़ी या रीवां राज्य का रामगढ़ मानते हैं, उनका यह भ्रम है क्योंकि रामटेक तो सूखी पहाड़ी है जहाँ कभी जल के भी दर्शन नहीं होते । ऐसी सूखी पहाड़ी पर यक्ष रहने क्यों जायेगा ?[4] पुरातत्व के अधिकारी विद्वान डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल ने "मेघदूत का अध्ययन : शिव का स्वरूप" शीर्षक अपने एक लेख में रामगिरि की रहस्यात्मक व्याख्या करते हुए कहा है कि मेरुदण्ड

---

1. रामगिरिः अत्र चित्रकूटः न तु ऋष्यमूकः तत्र सीतायाः वासाभावात् मेघदूत पूर्व मेघ0 1 बल्लभदेवविरचित टीका
2. रामगिरेः चित्रकूटस्याश्रमेषु, तस्मिन्नद्रौ चित्रकूटाद्रौ पूर्व मेघ.1 मल्लिनाथ संजीवनी टीका
3. अन्ये तु व्याख्यातारः रामगिरिपदस्यार्थः रामटेक,रामगढ़ इत्यादिक माचक्षाणाः परस्परं विविदन्त । —हरिदास सिद्धान्त वागीश विरचित टीका पूर्व मेघ. 1
4. कालिदास- ग्रन्थावली, पृ0 5

का जो भाग मूलाधार चक्र में स्थित है, उसका नाम चित्रकूट है । चित्रानाम सुषुम्ना या कुण्डलिनी का है । चित्रा का कूट ही चित्रकूट है । यही रामगिरि है, क्योंकि शिवधनु को शिव की भाँति राम ने भी अधिज्य किया था । यहीं से कामपुरुष मेघ उठकर कैलास की गोद में बसी अलका को जाता है ।[1]

कालिदास की कृतियों का शोधपरक अध्ययन करने वाले कालिदास पुरस्कार विजेता डा० रमा शंकर तिवारी भी रामगिरि को चित्रकूट ही माना है ।[2]

इस प्रकार उपर्युक्त पर्यालोचन से यह सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि रामगिरि चित्रकूट का पर्याय है । क्योंकि रामगिरि–चित्रकूट तादात्म्य की परम्परा पुरानी है । रघुवंश महाकाव्य की रचना करते समय कविवर कालिदास ने सूर्य से उत्पन्न होने वाले रघुवंश की महानता तथा स्वल्पविषय को ग्रहण करने वाली अपनी बुद्धि की तुलना सागर पार करने वाली छोटी नौका से की है, और उसी के तारतम्य में उन्होंने कहा है कि इस महान् रघुवंश के वर्णन में पूर्व–सूरि आदि कवि बाल्मीकि के द्वारा वाग्द्वार उद्घाटित कर दिया गया है, इसलिए जिस प्रकार वज्र से समुत्कीर्ण मणि में सूत्र सरलता से प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार मंदमतिमैं भी रघुवंश वर्णन में समर्थ हो जाऊँगा । उनके इस कथन से यह प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने काव्यों के प्रणयन में वाल्मीकि रामायण को आधार बनाया है । जिस प्रकार निर्वासित श्रीराम जानकी की विरहव्यथा से व्यथित होकर हनुमान् जी के द्वारा अपना सन्देश लंका में स्थित सीता के पास भेजते हैं, उसी प्रकार कालिदास ने भी रामायण की उपर्युक्त कथावस्तु से प्रेरित होकर अपने खण्डकाव्य मेघदूत की कथावस्तु का गुम्फन किया है । तदनुसार विरहीयक्ष रामगिर्याश्रम (चित्रकूटाश्रम) में रहते हुए अपना सन्देश अपनी प्रियतमा

---

1. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, मेघदूत का अध्ययन : शिव का स्वरूप पृ० 10
2. "चित्रकूट पर्वत तथा मेघ में मधुर मैत्रीभाव स्थापित हो जाता है" डा० रमाशंकर तिवारी: कालिदास पृ० 427

के पास मेघ द्वारा अलकापुरी भेजना चाहता है । कालिदास काव्यों के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ भी यही प्रतिपादित करते हैं । इस प्रकार जब निर्वासित श्रीराम चित्रकूट में अपना प्रवास काल व्यतीत करते हैं तो फिर वाल्मीकि की काव्य परम्परा का अनुसरण करने वाले कविवर कालिदास निर्वासित यक्ष को किसी अन्य रूखी-सूखी पहाड़ी में प्रवास हेतु क्यों भेजेंगे ? क्योंकि पूर्व से ही कालिदास के समक्ष पुरुषों के द्वारा वन्दनीय रघुपति पदों से मेखला पर्यन्त अंकित चित्रकूट पर्वत विद्यमान और प्रख्यात है । जबकि वहाँ सघन छाया वाले, और जनकतनया के स्नान के पुण्य जलों से अभिसिञ्चित तरुओं वाले आश्रम निवासार्थ विद्यमान हैं ।

वनवास काल में श्रीराम ने सीता और लक्ष्मण के साथ जिन आश्रमों और पर्वताञ्चलों पर निवास किया है उनमें वाल्मीकि ने प्रमुख रुप से चित्रकूट और ऋष्यमूक पर्वत का निर्देश किया है । कालिदास ने रघुवंश में वाल्मीकि रामायण का ही अनुसरण किया है और राम के प्रवास स्थलों के रूप में उन्हीं स्थानों का नामोल्लेख किया है ।

रघुवंश महाकाव्य के वर्णनानुसार राम अयोध्या से निकलकर चित्रकूट पहुँचते हैं और वहाँ वे कुछ दिन रहकर अनुसूया आश्रम जाते हैं तत्पश्चात् आगे चलकर विराध का वध कर वे पंचवटी में रहने लगते हैं । अयोध्या से पंचवटी तक की यात्रा का संक्षिप्ततम वर्णन रघुवंश में पढ़ने को मिलता है । किन्तु लंका में रावण वध के पश्चात् अयोध्या की ओर पुष्पक विमान से लौटते हुए श्रीराम ने सीता को अपने वनवासकालीन निवासस्थलों का जो दर्शन कराया है वह पूर्व की अपेक्षा विस्तृत है । विमानयात्रा के अनुसार पंचवटी के बाद अगस्त्य आश्रम, शातकर्णी ऋषि का पञ्चाप्सर सरोवर, सुतीक्ष्ण आश्रम, शरभंग आश्रम, चित्रकूट मन्दाकिनी नदी, अत्रि आश्रम, श्यामवट, यमुना नदी, गंगा नदी, निषादराज गुह का नगर सरयू नदी और अयोध्या नगरी का क्रमिक उल्लेख रघुवंश में प्राप्त है । उपर्युक्त विमानयात्रा में

कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त ऐसे किसी स्थान का नामोल्लेख नहीं किया है जहाँ राम और सीता ने निवास किया हो । उपर्युक्त स्थलों का वर्णन करते समय कविवर कालिदास की दृष्टि चित्रकूट वनाञ्चल पर ही सबसे अधिक टिकती है । अन्य स्थलों का वर्णन वे एक–दो श्लोकों से ही करते हैं किन्तु चित्रकूट वनाञ्चल का वर्णन वे आठ श्लोकों से करते हैं ।[1] इससे चित्रकूट के प्रति कालिदास के आकर्षण की स्पष्ट प्रतीति होती है । चित्रकूट के शिखरों का दर्शन वाल्मीकि के समय कल्याणकारी रहा है, और यह वनाञ्चल मधुमूलफलोपेत होने के कारण राम के निवास योग्य रहा है तो फिर मेघदूत का यक्ष भी यहाँ पर अवश्य रहा होगा । मेघदूत के अभिशप्त यक्ष के प्रवास के लिए कविवर कालिदास ने जिस रामगिरि का उल्लेख किया है वह चित्रकूट का ही दूसरा नाम है । श्रीराम के प्रवास के कारण चित्रकूट गिरि का दूसरा नाम रामगिरि हो गया है । इधर वृहद् रामायण के अन्तर्गत "चित्रकूट माहात्म्य" की एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है जिसमें चित्रकूट को अनेक बार रामगिरि के नाम से वर्णित किया गया है ।[2]

वाल्मीकि और कालिदास के अतिरिक्त संस्कृत के अन्य ग्रन्थों में चित्रकूट का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है जिनमें हनुमन् नाटक, भट्टिकाव्य, प्रसन्नराघव, अध्यात्म रामायण, आनन्दरामायण, वृहद्रामायण, अनर्घराघव, बालरामायण, अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण, नारदीय पुराण, पद्मपुराण, आदि ग्रन्थ प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं । विस्तार भय से इनमें वर्णित चित्रकूट वनाञ्चल का वर्णन यहाँ करना संभव नहीं है । इन उपर्युक्त ग्रन्थों में प्राप्त चित्रकूट के निरन्तर वर्णनों से इस क्षेत्र की विशिष्टता अन्य भारतीय तीर्थों की तुलना में स्वतः सिद्ध हो जाती है । चित्रकूट प्राचीन काल का प्रसिद्धतम चर्चित तीर्थ है ।

---

1. रघुवंश, 13.45–52
2. देखिये परिशिष्ट वृ0रा0 चित्रकूट माहात्म्य 1.8,9

परवर्तीकाल में नानापुराण निगमागम और रामायण के अध्येता हिन्दी के संतकवि तुलसी के लिए चित्रकूट की प्राकृतिक सुषमा निराली है । नाना प्रकार के विटपों तथा लताओं से सुशोभित यह वनाञ्चल झर-झर शब्द करते हुए निर्झरों से झंकृत है, विविध पक्षियों के श्रोत्र-पेय कलरव से कमनीय है । मृग, सिंह, गज, वयाघ्र, ऋषि, मुनि और तपस्वियों से सुशोभित हैं । जहाँ बैर के स्थान पर परस्पर प्रीति प्रतीत होती है । अतः उनकी दृष्टि में चित्रकूट का धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणिक महत्व अन्य तीर्थों की अपेक्षा अति-विशिष्ट है ।

चित्रकूट के प्रमुख दर्शनीय स्थल :-

चित्रकूट आर्यावर्त का प्राचीनतम आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा निसर्गतः पर्यावरणिक सुषमा-सम्पन्न वन्य तीर्थस्थल है और वीतराग जितेन्द्रिय संत महात्माओं की तपश्चर्या का पावन तपोवन है । चित्रकूट वनों, पर्वतों, झरनों, नदी स्रोतों, मन्दिरों और प्रतिमाओं से युक्त किसी स्थान विशेष का केवल नाममात्र ही नहीं है प्रत्युत यह हमारी उस सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है, जिसमें हमारी जातीय चिन्तन की सम्पूर्ण उपलब्धियाँ संश्लिष्ट है । सुदूर प्राचीन काल से चित्रकूट-तीर्थयात्राओं का सिलसिला चला आ रहा है जो अभी भी चल रहा है और सम्भवतः जब तक यह चित्रकूट गिरि रहेगा, मन्दाकिनी नदी प्रवाहित होती रहेगी, और रामकथा झोपड़ी से लेकर राजमहलों तक सुनी जाती रहेगी, तब तक तीर्थयात्राओं का यह न टूटने वाला सिलसिला बना रहेगा ।

युग-युगों से चित्रकूट तपस्वियों और संतों का आध्यात्मिक धर्मक्षेत्र रहा है, और अध्यात्मक का यहाँ इतना मन्थन एवं विमंथन हुआ है कि चित्रकूट के अणु परमाणु में भक्ति, विरक्ति और शान्ति तथा सात्विक भावना भर गई है । इसीलिए यह रामायणकाल से लेकर आज तक भारतीय मनीषा की आराधना का एक शाश्वत पुण्य-केन्द्र बना हुआ है और

इसके सुखद वनाञ्चल में भौतिक आधि–व्याधियों से संतप्त कोटि–कोटि जीवों ने स्थायी शान्ति प्राप्त की है ।

चित्रकूट के अनिर्वचनीय और अकथनीय वैशिष्ट्य का ज्ञान इसी बात से हो जाता है कि वाल्मीकि व्यास, कालिदास और भवभूति प्रभृति संस्कृत के अनेकानेक महाकवियों ने इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है । भारतीय संस्कृति के प्राण, नीति–रीति और परमार्थ के ज्ञाता तथा आदर्शपथ के अनुल्लंघनीय प्रणेता श्रीराम ने अपने निवास के लिए जिस स्थान का वरण किया हो, और ऋषियों ने जिसके माहात्म्य के गीत गाये हों तो फिर उसके प्रभाव तथा माहात्म्य के बारे में कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ।

चित्रकूट के कतिपय दर्शनीय स्थल निम्नांकित हैं :–

<u>कामदगिरि</u> :–

चित्रकूट तीर्थ का प्रमुख अधिष्ठातृ देवता "कामदगिरि" पर्वत है । इसे ही "चित्रकूटगिरि" और "रामगिरि" तथा "कामदगिरि" के नाम से अभिहित किया जाता है । इसका प्राकृतिक वैभव अपूर्व है। रामकथा से सम्बद्ध प्रायः सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य तथा अन्य भाषा साहित्यों में इस गिरिवर के महत्व का प्रशंसनीय वर्णन उपलब्ध होता है । धार्मिक जनता प्रतिदिन और विशेषरुप से अमावस्या, पौर्णमासी तथा अन्य पर्वों में इस पर्वत की परिक्रमा और दर्शन बड़ी श्रद्धा के साथ करते आ रहे हैं । इससे तीर्थ यात्रियों की कामनायें भी पूरी होती है । इसलिए इसे कामनाओं का प्रदाता होने के कारण "कामदगिरि" के नाम से स्मरण करते हें । इसके दर्शन मात्र से लोगों के विषाद दूर हो जाते हैं । यह सचमुच इस क्षेत्र का "देवतात्मा" है । तीर्थयात्री जब इस गिरिवर की परिक्रमा करते हैं

तो वे इसके प्राकृतिक वैभव और पर्यावरणिक सम्पदा से परमानन्दित होते हैं । इस गिरिवर की परिधि लगभग तीन मील है । इस पर्वत के परिक्रमा मार्ग के किनारे-किनारे अनेक देवालय बने हुए है । पर्वत के दक्षिणी भाग में एक छोटी सी पहाड़ी है जो लक्ष्मण पहाड़ी के नाम से विख्यात है । इस पहाड़ी के शिखर पर लक्ष्मण जी का एक छोटा सा मन्दिर हैं, किंवदन्ती के अनुसार यह कहा जाता है कि लक्ष्मण जी यहाँ निवास करते थे । यहीं से जाकर वे चित्रकूट पर्वत में रहने वाले श्रीराम जानकी की सेवा किया करते थे ।

भरतमिलाप :-

यह स्थान कामदगिरि के दक्षिण पार्श्व में परिक्रमापथ पर अवस्थित है । यह कहा जाता है कि यह वही स्थान है जहाँ भरत राम का कारुणिक मिलाप हुआ था । आज भी यह स्थान भाईयों के मिलाप की कथा कह रहा है । उस समय वहाँ की प्रकृति भी करुणापूरित हो गयी थी । पर्वतराज की कठिन शिलायें भी पिघलकर पानी-पानी हो गई थी, पक्षियों का कलरव शांत हो गया था, लतायें पुष्पवर्षा से मानों रो रही थी । यह वह स्थल है जहाँ पर धर्म के समक्ष राजनीति नतमस्तक हुई थी । पिघली हुई शिलाखण्डों के अवशेष आज भी उस अभूतपर्वू बन्धु-मिलन की याद को तरो-ताजा कर देते हैं ।

रामघाट :-

चित्रकूट पर्वत से डेढ़ किमी. पूर्व पयस्विनी (मंदाकिनी नदी तट) में निर्मित रामघाट भक्तों एवं श्रद्धालुओं के लिए परम पवित्र माना जाता है । रामघाट के समीप में अनेक मन्दिर और मठ हैं जिसमें मत्तगयेन्द्र नामक स्थल में शंकर जी का महत्वपूर्ण मन्दिर है । मंदाकिनी में स्नान करने वाले तीर्थयात्री यहाँ से जल लेकर शिवलिंग-मूर्ति में जल चढ़ाकर अपने को धन्य करते हैं । इससे स्पष्ट है कि पौराणिक संस्कृति का प्रभाव यहाँ विद्यमान है ।

प्रमोदवन :-

रामघाट से ० किमी. दक्षिण चित्रकूट-सतना रोड़ पर मंदाकिनी तट में यह स्थान मिलता है । यहाँ श्रीनारायण भगवान् का दिव्य मन्दिर है इस मन्दिर के चारों ओर 300 कमरे बने हुए हैं । कहा जाता है कि किसी धार्मिक अनुष्ठान के निमित्त रींवा नरेश ने इस लक्ष्मी नारायण मन्दिर और कक्षों का निर्माण कराया था । यहाँ का वनाञ्चल पर्यावरणिक दृष्टि से परम रमणीय है । इस वन के दर्शन से मन में प्रमोद की उत्पत्ति होती है । इसीलिए संभवतः इसे प्रमोदवन कहा जाता है ।

जानकी कुण्ड :-

प्रमोदवन से कतिपय दूरी पर दक्षिण की ओर जानकी कुण्ड अवस्थित है । सम्प्रति जानकी-कुण्ड चित्रकूट का सर्वाधिक रमणीय आश्रम समझा जाता है । इस क्षेत्र में विरक्त महात्माओं की सैकड़ों गुफायें तथा कुटीर हैं । जहाँ अनेक संत महात्मा तपश्चर्या में लगे रहते हैं । जहाँ की प्राकृतिक सुषमा और प्राकृतिक परिदृश्य परम रमणीय है इस आश्रम के नीचे यदि मंदाकिना कल-कल निनाद करती हुई प्रवाहित हो रही है तो इसके उभयतटों पर सघन तरुवरों, लतावल्लरियों की सुन्दर पंक्तियाँ मन मोहिनी है । मन्दाकिनी के निर्मल जल में असंख्य दीर्घकाय मछलियाँ तैरती रहती हैं जो पल भर के लिए तीर्थयात्रियों और पर्यटकों के मनोरंजन का साधन बन जाती है । किंवदन्ती है कि वनवास काल में जनक तनया जानकी यहाँ नित्य स्नान करने आती थी इसीलिए इसे संभवतः जानकी कुण्ड कहा जाता है । यहाँ सम्प्रति अन्य सन्तों न भी अपने आश्रमों तथा मन्दिरों का निर्माण कराया है जिनमें यहाँ हनुमान् और रामजानकी के मन्दिरों की भव्यता अवलोकनीय है ।

स्फटिकशिला :-

यह स्थल जानकीकुण्ड से लगभग डेढ़ किमी. दक्षिण सघन वनाच्छादित मंदाकिनी तट पर स्थित है । यह किंवदन्ती है कि श्रीराम और सीता यहाँ पर बैठा करते थे और माता जानकी के साथ इन्द्र पुत्र जयन्त की घटना यहीं घटित हुई थी । कुछ भी हो यहाँ का प्राकृतिक परिदृश्य अत्यन्त आकर्षक मनोमुग्धकारी और नेत्रानुरंजनकारी है ।

अनसूयाआश्रम :-

जानकीकुण्ड से लगभग 15 किमी. दक्षिण यह आश्रम अवस्थित है । महासती अनुसूया और महर्षि अत्रि की यह तपोभूमि है । अत्रि और अनुसूया के तपः प्रभाव से इसका कण-कण परम पवित्र तथा प्रेरणाप्रद है ।

पर्यावरणिक दृष्टि से चित्रकूट क्षेत्र के अन्तर्गत इसकी कोई तुलना नहीं है । जन समूह के कोलाहल से अत्यन्त दूर शान्ति का सुरम्य आगार परम रमणीय यह स्थल पर्यटकों का मन मोहित कर लेता है । कहा जाता है कि यह सिद्धि क्षेत्र है यहाँ पर अत्रि, अनुसूया, उनके पुत्र दत्तात्रेय, दुर्वासा आदि ऋषियों ने सिद्धि प्रापत की थी । इसकी प्राकृतिक सुषमा देखकर आश्चर्य होता है एक बार यहाँ जाने वाला पर्यटक इसका भक्त बन जाता है । पर्वतों के अञ्चल में अवस्थित यह आश्रम वन के हरे-भरे पौधों से सदैव सुशोभित रहता है । आश्रम के एक ओर धवल सलिना पयस्विनी प्रवाहित हो रही है तो दूसरी ओर गगनचुम्बी पहाड़ प्रहरी की भाँति खड़ा है । यहाँ घने-2 वन, हिंसक पशु, जीवजन्तु देखने को मिलते हैं । यहाँ पर अनुसूया के तप:प्रभाव से मन्दाकिनी का आविर्भाव हुआ था, इसीलिए इसे अनुसूया आश्रम कहते हैं । चित्रकूट का प्राचीन प्राकृतिक वैभव यहाँ आज भी दिखाई देता सा प्रतीत होता है । यह वही स्थल है जहाँ पर श्रीराम

और सीता का महर्षि अत्रि और सती अनुसूया ने समादर किया था और अनुसूया ने सीता को दिव्य वस्त्राभूषण देने के साथ-साथ उपदेश भी दिया था । श्रीराम दण्डकारण्य की ओर प्रस्थान करते समय अत्रि आश्रम में एक रात्रि रुके थे । अनुसूया ने सीता से कहा था कि अब रात्रि हो गई है तो मेरे साथ यहाँ निवास करों, तुम्हारे बचपन की कथा सुनकर मैं बहुत आनन्दित हुई हूँ ।[1]

रमयं कथया ते तु दृढं मधुरभाषिणि ।
रविरस्तं गतः श्रीमानुपोह्य रजनीं शुभाम् ।।
सन्ध्याकाले निलीनानां निद्रार्थं श्रूयते ध्वनिः ।।

गुप्तगोदावरी :-

यह तीर्थ स्थल अनुसूया आश्रम से लगभग 6 किमी. दूर पश्चिम में है । यहाँ एक लम्बी गुफा से निरन्तर जल प्रवाहित होता रहता है । गुफा से पानी की धारा कुण्डों पर गिरती है और वहीं पर विलुप्त हो जाती है । इसी से संभवतः इसे गुप्त गोदावरी कहते हैं । यहाँ का प्राकृतिक कला-कौशल अद्भुत है । गुफा के अन्दर पत्थरों में उत्कीर्ण प्रकृति की शिल्पकला पर्यटकों का मन मोहित करती है । जलवाही गुफा के दूसरी ओर एक अन्य विशाल गुफा है जिसका ऊपरी भाग अत्यधिक समुन्नत है । इसके छत पर एक ऐसा पत्थर लटकता है जो हिलता रहता है इसे वहाँ के स्थानीय जन खटखटा चोर कहते है । अनेक जनश्रुतियाँ इस स्थल से जुड़ी हुई हैं जिसका विवेचन इस प्रबन्ध के लिए अवांच्छित है ।

[illegible] :

---

1. वा0रा0 2.119.3,4

<u>हनुमानधारा</u> :-

विन्ध्यपर्वत श्रृंखला पर रामघाट चित्रकूट से 3 किमी. पूर्व यह स्थल स्थित है । यहाँ पर हनुमान् जी की भव्य मूर्ति स्थापित है इस पर निरन्तर जलधारा गिरती रहती है । यहाँ पर पर्वत, प्रकृति सुषमा का अपूर्व केन्द्र है यहाँ आने से मन को विश्रांति मिलती है । हनुमान् के भक्त निरन्तर यहाँ आते रहते हैं और धारा में स्नान कर हनुमान् जी का पूजन और अर्चन करते हैं । पर्यावरणिक दृष्टि से यह स्थल परम रम्य है ।

इसके अतिरिक्त इसी पर्वत श्रेणी में समीपवर्ती बाँके सिद्ध, कोटितीर्थ, देवांगना आदि उपतीर्थ भी है जिनका नामोल्लेख पर्याप्त है । इस क्षेत्र में मड़का, भरतकूप, गणेश बाग, वाल्मीकि आश्रम आदि भी अवस्थित है जो कुछ दूर और कुछ पास में है । पर्यटक यहाँ भी आते-जाते हैं और यहाँ की प्राकृतिक छटा से आनन्दित होते हैं ।

उपर्युक्त सम्पूर्ण उपतीर्थ चित्रकूट क्षेत्रान्तर्गत होने से चित्रकूट के सदृश महत्वपूर्ण हैं । विस्तार भय से इन सबका विस्तृत वर्णन करना संभव नहीं है । यहाँ सर्वत्र "देवातात्मा" चित्रकूट का ही बिम्ब प्रतिबिम्बित हो रहा है । यहाँ की प्रकृति, पर्यावरण की सम्पदा के साथ आकर्षण का केन्द्र है ।

हमारे देश के सभी तीर्थों का महत्व एक समान है । देशवासियों के मन में सभी के प्रति एक जैसी धार्मिक-राष्ट्रीय आस्था है । किन्तु चित्रकूट का अपना कुछ विशिष्ट महत्व है । पहली बात तो यह है कि भौगोलिक रूप से इसकी स्थिति इसे उत्तरी भारत को दक्षिण से जोड़ने वाला द्वार बना देती है । रामायण युग से ही यह विन्ध्य द्वार देश के उत्तर-दक्षिण का सम्पर्क केन्द्र रहा है । दूसरी बात यह है कि नगरीय तीर्थों की

तरह इसका प्राकृतिक पर्यावरण अभी प्रदूषित नहीं हुआ है । आज भी इसकी पर्वतमाला, मंदाकिनी, वनस्पति जगत्, जनसंस्कृति अपना लगभग-लगभग वहीं स्वरूप बनाए हैं जो हमें रामायण में देखने को मिलता है । तीसरी बात यह है कि हमारे देश की सभी भाषाओं में राम की इतिहास कथा सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्य कथा है, चित्रकूट रामकथा का सबसे भावना प्रधान तीर्थ स्थल है । इन सभी दृष्टियों से चित्रकूट अन्य तीर्थों की तुलना में कुछ अधिक विशिष्ट हो जाता है । चित्रकूट से संबंधित इस अध्ययन में यही दृष्टि काम कर रही है ।

अ ध्या य – 5

रामायण युग का चित्रकूट

अ. भौगोलिक स्थिति

ब. [illegible] एवं पर्यावरण

स. आंचलिक जन जीवन

द. सांस्कृतिक महत्व

5

रामायण युग का चित्रकूट

रामायण–महाभारत युग में तीर्थ

रामायण, महाभारत और पुराणकाल में तीर्थ के संबंध में प्रचुर सामग्री प्रापत होती है । आज तीर्थो का धार्मिक और आध्यात्मिक महत्व जिस तरह धार्मिक भंरतीय जनता के मन में समाया हुआ है वह इसीकाल की देन है । वैसे तो देवभूमि भारत का कोई भी स्थल भारतवासी के लिए अपनी माता के समान महीयान् और गरीयान् हे फिर भी विशाल पर्वत, कल–कल निनाद करती हुई लम्बी–लम्बी नदियाँ और सघनवनकान्तार विशेष रुप से हृदय को विश्रान्ति देन वाले पुण्यप्रदाता और दिव्यस्थल एवं तीर्थ के रुप में मान्य हैं । इसीलिए भारतवर्ष के ऋषियों ने तीर्थयात्रा के स्थलों को वहाँ चुना है जहाँ भव्य पर्वत श्रृंखलायें हैं और मधुर जल प्रवाहित करने वाली आजस्र स्त्रोतस्विनी सरितायें विद्यमान हैं । इन्हीं वैदिक अवधारणंओं को मन में रखकर पुराणकार व्यासों ने सम्पूर्ण हिमालय, सम्पूर्ण गंगा, समुद्रगामी नदियों और सभी समुद्रों को पुण्य और पवित्र तीर्थ माना है :–

सर्वं पुण्यं हिमवतो गंगा पुण्या च सर्वतः ।
समुद्रगाः समुद्राश्च सर्वे पुण्याः समन्ततः ।।[1]

इसी परम्परा में वाल्मीकि वेदव्यास और कालिदास प्रभृति कविवृन्दों ने तीर्थों को नव्य परिवेश में परिभाषित किया है । इसीलिए भारतदेश के उन्तरी सीमा में अवस्थित नगाधिराज हिमालय कालिदास के लिए ही नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण भारतीयों के लिए "देवतात्मा"

---

1. वायु पुराण, 77.1.17

है । आदि कवि वाल्मीकि का चित्रकूट भी हमारे लिए "देवतात्मा" है ।

रामकथा के तीर्थ :-

महर्षिप्रवर आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण की अद्भुत और विलक्षण रचना की है । यह हमारे देश का आदि महाकाव्य है और रामकथा का यह प्रथम स्त्रोत है । रामायण और रामकथा हमारी भारतीय संस्कृति की अस्मिता के प्रतीक हैं । ऐसा अपूर्व ग्रन्थ विश्व साहित्य में खोजने पर भी दुर्लभ है । इस ग्रन्थ में हमारा सम्पूर्ण राष्ट्र और उसके विशिष्ट स्थल प्रतिबिम्बित हैं । राम अयोध्या से जहाँ जहाँ गये, जहाँ-जहाँ निवास किया और भ्रमण किया उन पवित्र स्थलों का सांगोपांग चित्रण इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है । श्रीराम हमारी दशावतार-परम्परा के एक अवतारी मर्यादा पुरुषोत्तम और लीला पुरुष के रूप में प्राचीन काल से अभिनन्दित और वन्दिर रहे हैं और उनका चरित्र हमारे भारत का सर्वमान्य आदर्श रहा है । राम से संबंधित स्थल राम के सम्पर्क के कारण परम पवित्र हो गये हैं ।

पावन तपोवन चित्रकूट :-

वाल्मीकि रामायण में वर्णित चित्रकूट अत्यन्त प्राचीन परमपवित्र तीर्थस्थल है । यद्यपि वैदिककाल में चित्रकूट के उल्लेख प्राप्त नहीं होते हैं जिससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता, कि श्रीराम निवास के कारण ही यह स्थल तीर्थस्थल के रुप में विख्यात हुआ है । वैदिककाल में इसका उल्लेख न मिलने का कारण यह प्रतीत होता है कि संभवतः वैदिक सभ्यता का प्रचार मध्य देश के दक्षिणाञ्चल की ओर नहीं हो पाया था । यह गंगा यमुना के आस-पास ही सीमित था, अथवा जैसा कि महाभाष्यकार पतञ्जलि (ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी) का कथन है कि ऋग्वेद की इक्कीस शाखायें विद्यमान हैं । किन्तु आजकल ऋग्वेद की एक मात्र वाष्कल शाखा उपलब्ध होती है यह सम्भव है कि ऋग्वेद की विलुप्त बीस शाखाओं में से सम्भवतः कहीं चित्रकूट का उल्लेख किया गया हो, किन्तु आज इन ऋग्वैदिक शाखाओं के विलुप्त हो जाने के कारण चित्रकूट की प्राचीनता को वैदिक काल से जोड़ पाना संभव नहीं है ।

चित्रकूट बहुत पहले से ही एक परम पावन तपोवन माना जाता रहा है । श्रीराम के आगमन के पूर्व ही चित्रकूट में रमणीयता, पवित्रता और आध्यात्मिकता विद्यमान थी । यह ऋषियों की साधना और तपस्या का परम पवित्र स्थल पूर्व से ही रहा है । यहाँ ऋषिगण बहुत पूर्व से निवास करते रहे हैं और यहाँ के रमणीय वनाञ्चल में सिद्धि लाभ करते रहे हैं । इस प्रकार यह प्राचीनकाल से ही ऋषियों का क्षेत्र और तपोवन रहा है । यहाँ की प्रकृति, सात्विक वातावरण और प्रदूषण मुक्त-पवित्र पर्यावरण, परम रमणीय थे । जिससे ऋषियों ने इसे अपनी साधना स्थली बनाया था । यही कारण है कि जब श्रीराम अयोध्या से बनवास के लिए सीता और लक्ष्मण के साथ प्रयाग आते हैं तो महामुनि भरद्वाज श्रीराम से कहते है कि मैं आपके अकारण निर्वासन के विषय में जानता हूँ आप चिन्ता न करें यहाँ पर गंगा और यमुना दो नदियों के पवित्र संगम में एकान्त स्थान है जो अत्यन्त रमणीय और पुण्यप्रदाता है आप यहाँ पर सुखपूर्वक रह सकते हैं ।[1] किन्तु श्रीराम मुनिवर भरद्वाज के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करते । श्रीराम मुनिवर भरद्वाज से निवेदन करते हैं कि इस स्थान से पौर-जानपद निवासी सन्निकट हैं, इसलिए यहाँ के निवासी मुझे और वैदेही जानकी को देखने के लिए निरन्तर आते रहेंगे, इस कारण मुझे यहाँ निवास उचित प्रतीत नहीं होता । हे भगवन् ! कहीं एकान्त में उत्तम आश्रम स्थान बतलाने की कृपा करिये, जहाँ पर जनकात्मजा वैदेही सुखपूर्वक निवास कर सकें ।[2]

श्रीराम के उपर्युक्त निवेदन सुनने के पश्चात् मुनिवर भरद्वाज उन्हें जिस एकान्त उत्तम आश्रम स्थान में रहने का परामर्श देते हैं, वह यही महर्षि-सेवित, पुण्यवान् और

---

1. वा०रा० 2.54.22

2. वही. 2.54.24-26

शुभ–दर्शन चित्रकूट पर्वताञ्चल है । उस समय प्रयाग से चित्रकूट की दूरी दस कोस थी, जो सम्प्रति 75 किमी. के लगभग है । ऋषिवर भरद्वाज ने जिस गिरिवर को रघुवर के निवास हेतु उपयुक्त समझा है, वह अनेक दृष्टियों से परम रम्य है ।

महर्षि भरद्वाज के अनुसार जिस चित्रकूट गिरि में श्रीराम निवास करेंगे, वह प्रयाग से दश कोस की दूरी पर है और वह न केवल महर्षियों से सुसेवित है प्रत्युत शुभ–दर्शन भी है । यह पर्वत गन्धमादन पर्वत के समान प्रखर तेज वाला वन्य जीवों से संकुल वानर, ऋक्षगणों से निषेवित और गोलांगल से अनुचरित है । भरद्वाज के अनुसार गिरिवर चित्रकूट की महिमा अपूर्व है । चित्रकूट के शिखर इतने पावन हैं और इतने मन भावन हैं कि जैसे ही उनका दर्शन किया जाता है, वैसे ही व्यक्ति कल्याण परम्पराओं का वरण करता है और पाप रहित हो जाता है । उस गिरिवर में निवास करते हुए अनेक ऋषिगण सैकड़ों शरद् ऋतुओं तक तपस्या करते हुए स्वर्गारोहण कर गये हैं ।[1]

दशक्रोश रतस्तात गिरिर्यस्मिन् निवत्स्यसि ।
महर्षि–सेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः ।।
गोलांगूलानुचरितो वानरर्क्षनिषेवितः ।
चित्रकूट इतिख्यातो गन्धमादनसंनिभः ।।
यावता चित्रकूटस्य नरः श्रृंगाण्यवेक्षते ।
कल्याणानि समाधते न पापे कुरुते मनः ।।

---

1. वा0रा0 2.54.28–30

चित्रकूट की भौगोलिक स्थिति :-

चित्रकूट शताब्दियों से भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है । विन्ध्य पर्वत श्रृंखला का यह कूट (पर्वत समूह) भौगोलिक दृष्टि से भारतीय प्रायद्वीप में ऐसे बिन्दु पर अवस्थित है जो उत्तर भारत से दक्षिण भारत की यात्रा का प्रवेश द्वार है । वाल्मीकि रामायण के मन्थन-विमन्थन के पश्चात् सांस्कृतिक केन्द्र गिरिवर चित्रकूट की जो भौगोलिक स्थिति उभरती प्रतीत होती है वह इस प्रकार है । प्रयाग में गंगा-यमुना के पावन संगम के कुछ उत्तराभिमुख भरद्वाज ऋषि का आश्रम है और ऋषि के कथनानुसार श्रीराम के निवास योग्य चित्रकूट वहाँ से दक्षिण पश्चिम दश कोस की दूरी पर स्थित है । चित्रकूट वनाञ्चल महर्षि सेवित होने के कारण सर्वथा शांत, जनसंख्या के घनत्व से रहित निर्जन वन-कान्तार है । चित्रकूट एक गिरि प्रदेश है जहाँ जनसंकुलता का अभाव है इसलिए यहाँ का पर्यावरण और परिदृश्य परिपूत और प्रदूषणमुक्त है ।[1]

ऋषिवर भरद्वाज जब श्रीराम को चित्रकूट का मार्ग निर्देश करते है तो इस वर्णन से चित्रकूट की भौगोलिक सीमायें उभरती प्रतीत होती है :-

गंगायमुनयोः सन्धिमासाद्य मनुजर्षभौ ।
कालिन्दीमनुगच्छेतां नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् ।।
तत्रयूयं प्लवंकृत्वा तरतांशुमतीं नदीम् ।
ततो न्यग्रोधमासाद्य महान्तं हरितच्छदम् ।
परीतं बहुभिर्वृक्षैः श्यामं सिद्धोप सेवितम् ।।
तस्मिन सीतांजलिं कृत्वा प्रयुंजीताशिषां क्रियाम् ।

---

1. वा०रा० 2.54.28-29

श्रीराम और लक्ष्मण गंगा–यमुना के संगम से पश्चिमाभिमुखी कालिन्दी नदी को पार करते हैं । इसके पश्चात् उन्हें एक श्यामवट मिलता है, जो हरित पल्लवों से सम्परीत नाना–तरुवरों से आवृत और सिद्धजनों से उपसेवित हैं । यह वटवृक्ष अपनी यात्रा के शुभकामना हेतु प्रार्थनीय है । सीता द्वारा श्यामवट का अर्चन और वन्दन उनके प्रकृति प्रेम की अभिव्यक्ति करता है, फिर वटवृक्ष भारतीय संस्कृति में अचल विश्वास का प्रतीक है । आज भी वटवृक्ष पूजनीय बना हुआ है । नारियाँ अपने सौभाग्य–देवता की हित–कामना से वटसावित्रीव्रत का विधिवत् पालन करते हुए इस वृक्ष का अर्चन–वन्दन और स्तवन करती है ।[1] यमुनातटवर्ती श्यामवट से आगे एक कोस की दूरी पर सघन नीलवन मिलता है जिसमें सल्लकी, बदरी और बाँसों के घने–घने पेड़ है । रामायण के वर्णनानुसार जो इसका परिदृश्य प्रतीत होता है वह यमुनातटवर्ती कछार की भाँति प्रतीयमान है । यमुनातट से लगे हुए इस दक्षिण–पश्चिमाभिमुखी नीलवन से आगे चित्रकूट का मार्ग जाता है । रामायण के अभिलेख से और ऋषिवर भरद्वाज के कथानानुसार चित्रकूट जाने के लिए यह मार्ग प्राचीनकाल में बहुत प्रचलित था । ऋषिवर भरद्वाज इस मार्ग से अनेक बाद चित्रकूट आये और गये हैं । यह मार्ग उनकी दृष्टि में मृदु, रम्य और दावाग्नि के भय से विवर्जित रहा है ।[1]

ऋषिवर भरद्वाज के उक्त बतलाये हुए मार्ग से श्रीराम और लक्ष्मण सीता के साथ छोटी नौका के द्वारा यमुना पार करते हैं । यमुना पार, दूसरे तट में पहुँचकर सीता कालिन्दी का पूजन कर उसे वनवास व्रत की निर्विघ्न समाप्ति हेतु प्रार्थना करती है, और

---

1. वा0रा0 2.55.6, 7

2. वही. 2.55.8–9

वटवृक्ष के नीचे रात्रि व्यतीत कर वे ऋषि निर्दिशित मार्ग से चित्रकूट की ओर अग्रसर होते हैं ।[1]

चित्रकूट की ओर जाने वाला यह मार्ग अत्यन्त रमणीय सघन छाया वृक्षों से सुशोभित और शान्त अनुकूल पवन वाला है । चित्रकूट जाते हुए श्रीराम को चारो ओर पर्वत, पल्लवित और पुष्पित होने के लिए कारण प्रकाशित से दिखाई पड़ते हैं । शिशिर ऋतु के बीत जाने पर पर्वतों में लगे हुए किंशुक वृक्ष अपने पुष्पों से अग्नि शिखा की भाँति प्रतीत होते हैं । मार्ग वहीं अच्छा होता है जो सघ–छाया वृक्षों से अलंकृत हो । इस दृष्टि से इस मार्ग में नानाप्रकार के तरुवर पथिकों के भ्रम को दूर कर रहे हैं । एक ओर फल और पुष्पों से अवनव शाखाओं वाले भल्लातक और बिल्व के तरु सुशोभित हो रहे हैं तो दूसरी ओर लम्बे–लम्बे, समृद्ध मधुवृक्ष की श्रेणियाँ सुसज्जित दिखाई देती है । यह परिदृश्य जीवन धारण करने के लिए राम को पर्याप्त प्रतीत होता है ।[2]

यद्यपि रामायण में चित्रकूट पर्वताञ्चल भरद्वाज ऋषि के आश्रम से दस कोस की दूरी पर स्थित बतलाया गया है जो वर्तमान समय में प्रयाग से लगभग 75 किमी. की दूरी पर स्थित कामदगिरि की दूरी से साम्य नहीं रखता, किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता, कि वर्तमान चित्रकूटगिरि के प्रयाग से दश कोस की दूरी पर स्थित न होने के कारण यह वही चित्रकूट नहीं है और प्रयाग से दश कोस की दूरी पर स्थित रामायण में वर्णित चित्रकूट कहीं विलुप्त हो गया है । चित्रकूट के साथ रामायण में जो गिरि शब्द का प्रयोग किया गया है उससे यह ध्वनित होता है कि पर्वताञ्चल किसी छोटे स्थान के लिए सीमांकित नहीं किया जा सकता, अतः इस गिरिमाला का विस्तार सम्प्रति वर्तमान शंकरगढ़ पहाड़ियों से लेकर चित्रकूट पर्वताञ्चल तक विद्यमान है । प्रयाग से यह मार्ग दक्षिण पश्चिमाभिमुख है और राम ने संभवतः लक्ष्मण और सीता जी के साथ लगभग दो दिनों में

---

1. वा0रा0 2.55.21

2. वही0 2.56.7

में पूरी कर ली होगी ।[1] इसके बाद उन्होंने मातांगयूथों से अनुचरित, पक्षिसंघों से अनुनिनादित प्रबृद्ध–शिखर वाले चित्रकूट गिरि को देखा होगा ।

किन्तु प्राच्य विद्या के कतिपय अध्येतागण चित्रकूट गिरि के निःसंदिग्ध और निश्चित अवस्थिति के सम्बन्ध में एक मत नहीं हैं । तदनुसार हीरालाल शुक्त के अनुसार चित्रकूट बस्तर जिले में है, जहाँ की भी प्रकृति रमणीय और अनेक निर्झरों से युक्त है । उन्होंने इस सन्दर्भ में कालिका पुराण और शिवपुराण के कतिपय संदिग्ध वर्णनों का सहारा लेते हुए धरातलीय संरचना के अनुसार चित्रकूट का प्रत्यभिज्ञान मध्य प्रदेश के आदिवासी क्षेत्र बस्तर जनपद में स्थित स्थल विशेष से किया है ।[2] किन्तु उनकी यह अवधारणा रामायण के वर्णनों के अनुसार और भौगोलिक साक्ष्य के तर्कों के निकषोपल पर कसने पर सत्य प्रतीत नहीं होती ।

इसी प्रकार भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के प्रकाशित प्रतिवेदन के अनुसार पाश्चात्य विद्वान श्री बेंगलर महोदय ने चित्रकूट का प्रत्यभिज्ञान सरगुजा क्षेत्र में स्थित रामगढ़ पहाड़ी से किया है ।[3] तदनुसार इस मत के प्रतिपादक वेंगलर महोदय रामगढ़ और चित्रकूट को अभिन्न मानते हैं । किन्तु आश्चर्य है कि उन्होंने वाल्मीकि रामायण के चित्रकूट वर्णनों का अध्ययन नहीं किया है और लोक स्वीकृत तथा लोकप्रचलित ऐतिहासिक और भौगोलिक तथ्यों को नेपथ्यान्तर्गत कर दिया है । इसलिए उनका यह मत विद्वज्जन–बुद्धि–ग्राह्य नहीं प्रतीत होता और उस मत का खण्डन प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान कनिंघम् ने अपने शोधपत्र

---

1. देखिए, चीफ रुट्स इन दी वाल्मीकीज रामायण", डा0 वेचन दुबे का लेख भारतीय पत्रिका, नम्बर 1968
2. हीरालालशुक्ल : लंका की खोज, पृ0 104–105
3. आर्कालाजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग 13 पृष्ठ 42–54

में कर दिया है ।[1] यह ज्ञातव्य है कि कनिंघम महोदय ने बुन्देलखण्ड के बांदा और सतना जनपद के मध्य अवस्थित चित्रकूट को ही रामायण वर्णित चित्रकूट माना है ।

एक अन्य पाश्चात्य विद्वान् पारजिटर महोदय ने भी वेंगलर महोदय की स्थापना का तर्कपूर्ण खण्डन किया है । उनका कथन है कि चित्रकूट पर्वत, पर्वत श्रृंखलाओं का वह भाग है जिसका विस्तार केन नदी से प्रयाग के मध्य तक है । यहाँ ऋषियों और मुनियों के आश्रम थे, कालान्तर में चित्रकूट संज्ञा एक पर्वत विशेष के लिए प्रयुक्त होने लगी थी ।[2]

प्रसिद्ध विद्वान् डॉ0 काटजू ने रामायण के वर्णन के अनुसार चित्रकूट की भौगोलिक सामग्री की समीक्षा की है ।[3] वे कहते हैं कि रामायण के अनुसार भरद्वाज के आश्रम और गंगा–यमुना के संगम से चित्रकूट दश कोस अर्थात् बीस मील की दूरी में था, यह बड़ी गंभीर बात हैं । आजकल राजमार्ग से जाया जाए तो प्रयाग से चित्रकूट लगभग–70 मील से ऊपर है । चित्रकूट एक पर्वत है जो श्रीराम के निवास का अचल स्थान है यह पर्वत आजकल रामदगिरि के नाम से प्रसिद्ध है और प्रयाग की ओर कोई दूसरा पर्वत भी नहीं है जिसे चित्रकूट माना जा सकें । वर्तमान चित्रकूट के साथ वाल्मीकि के वर्णन की विसंगति दर्शाते हुए डॉ0 काटजू ने विषय का प्रतिपादन आगे बढ़ाते हुए लिखा है कि प्रयाग से चित्रकूट की बीस मील की दूरी वाल्मीकि ने एक नहीं दो–दो बार कहीं है । पहली बार भरद्वाज ने इसे राम से बतलाया है और दूसरी बार भरत से बतलाया है । यहाँ यह ज्ञातव्य है कि

---

1. आर्कालाजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग 21 पृष्ठ 10–12
2. देखिए ज्योग्रफी ऑफ रामाज़ एफ्जाइल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल 1894 पृ0 230
3. राम वनवास का भूगोल : अयोध्या से पञ्चवटी तक, डा0 काटजू का लेख, नागरी प्रचारिणी पत्रिका संस्करण 19, 1945

भरद्वाज ने जहाँ एक ओर प्रयाग से चित्रकूट की दूरी कोस से बतलायी थी वहीं दूसरी ओर भरत को इसकी दूरी योजन से बतलाते हुए ढाई योजन की दूरी कहीं है :[1]

भरतार्धतृतीयेषु योजनेष्वजने वने ।
चित्रकूटगिरिस्तत्र रम्य – निर्झर काननः ।।

ऐसी परिस्थिति में इस समस्या का सीधा सा हल यह प्रतीत होता है कि उन दिनों गंगा श्रृंगवेरपुर के पास से धनुषाकार पश्चिम को घूमी हुई थी, और राजापुर के आस–पास कहीं यमुना में मिलती थी । क्योंकि वहीं से चित्रकूट की दूरी 22 मील है औ यहाँ से श्रृंगवेरपुर की दूरी भी लगभग 22–23 मील है । यह बात लक्ष्य करने की है कि वाल्मीकि ने गंगा को यमुना से मिलने के लिए पश्चिम घुमी हुई अथवा यमुना को गंगा के वेग से पश्चिम घूम गई हुई लिखा हैं ।[2]

गंगा– यमुनयोः सन्धिमासाद्य मनुजर्षभौ ।
कालिन्दीमनु गच्छेतां नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् ।।

उपर्युक्त वर्णन से दोनों ही स्थितियाँ लगभग समान प्रतीत होती हैं जो रामायण कालीन मानचित्र के अनुसार राजापुर जनपद बाँदा में ही संभव है । यद्यपि आज भी संगम के निकट गंगा को पश्चिम वाहिनी कहा जाता है किन्तु यह मात्र लौकिक कथन प्रतीत होता है । अपने उपर्युक्त मत के समर्थन में तर्क देते हुए विद्वान् लेखक ने नदियों के मार्ग परिवर्तन के कतिपय उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं । नदियों का तथा उनके संगम का इस तरह स्थान बदलते रहना इतनी साधारण और आये दिन की घटना है, कि उसे

---

1. वा0रा0 2.92.10
2. वा0रा0 2.55.4

प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है । गंगा और सोन का संगम अजातशत्रु के समय ई0 पूर्व पंचम शताब्दी में पाटलिपुत्र के नीचे हुआ था, किन्तु आज वह वहाँ से बारह मील पश्चिम की ओर हट गया है । इसी प्रकार ईसा की पंचम शताब्दी में रावी मुलतान के दक्षिण में चिनाब में मिलती थी और व्यास सतलज से मिलने के बजाय रावी के नीचे आकर चिनाब में मिलती थी । किन्तु ईसा पूर्व पंचम और छठी शताब्दी में व्यास नदी आजकल की भाँति सतलज में ही मिला करती थी ।[1]

डॉ0 काटजू वाल्मीकि रामायण में वर्णित भरद्वाज आश्रम और चित्रकूट सन्दर्भों की गहराई समीक्षा करके तथा इतिहास और पुराणों के बहुत सारे ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करके, जिनमें भारत की नदियों ने कितनी ही बार अपने मार्ग में परिवर्तन किया है, वह स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं कि वर्तमान प्रयाग संगम और वाल्मीकि द्वारा वर्णित संगम स्थल में समानता संभव नहीं जान पड़ती है । अब हमारे समक्ष यह प्रश्न स्वाभाविक उठता है कि वस्तुतः वाल्मीकि रामायण वर्णित प्रयाग संगम और भरद्वाज आश्रम कहाँ पर स्थित रहा है । इस उपर्युक्त नव्य प्रश्न का तर्क पूर्वक समाधान करते हुए विद्वान समीक्षक ने कहा है कि इस प्रकार रामायण के अनुसार तत्कालीन प्रयाग, वन, भरद्वाज आश्रम एवं गंगा–यमुना संगम राजापुर के आस–पास स्थिर प्रतीत होते हैं । इधर प्राच्य–विद्या विदुषी लीलावती ने पाँच या छः मील का कोस मानकर दश कोस बराबर साठ मील वाली दूरी प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है ।[2] किन्तु इस तरह से मार्ग के मनमाने परिमाण निर्धारित करके जिस प्रकार वर्तमान प्रयाग संगम और वर्तमान चित्रकूट की दूरी का जो सामंजस्य बैठाया गया है वह निश्चित ही एक प्रकार की काल्पनिक तुकबन्दी ही प्रतीत होती है । परन्तु इस

---

1. डॉ0 काटजू : राम वनवास का भूगोल "अयोध्या से पंचवटी तक" नागरी प्रचारिणी पत्रिका संस्करण, 19, प्रकाशन वर्ष सन् 1945

2. भारत दैनिक, 30 सितम्बर, 1945

इस तरह के प्रयत्नों पर टिप्पणी करते हुए विद्वान् समीक्षक रायकृष्णदास का कथन है कि राम-वनवास के प्रथम दो पड़ावों की जहाँ तक वे रथ पर आये थे, भौमिक स्थिति असंदिग्ध है । अयोध्या से चलकर वे तमसा (पूर्वी टोंस नदी) के तट पर आकर रुक जाते हैं जो वहाँ से लगभग बारह मील की दूरी पर है । उनका यह कथन है कि राम के अयोध्या से निकलते-निकलते दिन काफी बीत चुका था और पुरवासियों की भीड़ उनके साथ थी अतः इसके आगे वे नहीं जा सकते थे । यहाँ से वे रातों-रात गुप्त रुप से आगे बढ़ते हैं । उन्हें यह भ्य था कि अयोध्या से आया हुआ जनसमूह जो उस समय सोया हुआ था उनके साथ न चल पड़े । फलस्वरूप अन्धेरे में उनका रथ निरन्तर आगे बढ़ता रहा, मार्ग में उन्होंने वेदश्रुति नदी (विसुई, टोंस से लगभग दश मील) गोमती (वेदश्रुति से पन्द्रह मील) तथा स्यन्दिका नदीं (सई नदी- गोमती से बीस मील) इत्यादि नदियाँ पार की थी । यह स्यन्दिका (वर्तमान वेला-प्रतापगढ़) कोशल जनपद की प्राकृतिक दक्षिण सीमा थी । यहाँ से श्रीराम अत्यन्त गद्‌गद् हृदय होकर कोशल जनपद से विदा लेते हैं और बिना रुके अपराह्न में श्रृंगवेरपुर वर्तमान सिंगरौर जनपद इलाहाबाद पहुँचते हैं जो बेला से लगभग पैंन्तीस मील दक्षिण है । आज भी प्राचीन सिंगरौर के ध्वंसावशेष दर्शनीय है । रथमार्ग यहीं तक रहा है ।[1]

श्रीराम श्रृंगवेरपुर की बस्ती में प्रवेश नहीं करते । वाल्मीकि ने "श्रृंगवेरपुरं प्रति" लिखकर यह स्पष्ट कर दिया है कि वे बस्ती के अन्दर नहीं गये थे ।[2] इसी प्रकार वे वनवासकाल की अवधि तक किसी भी नगरी (किष्किन्धापुरी और लंकापुरी) में प्रवेश नहीं करते । श्रृंगवेरपुर के निषादराज गुह का वे आतिथ्य स्वीकार करते हैं किन्तु आग्रह करने

---

1. रायकृष्णदास, अयोध्या से पंचवटी तक, नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग 54 अंक 1

2. वा0रा0 2.50.26

पर भी वे उसकी पुरी में प्रवेश नहीं करते । वृक्ष के नीचे भूमि शयन कर वे रात्रि वहीं व्यतीत कर देते हैं ।[1] दूसरे दिन वे सुमंत्र को अयोध्या लौटा देते हैं तथा अपने सखा गुह से विदा होकर दिन के उत्तरार्द्ध में गंगा पार करते हैं । यहाँ से प्रयाग वन आरम्भ होता था । वे आगे भरद्वाज आश्रम के लिए चल पड़ते हैं जो उसी वन में गंगा-यमुना संगम के सन्निकट स्थित था । भरद्वाज आश्रम से श्रीराम के वनवास के भूगोल का उलझा हुआ अंश यहीं से आरम्भ होता है ।

सम्प्रति, भरद्वाज आश्रम प्रयाग में आनन्द-भवन, स्वराज भवन के समक्ष स्थित माना जाता है । यह प्रमाणित है कि अकबर के समय तक गंगा इस आश्रम के नीचे बहती थी किन्तु अकबर ने अपना किला बनवाने के लिए बाँध बनवाकर गंगा की धारा को मीलों पूर्व हटा दिया था । यह भरद्वाज आश्रम श्रृंगवेरपुर से लगभग बाइस-तेइस मील की दूरी पर है । प्रथम दिवस में श्रीराम का छै-सात मील पर ठहरना फिर दूसरे दिन सोलह-सत्रह मील की यात्रा करके तृतीय प्रहर में श्रीराम का भरद्वाज आश्रम पहुँच जाना, उक्त आश्रम की दूरी के साथ ठीक-ठीक मेल खाता है । फिर भी इस स्थल को भरद्वाज आश्रम मानना निर्विवादा नहीं है ।[2]

अनेक रामकथा से सम्बद्ध संस्कृत काव्यों और नाटकों के अनुशीलन-परिशीलन से यह विदित होता है कि चित्रकूट अत्रि आश्रम और भारद्वाज आश्रम के मध्य स्थित था । लंका विजय करने के पश्चात् श्रीराम ने हनुमान जी को अयोध्या भेजते समय जिस मार्ग का

---

1. वा0रा0 2.50.49
2. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 54 अंक 1 पृष्ठ 13 से 25 रायकृष्णदास : अयोध्या से पंचवटी तक, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 54 अंक 1

निर्देश किया है, उसके अनुसार उन्होंने हनुमान् जी को माल्यवान् पर्वत दण्डकारण्य, सुतीक्ष्ण और सरभंग आश्रम तदनन्तर अत्रि आश्रम और फिर चित्रकूट, भरद्वाज आश्रम, यमुना, गंगा, तमसा, सरयू होते हुए अयोध्या पहुँचने का उक्त मार्ग बतलाया है । भटि्टकाव्य में लंका से अयोध्या वापसी का यह वृतान्त अत्यन्त रोचकता के साथ कवि द्वारा वर्णित है । तदनुसार श्रीराम ने हनुमान् से यह कहा है कि जब तुम अत्रि के सुन्दर तपोवन में पहुँचोगे तो उसे छोड़ने का तुम्हारा मन नहीं करेगा । अत्यन्त दुःख के साथ तुम अत्रि के आश्रम से विदा लोगे, तब तुम पवित्र गिरिवर चित्रकूट में बड़े कौतुक से ठहरोगे ।[1] इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि महर्षि अत्रि का आश्रम और तपोवम परम रमणीय था, जिसे सहसा छोड़ा नहीं जा सकता था और इसके समीपवर्ती गिरिवर चित्रकूट भी अपनी प्राकृतिक सुषमा के कारण कौतूहल की सृष्टि करता था । इसके बाद इसी भट्टिकाव्य के अनुसार चित्रकूट के पूर्व में समीपवर्ती महर्षि भरद्वाज का आश्रम और यमुना नदी का वर्णन उपलब्ध है ।[1]

कविवर जयदेव विरचित संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक "प्रसन्नराघवम्" के अनुसार लंका से विमान द्वारा अयोध्या वापसी का जो वर्णन प्राप्त होता है उसके अनुसार लंका से समुद्र, दण्डकारण्य, नर्मदा और यमुना का अतिक्रमण करते हुए अनेक मयूरों से अवदलित तरुओं की शोभा वाले चित्रकूट पर्वत आते हैं और चित्रकूट के बाद पुनः उन्हें यमुना मिलती है:[2]

उल्लंघ्य नीरधिमतीत्य च दण्डकानि,
नद्यौ च मेकलकलिन्दसुते व्यतीत्य ।
प्राप्ताः शिखण्डिशतखण्डितशाखि खण्ड-
मंते वयं शिखरिणं ननु चित्रकूटम् ।।

---

1. भट्टिकाव्य, 22/9-10
2. प्रसन्नराघवम् - 7/78

प्रसन्नराघवम् में प्राप्त उपर्युक्त वर्णन से यह प्रतीत होता है कि लंका से दण्डकारण्य आदि स्थलों से होते हुए पुष्पक विमान, नर्मदा पार कर ग्वालियर के पूर्वोत्तर भाग भिण्ड मुरेना के पास अवस्थित यमुना पार करता है । तदनन्तर वह चित्रकूट की ओर मुड़ता है और चित्रकूट के बाद पुनः यमुना के दर्शन होते हैं । इससे यह सिद्ध है कि यमुना तटवर्ती भरद्वाज आश्रम के दक्षिण-पश्चिम चित्रकूट अवस्थित रहा है । किन्तु अनर्घराघवम् के एक वर्णन के अनुसार पीछें-पीछे चलने वाले आत्मीयजनों को लौटाकर श्रीराम गुह द्वारा उपस्थापित नाव पर चढ़कर सीता और लक्ष्मण के साथ गंगा पार करते हैं और शबर-युवतियों से अनुगमन किये जाते हुए वे चित्रकूट पर्वत की ओर प्रस्थान करते हैं । इस वर्णन में यमुना और भरद्वाज आश्रम का वर्णन प्राप्त नहीं होता । शबर युवतियों के अनुगमन के वर्णन से यह प्रतीत होता है कि श्रीराम आदिवासी क्षेत्र होकर चित्रकूट गये थे । आज भी प्रयाग से चित्रकूट आते समय मानिकपुर के आस-पास आदिवासी क्षेत्र मिलता है जहाँ कोल-किरात और शबर जातियाँ निवास करती है । यह सम्प्रति "पाठाक्षेत्र" नाम से भी प्रसिद्ध है । ऐसा निश्चित प्रतीत होता है कि श्रीराम ने इस अञ्चल में निवास करने वाली शबर युवतियों को अपनी सुन्दरता से आकर्षित किया होगा और वे उनकी सुन्दरता के वशीभूत होकर कुछ दूर तक पीछे पीछे गई होंगी ।[1]

कविवर भवभूमि प्रणीत महावीर चरितम् में भी चित्रकूट का वर्णन उपलब्ध होता है । तदनुसार कहा गया है कि पापी विराध को मारने के लिए श्रीराम प्रयाग पार्श्ववर्ती मन्दाकिनी से पवित्र मेखला वाले चित्रकूट पर्वत जाते हैं और वहाँ से वे ऋषियों से सेवित तीर्थो वाली दण्डकाटवी पहुँचते हैं जहाँ पर श्रीराम उनके राक्षसों का वध करते हैं ।[2] इन वर्णनों से यह निश्चित हो जाता है कि चित्रकूट प्रयाग से दक्षिण-पश्चिम दिशा में अवस्थित रहा है । जो लोग मध्यप्रदेश के आदिवासी क्षेत्र जनपद बस्तर में स्थित किसी वनाञ्चल

---

1. कृच्छादन्वीयमानः क्षपमचलमथो चित्रकूटं प्रतस्थे । 5/2
2. महावीर चारेतम् पृ0 192

को चित्रकूट मानते हैं वह उनका भ्रम मात्र है और वे क्षेत्रवाद की संकीर्णता से घिरे प्रतीत होते हैं ।

इस प्रकार जनपद बाँदा गजेटियर वाल्यूम 21, 1929 जिसके सम्पादक श्री डी.एल. ड्राके ब्रोकमैन हैं, में कहा गया है कि प्रयाग के दक्षिण पश्चिम प्रमुख धार्मिक स्थल चित्रकूट 25 डिग्री 10 उन्तरी अक्षांश तथा 80 30 पूर्वी देशान्तर पर है । कामदगिरि के नाम से विख्यात तीर्थस्थान की परिधि लगभग तीन मील है जिसका आधा भाग ब्रिटिश राज्य के अन्तर्गत तथा शेष आधा भाग चौबे जागीर के अन्तर्गत रहा है । यहाँ पर दो विशाल मेले, चैत्र मास में रामनवमी तथा कार्तिक मास में दीपमालिका के समय आयोजित होते है ।[1]

उपर्युक्त अनेक वर्णनों और सन्दर्भों से यह स्पष्ट है कि प्रयाग संगम और रामायण वर्णित चित्रकूट की भौगोलिक दूरी की जटिल समस्या के प्रति अनेक विद्वानों ने अपने–अपने मत व्यन्क्त किये हैं किन्तु उनमें पाश्चात्य विद्वान् पारजिटर का मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है जिसके अनुसार वर्तमान प्रयाग संगम और वर्तमान चित्रकूट की भौगोलिक स्थिति यथावत् बनी रहती हैं ।[2] इसलिए बुन्देलखण्ड के बाँदा जनपद के और जनपद सतना के मध्य में अवस्थित गिरिवर ही वह चित्रकूट है जो श्रीराम से सम्बद्ध रहा है ।

परिदृश्य एवं पर्यावरण :–

पर्यावरण शब्द परि+आवरण इन दो शब्दों से मिलकर बना है अर्थात् चारो ओर विद्यमान आवरण । इस प्रकार पर्यावरण का अर्थ उन सभी प्राकृतिक दशाओं और वस्तुओं

---

1. बाँदा जनपद गजेटियर वाल्यूम 21, 1929, पृ0 226
2. पारजिटर : दि ज्याग्रैफी ऑफ रामाज् । इक्जाइल, रॉयल एसियाटिक सोसाइटी जर्नल, 1894 पृ0 239

से लिया जाता है जो हमारे चारों ओर व्याप्त है । ये वस्तुयें हैं --पृथ्वी, जल, अग्नि, (तेज), वायु, वनस्पति और जीव-जन्तु । इन सभी प्राकृतिक पदार्थो का प्रभाव मानव के भोजन, वस्त्र, मकान, पेयजल आदि पर पड़ता है । यही नहीं शास्त्रों और स्वास्थ्य-विज्ञान के अनुसार मानव के शरीर की रचना भी इन्हीं पॉच तत्वों, (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति) से मिलकर हुई है । इन पॉच प्राकृतिक तत्वां के बल पर ही प्राणी जीते हैं और अन्त में मृत शरीर भी इन्हीं पॉच तत्वों में विलीन हो जाता है । संतुलित पर्यावरण के कारण ही पृथ्वी पर जीवित ग्रह है । जिस पृथ्वी पर हम निवास करते हें, सम्पूर्ण सौर जगत् में उसे ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि पर्यावरण के सभी तत्वों की विद्यमानता के कारण यहॉ जीवन है अन्यथा सौर जगत् के अन्य ग्रहों पर जीवन के प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हुए है । पर्यावरण के ये सभी तत्व एक दूसरे पर प्रभाव डालते है और विकसित होते रहते हैं । सभी जीव-जन्तु भी इसी पर्यावरण के अंग है और मानव तो इस पर्यावरण की सर्वश्रेष्ठ रचना है । स्पष्ट है कि पर्यावरण के इन प्राकृतिक अंगों का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है । मानव-श्रीर की रचना पयावरण के इन पॉच तत्वों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति) के कारण हुई है और मानव जीवन की भोजन, वस्त्र, मकान, पेयजल और व्यवसाय आदि की सम्पूर्ण आवश्यकतओं की पूर्ति पर्यावरण की उपर्युक्त तत्वों द्वारा ही पूरी होती है । यह निर्विवाद है कि स्वस्थ जीवन के लिए शुद्ध वायु, जल और मिट्टी आवश्यक कारक-तत्व है ।

पर्यावरण के अन्तर्गत आने वाले सभी जड़ और चेतन एक-दूसरे के साथ अवगुंफित हैं और अपने अस्तित्व के लिए परस्पर निर्भर रहते हैं । सृष्टि के जीवन की एक-दूसरे पर निर्भरता का रहस्य प्राचीन काल में ही जान लिया गया था । इसलिए जीवोजीवस्य जीवनम्" के सिद्धान्त का प्रतिपादन प्राचीन काल में हुआ था । इससे यह विदित होता है कि सृष्टिजीवन में एक सन्तुलन है अर्थात सृष्टि के सभी जड़ और चेतन अन्योन्याश्रित हैं और इस प्रकार सृष्टि रचना निर्विघ्न चलती रहती है ।

सृष्टि प्रक्रिया के चलाने के लिए पर्यावरण संतुलन अपरिहार्य है यदि यह संतुलन प्राकृतिक अथवा मनुष्यकृत कारणों से भंग हो जाये, तो जीवन संचालन में विघ्न–बाधायें उपस्थित हो जाती हैं । प्राकृतिक कारणों से प्रलयंकारी बाढ़ का आना, भूकम्पों की पुनरावृत्तियाँ, झंझावात और उल्कापात आदि से संतुलन भंग हो जाता है इसी प्रकार मानवकृत प्रदूषण से पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है । जीवन के लिए देहधारियों को स्वच्छ जल, वायु अत्यावश्यक है । बढ़ती हुई जनसंख्या महानगरों में इमारतों के जंगल, कर्णभेदी कोलाहल करने वाली मशीने, दमघोंटू धुंआ उगलने वाले संयन्त्र, विषैली गैसों को उगलने वाले कल–कारखाने, पर्यावरण के सन्तुलन के लिए खतरा पैदा कर रहे हैं । इससे जीवन जगत् को खतरा पैदा हो गया है । इधर वैज्ञानिक उन्नति से आणविक शस्त्रास्त्रों की संरचना और उसके विभिन्न राष्ट्रों द्वारा किये जाने वाले परीक्षणों से पर्यावरण संतुलन बनाये रखना दुष्कर कार्य हो गया है । यही कारण है कि आजकल पर्यावरण की सुरक्षा का आन्दोलन विश्वस्तर पर चल रहा है । इस आन्दोलन का तात्पर्य यह है कि हम जीवन–धारण करने के लिए आवश्यक आधार–भूत तत्वों को प्रदूषण से बचाये और उनका विनाश रोंगे, और अपने पृथ्वी ग्रह के पर्यावरण को संतुलित और स्वस्थ रखें ।

प्रकृति प्रदन्त अनेक अवदान मानव जीवन के लिए वरदान है । यथा–पर्वत और जलवायु मानव जीवन को अत्यधिक प्रभावित करते हैं । पर्वत खनिज पदार्थो और वन सम्पदा के अक्षय भण्डार होते हैं और नदी जलों के स्रोत होते हैं । जो मानव जीवन की गति और विकास में अत्यधिक सहायता करते हैं । हमारे देश के उन्तरी भाग में स्थित

"देवतात्मा" नगाधिराज हिमालय उसका उदाहरण है । किन्तु खेद है कि आजकल पर्वतों को तोड़ा जा रहा है, उन्हें समाप्त किया जा रहा है उनका तथा वन सम्पदा का सम्पूर्ण रुप से दोहन किया जा रहा है जिससे पर्यावरण के असंतुलन का खतरा दिखाई देता है । इसी प्रकार पठारी भू-भाग नदियों द्वारा विनिर्मित मैदान गंगा, यमुना, सतलज, गोदावरी, काबेरी आदि विशाल नदियाँ हरे-भरे वृक्ष और वनस्पतियाँ खनिज-पदार्थ और जलवायु इत्यादि मानव जीवन के विकास के सारथी हैं । इनका संरक्षण सम्पूर्ण मानव सभ्यता का पावन कर्तव्य है ।

पर्यावरण को स्थूल रुप से हम दो भागों में विभाजित कर सकते -- प्राकृतिक अथवा भौतिक पर्यावरण इसके अन्तर्गत स्थल मण्डल, वायुमण्डल, जलमण्डल और जैव मण्डल के उन सभी तत्वों को सम्मिलित किया जाता है जिनका प्रांव मानव तथा उसकी क्रियाओं पर पड़ता है । प्राकृतिक तथा भौतिक पर्यावरण सचमुच मानव निर्मित नहीं ठै अपितु मानव के लिए प्रकृति की यह निःशुल्क भेंट है । दूसरा पर्यावरण का प्रकार सांस्कृतिक पर्यावरण है इसका आशय मानव निर्मित पर्यावरण से है । मानव अपनी शक्तियों और क्रियाओं से प्राकृतिक पर्यावरण के तत्वों को प्रभावित नियन्त्रित और परिवर्तित भी करता है उदाहरण लिए वह वनों को साफ करके खेती करता है और अन्न उगाता है, धरती पर नगर बसाता है, कारखाने लगाता है, सड़के बनाता है, नदियों में बाँध बनाकर सिंचाई करता है, विद्युत का उत्पादन करता है, इस प्रकार मानव अपनी शक्तियों और क्रियाओं से प्राकृतिक पर्यावरण का शोष्ण कर अथवा उसका रुप बदलकर उन्हें अपने अनुकूल बनाता है और एक नये पर्यावरण को जन्म देता है, जिसे मानव निर्मित सांस्कृतिक पर्यावरण कहा जाता है ।[1]

संस्कृत साहित्य के अवलोकन से यह विदित होता है कि हमारे पूर्वज अने पर्यावरण के प्रति बहुत संवेदनशील थे । वे अपने किन्हीं भी आचरणोंं से जल, वायु, मिट्‌टी और अग्नि जैसे जीवन-धारक तत्वों का प्रदूषण निन्दनीय मानते थे । यह सभी को विदित है कि किसी भी जलाशय में कूड़ा-कचड़ा फैंकना, मल-मूत्र का उत्सर्जन करना निन्दनीय और गर्हणीय पाद समझा जाता था ।[1]

खेद है कि आधुनिक समय में महानगरीय संस्कृति में निवास करने वाले लोग गन्दगी और मल-मूत्र नाली और प्रणालियों के द्वारा स्वच्छ जलधाराओं में मिला रहे हैं । इस से हमारे जीवन के लिए परमावश्यक न केवल जल ही प्रदूषित हो गया है बल्कि उसकी सड़ी दुर्गन्धि से सम्पूर्ण वायुमण्डल प्रदूषित हो रहा है ।

वैदिककाल में ऋषिगण अपने पर्यावरण की पवित्रता की सुरक्षा के संबंध में सचेत थे । ऋषि मधुच्छंदा वैश्वामित्र होता, यजमानों के लिए रत्न धारण करने वाले ऋत्विक और यज्ञ के देवता तथा जनता का पूरा हित करने वाले (पुरोहित) अग्नि की वन्दना करते है ।[2]

संस्कृत साहित्य के अध्ययन से विदित होता है कि हमारे पूर्वज वायुमण्डल का प्रदूषण रोकने के लिए भिन्न-भिनन प्रकार के उपाय अपनाते थे । भारतीय आर्यो की यज्ञ प्रक्रिया इसका महत्वपूर्ण अंग था । इसी प्रकार अग्नि की पूजा और सूर्य की पूजा

---

1. मनुस्मृति- पृ0 50

2. ऋग्वंद संहिता, 1.1.1

प्रतीकात्मक थी । प्रतीक इस बात का कि जीवन के लिए अग्नि और सूर्य उर्जा के मुख्य स्रोत हैं । ऋग्वेद में कहा गया है कि सूर्य स्थावर और जंकम जगत् की आत्मा है :—

सूर्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।[1]

अर्थात् सभी का प्राणतत्व है । उपर्युक्त वैदिक प्रतिपादन से प्रदूषण मुक्त सौर उर्जा का परिज्ञान होता है । प्राकृतिक पर्यावरण के विषय में हमारी यह संवेदनशीलता सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में भरी हुई दिखाई देती है । ऋग्वेद में अग्नि, वायु, सूर्य, उषा, जल देवता के रुप में वर्णित हैं ।[1] हम यह भली—भाँति समझते हैं कि देवी—देवता सम्भवतः हमें प्रत्यक्ष न होते हों किन्तु हमारे प्रकृति देवता तो हमारे हर सांस से जुड़े रहते हैं । यही कारण है कि सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता के समस्त मन्त्रों में इन्हीं प्रकृति—देवताओं का यशोगान किया गया है । इतना ही नहीं परवर्ती संस्कृत कवियों ने भी प्रकृति देवता के अञ्चल में बैठकर अपने काव्य—संसार की सृष्टि की है । इस प्रकार यह सिद्ध है कि पर्यावरण न केवल हमारे भौतिक जीवन का आधार है वरन् हमारे संस्कारों और संस्कृति का भी मूलाधार है । यहाँ पर संस्कृति से तात्पर्य हमारे विचारों के पर्यावरण से है । यदि हमारा पर्यावरण प्रदूषित है, विरोधी है तो हमारे तन की तरह हमारा मन और विचार भी प्रदूषित हो जायेंगे । इसलिए मानसिक प्रदूषण रोकने के लिए वेद में अनेक मन्त्र पाये जाते हैं । जैसे – एक सुन्दर सारथी अश्वों को सही मार्ग पर ले जाता है उसी तरह पवित्र विचार और संस्कारवान् मन मनुष्यों को सत्पथ में ले जाता है । वह मन शुभ संकल्पों वाला हो जाए ।[2] वैदिक ऋषियों ने मन को कल्यापकारी विचारों से संयुक्त करने

---

1. ऋग्वेद, 1.34
2. शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता, 34.6.6

के लिए अत्यधिक बल दिया है । अब यदि पर्यावरण के साथ हमारा व्यवहार अनुचित, लूट–पाट और आपा–धापी का है तो मन का शिव संकल्प नहीं रह सकता । आज प्रकृति के भण्डारों को लूटा जा रहा है और इस कार्य में केवल व्यक्ति ही नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व लगा हुआ है इस प्रकार अब प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है, और मानव समाज के शिवसंकल्प की जड़े दुर्बल हो रही हैं । एक प्रकार से यह मानसिक प्रदूषण हमारे सांस्कृतिक, शिवसंलग्प रूप पर्यावरण को विनष्ट कर रहा है । हम अपने इस शोध प्रबन्ध के माध्यम् से प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध पर्यावरण और संस्कृति के महत्व का मूल्यांकन करेंगे । और तदनुसार तीर्थवर चित्रकूट के परिदृश्य एवं पर्यावरण को प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे ।

महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में चित्रकूट के परिदृश्य और पर्यावरण का अत्यन्त सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है इसके परिदृश्यों की झॉंकी हमें प्रयाग स्थित गंगा–यमुना–संगम–पार्श्ववर्ती महर्षि भरद्वाज के आश्रम से ही मिलनी आरम्भ हो जाती है । राम के द्वारा अपने वनवासी जीवन के अनुरूप निवास स्थल के चयन हेतु सम्मति देने की प्रार्थना करने पर महर्षि भरद्वाज ने जो कुछ कहा है, उससे हमें चित्रकूट के परिदृश्य एवं पर्यावरण का महत्वपूर्ण परिचय प्राप्त होता है ।

महर्षि भरद्वाज ने जिस चित्रकूट पर्वत में श्रीराम के निवास हेतु उपयुक्त समझा है वह पर्यावरण और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । वह गिरिवर चित्रकूट भरद्वाज के आश्रम से दश कोस की दूरी पर स्थित है, जो पुण्यवान्, शुभदर्शन और महर्षियों से सेवित है । वह गन्धमादन पर्वत के समान शोभा वाला वानर और ऋक्षों से सुसेवित तथा

गोलांगलों से परिवीजित है । चित्रकूट के शिखरों को देखने वाले लोगों का कल्याण ही होता है । इसका तात्पर्य यह है कि वहाँ की पर्यावरण सम्पदा मानव मात्र का कल्याण करने वाली परम पवित्र है । चित्रकूट मधु–कन्दमूल और फलों से युक्त है जो वनवासी राम के निवास के लिए सर्वथा उपयुक्त है । किन्नर, उरग, नानानग आदि से युक्त मयूरों के निनाद और गजराजों से सुसेवित, विश्रुत और रमणीय चित्रकूट शैल का पर्यावरण प्रशंसनीय है चित्रकूटाञ्चल में कुञ्जरों और मृगों के झुण्ड घूम रहे हैं । किम्बहुना, नदियों के स्रोत और गिरिगुफाओं से निकलते हुए निर्झर वहाँ की शोभा बढ़ा रहे हैं । कोयल की मधुर ध्वनि कल्याणकारी सुख देने वाली और मनो विनोद करने वाली है वहाँ मतवाले मृग और बहुत से कुञ्जर निर्भय घूम रहे हैं उसकी रमणीयता अवर्णनीय है ।[1] इससे यह निष्कर्ष निकल रहा है कि प्राकृतिक पर्यावरण की दृष्टि से यह अञ्चल विविधताओं से भरा था । चित्रकूट के वन्य वनस्पतियों और पशु–पक्षियों का जो उपर्युक्त सम्मिलित विवेचन है उसे अधिक वैज्ञानिक क्रमबद्धता देने के लिए यह समीचीन होगा कि उनका वर्गीकृत चित्र सामने लाया जाये । ऐसा करने से हमें यह समझने में भी बड़ा सहायता होगी कि वाल्मीकि के रामायण युग के चित्रकूट की वनसम्पदा क्या थी और वर्तमानकाल तक क्या हो गई है । आइये सर्वप्रथम रामायणवर्णित चित्रकूट की वनस्पति शोभा को देखे ।

विविध वनस्पतियों वाला गिरि प्रदेश :–

वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से यह विदित होता है कि चित्रकूट का वानस्पतिक पर्यावरण बहुत ही हरा भरा और अनेकानेक वनस्पतियों से समृद्ध था । वाल्मीकि ने जहाँ

---

1. वा0रा0 2.54.38–43

जहाँ चित्रकूटाञ्चल की शोभा का वर्णन किया है, वहाँ–वहाँ वानस्पतिक सम्पदा उद्घाटित हुई है । वनस्पतियों से हरे भरे चित्रकूट की समृद्धि और परिदृश्य मनोमुग्धकारी है । अनेक द्रुमों से आवृत चित्रकूट के कानन में श्रीराम आनन्द से रहने की योजना बना रहे हैं नानाद्रुमों और लताओं से युक्त यह गिरिवर अत्यन्त मनोज्ञ हैं ।[1]

समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते ।
पुण्ये रंस्यामहे तात, चित्रकूटस्य कानने ।।
मनोज्ञोऽयं गिरिः सौम्य नानाद्रुमलता युतः ।
वहुमूलफलोरम्यः स्वाजीवः प्रतिभाति मे ।।

श्रीराम वैदेही सीता से वहाँ की वानस्पतिक शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि शिशिर ऋतु के बीत जाने पर और बसंत के शुभागमन पर प्रफुल्लित पलाश–पुष्पों से पुष्पित नग प्रदीप्त अग्निपुष्पों से युक्त की तरह प्रतीत होते हैं ।

चित्रकूट की वनस्थली में वनवासियों के जीवन निर्वाहार्थ प्रकृतिक भोज्य साधन भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । भल्लातक और बेल के वृक्ष अपने फल और फूलों के भार से झुके हुए हैं । निर्जन वन होने के कारण मनुष्य इनका उपयोग नहीं कर पाते । इन फलों से, यहाँ रहते हुए लोगों का जीवन–निर्वाह सरलता से हो सकता है । यहाँ चित्रकूट पर्वत में लम्बे–लम्बे मधूक के वृक्ष भी दर्शनीय हैं । जिनमें मधुकर गुञ्जन कर रहे हैं ।[2]

---

1. वा0रा0 2.56.11–14

2. वा0रा0 2.56.7

पश्य भल्लातकान् विल्ववान् नरैरनुपसेवितान् ।
फलपुष्पैरवनतान् नूनं शक्ष्याम जीवितुम् ।।

श्रीराम चित्रकूट की अपूर्व शोभा से अत्यधिक आह्लादित हैं । सीता जी को भी चित्रकूट की शोभा का अवलोकन कराते हैं । चित्रकूटांचल की वनस्थली की वनसम्पदा में वृक्षावलियाँ, नगर उद्यान की भाँति एक ही जाति की वृक्षों वाली नहीं हैं यही कारण है कि वाल्मीकि रामायण के चित्रकूट शोभावर्णन में एक ही जाति के वृक्षों की बार-बार पुनरावृत्ति दिखाई देती है ।

इस तरह की आवृत्ति का तात्पर्य यह है कि उस प्रजाति के वृक्ष चित्रकूट वनस्थली में जिधर दृष्टि डाले, उधर ही दिखाई दे जाते हैं । चित्रकूट की वनस्पतियों की शोभा अवलोकनीय है-- आम्र, जामुन, असन, लोध्र, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल, भव्य, तिनिश, बेल, तिन्दुक, बेपु, काश्मरी (मधुपर्णिका) अरिष्ट (नीम), वरण, मधूक (महुआ), तिलक, बेर, आंवला, कदम्ब, बेंत, धन्वन, बीजक (अनार) इत्यादि फूलों फलों और छाया वाले मनोरम वनस्पतियों से घिरा हुआ यह गिरिवर चित्रकूट अत्यधिक शोभा प्राप्त कर रहा है । इस पर्वत शिखर पर अत्यधिक वृक्षों की घनी छाया के कारण अनेक स्थान गृह सदृश प्रतीत होते हैं तथा अनेक स्थान चम्पा, मालती आदि फूलों के अधिकता के कारण उद्यान के भाँति लक्षित हो रहे हैं । चित्रकूट की वनसम्पदा का एक सघन चित्रण हमें निम्नोद्धृत पद्यों में भी प्रापत होता है :[1]

नीवरान् पनसान् सालान् वञ्जुलास्तिनिशास्तथा ।।
चिरबिल्वान् मधूकांश्च बिल्वानथ च तिन्दुकान् ।।
पुष्पितान् पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभिताम् ।

---

1. वा०रा० 3.11.74-76

ददर्श रामः शतशस्तत्र कान्तारपादपान् ।।
हस्तिहस्तैर्विमृदितान् वानरैरुपशोभितान् ।
मत्तैः शकुनि – संघैश्च शतशः प्रतिनादितान् ।।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णनों से विदित होता है कि चित्रकूटाञ्चल में मनुष्यों के प्रयास और उसके देख–रेख के बिना ही उगे हुए पेड़–पौधों से प्राकृतिक वनसम्पदा, गिरिकन्दराओं और वहाँ के भू–भागों की शोभा को बढ़ाने वाली रही है । प्राकृतिक वन–सम्पदा अथवा वन प्राचीनकाल से ही मनुष्य के चिरसंगी और साथी रहे हैं । आदिकाल के मानव के लिए वन ही उसका घर था । वल्कल वस्त्र के रुप में प्रयुक्त होते थे, पुष्प और पल्लव नारियों के शृंगार वर्धन के साधन थे । निसर्ग सुन्दरी गण्वदुहिता शकुन्तला तपोवन में रहकर वल्कल वस्त्र धारण करने पर भी सुन्दर प्रतीत होती थी ।[1]

लता, पादप मिथुन का साहचर्य उसे वरकन्या के विवाहोत्सव की तरह आनन्द प्रदान करता था । अपने सगे भाई–बहनों की तरह लता–तरुओं से प्रेम करने वाली शकुन्तला बिना तरु लताओं को जल दिये स्वयं जलपान नहीं करती थी और इनके स्वाभाविक स्नेह से प्रिय मण्डना होते हुए भी वह उनके पल्लवों को नहीं तोड़ती थी । उनके कुसुम–प्रसूति के समय वह पुत्रोत्सव की तरह आनन्द मनाया करती थी ।[2] इतना ही नहीं सम्पूर्ण प्रकृति उसकी विदाई की वेला में करुणा का अनुभव करती है और वनस्पति समुदाय उसे आभरणादि का उपहार प्रदान करते हैं ।

---

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 1.20
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 4.9

इस वर्णन से यह सुस्पष्ट है कि वनस्पति और मनुष्य का सम्बन्ध-साहचर्य जीवन के लिए अपरिहार्य है । अखण्ड शान्ति का केन्द्र होने के कारण ही वे वन ऋषियों की तपोभूमि रहे हैं । परमतत्व का साक्षात्कार ऋषियों ने वनों के मध्य ही प्राप्त किया है । इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि वानस्पतिक सम्पदा से भरपूर गिरिवर चित्रकूट की प्रशंसा भरद्वाज और वाल्मीकि जैसे ऋषिगण ने मुक्त कंठ से की हो, और राम सीता के साथ अपने जीवन के कतिपय वसंत बिताये हों ।

विविध वन्य पशु पक्षियों का संकुल :-

पर्यावरण को संतुलित बनाने तथा ठीक बनाये रखने की दृष्टि से वन्य जीव-जन्तु का अतिशय महत्व है । हानिकारक पदार्थो और प्रदूषित गैसों का शोषण कर ये वन्य पशु-पक्षी हमारे जीवन की रक्षा करते हैं । विभिन्न प्रकार की चिड़ियाँ छोटे-छोटे कीड़ों को खाकर प्रकृति के संतुलन को बनाये रखने का प्रयास करती हैं । इसी प्रकार गिद्ध, चील और वायस पक्षी सड़े मांसादि गन्दे पदार्थों को खाकर वातावरण को शुद्ध बनाने में सहायता करते हें । वन्य पशु पक्षी दूसरी ओर प्रकृति, वनाञ्चलऔर गिरिगह्वरों की शोभा बढ़ाते हैं । यदि बिना पशु-पक्षी के संसार की हम कल्पना करें तो हमें वह संसार सूना और कुरुप प्रतीत होगा । इसीलिए वन्य जीव-जन्तुओं की इन उपयोगिताओं के कारण ही भारतीय संस्कृति में इनकी रक्षा की बात कहीं गई है और अनेक पशु-पक्षियें की देवत्व भावना से पूजा और प्रतिष्ठा की गई है । हाथी, घोड़े और गाय का दर्शन इसीलिए शुभ माना जाता है । ये भी इस सृष्टि चक्र में सुखपूर्वकरहने के अधिकारी है । इसीलिए प्रणयासक्त क्रौञ्च का वध महर्षि वाल्मीकि के लिए असह्य है और देवदत्त के बाण से विद्ध हंस राजकुमार सिद्धार्थ के लिए परम कारुणिक है ।

वाल्मीकि रामायण के चित्रकूट अध्ययन से यह विदित होता है कि चित्रकूट का वनाञ्चल विविध प्रकार के वन्य पशुओं तथा पक्षियों से भरा-पूरा था । महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में बहुत से ऐसे पशुओं और पक्षियों का अस्तित्व चित्रकूट प्रदेश में बतलाया है जो सम्प्रति उस रूप में प्राप्त नहीं होते । चित्रकूटाञ्चल के पर्यावरण को बनाने वाले पशु-पक्षियों का विस्तृत विवरण हमें रामायण में मिलता है । तदनुसार चित्रकूट पर्वत वानर और रीछों से निषेवित है और वहीं पर गायें तथा लांगूल विचरण कर रहे हैं । अनेक गजों के समूह भी वहाँ भ्रमण कर रहे हैं । किन्नर और उरग भी वहाँ चल रहे है । मयूरों की ध्वनि से वह बोलता हुआ सा दिखाई देता है । रामायण वर्णन से यह प्रतीत होता है कि चित्रकूट में, वनप्रदेश में झुण्ड के झुण्ड हाथी और हरिण घूमा करते थे । चातक और मयूरों की ध्वनि चित्रकूट वनाञ्चल को और अधिक रमणीय बना रही है । इन दोनों के एक साथ बोलने पर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे ये खगकुल एक दूसरे की बात का उत्तर-प्रत्युत्तर दे रहे हों । टिट्टिभ और कोकिल यात्रियों का मनोरंजन कर रहे हैं ।[1] मातंगों का यूथ आता और जाता है । पक्षिसंघ अपने निनाद से पर्वतराज को प्रतिध्वनित कर रहा है --

मातंगयूथानुसृतं पक्षिसंघानुनादितम् ।
चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ।।[2]

---

1. वा0 रामायण 2.54.39-43

2. वा0रा0 2.56.10

वाल्मीकि रामायण में चित्रकूट के परिदृश्यों का वर्णन राम, सीता और लक्ष्मण के इस वन में प्रवेश करते समय पर्याप्त विस्तार से मिलता है, और राम से मिलने के लिए भरत की चित्रकूट-यात्रा के अवसर पर भी इस प्रकार के परिदृश्यों का वर्णन उपलब्ध होता है । भरत उस वन में ऋक्ष, चितकबरे मृग, रूरू नामक हरिण आदि को भ्रमण करते हुए देखते हैं ।[1] इस पर्वत में उन्हें किन्नर, अश्व और तीव्र गति से दौड़ने वाले मृगों के समूह भी दिखाई देते हैं । वन में चितकबरे मृग, मृगबंधुओं के साथ दौड़ रहे हैं ।[2]

चित्रकूट के परिदृश्यों की एक झांकी हम उस अवसर पर भी देखते हैं जब भरत अपने सैन्य बल और प्रमुख पौर-जानपदों की टुकड़ियों के साथ चित्रकूट में श्रीराम के पर्णकुटीर के समीप पहुँचते हैं । उस समय वाल्मीकि ने चित्रकूट के परिदृश्य का जैसा चित्रण किया है उससे चित्रकूट वनाञ्चल के वन्य जीव मृगादि त्रस्त दिखाई देते हैं । इधर भरत के सैन्यबल की धीर-गंभीर तुमुलध्वनि सुनाई पड़ती है जिससे चित्रकूट के उस महावन में गजों के झुण्ड, महिषों के झुण्ड और मृगों के झुण्ड त्रस्त और भयभीत होकर भाग रहे हैं ।[3]

इस प्रकार के उपर्युक्त वर्णन से हम सहज रुप से यह जान सकते हैं कि नगर और महानगर के घनीभूत जनजीवन का और मानवीय गतिविधियों का एक शांत वनस्थली के पर्यावरण पर कैसा दूषित प्रभाव पड़ता है । प्रकृति के उन मुक्त आंगन में विचरने वाले

---

1. वा0रा0 2.93.2
2. वही. 2.93.12, 19
3. वही. 2.96.8

पशु–पक्षी मनुष्य प्रजाति के प्राणियों की गतिविधियों से अपने आवास छोड़–छोड़कर भागने लगते है । यदि यह अनपेक्षित मानव गतिविधियाँ चित्रकूट जैसे शांत, एकान्त और प्राकृतिक वनसम्पदा वाले प्रदेश में स्थिरता प्राप्त कर लें अर्थात् दीर्घकाल तक इनकी आवृत्ति होती रहे तो फिर यह कहने की आवश्यकता नहीं हे कि चित्रकूट क्षेत्र का वन्य जन–जीवन विनष्ट हो जायेगा । वाल्मीकि रामयण में कितने ही ऐसे पशु–प्रजातियों का वर्णन उपलब्ध होता है कि जो बढ़ती हुई अनपेक्षित मानव गतिविधियों के द्वारा अब सदा–सदा के लिए विलुप्त हो गई हैं ।

श्रीराम से मिलने के लिए चित्रकूट आने वाले भरत के सैन्यबल के रथों की ध्वनि से उठने वाले भयंकर शब्द से वराह, भेड़िये, सिंह, महिष, सृमर (मृगविशेष), व्याघ्र, गोकर्ण (मृगविशेष), गवय (नीलगाय), और चितकबरे हरिण संत्रस्त हो गये हैं । इसी प्रकार सेना के भयंकर कोलाहल से चक्रवाक, हंस, जलकुक्कुट, वक, कारण्डव, नरकोकिल और क्रौञ्चपक्षी संज्ञा रहित होकर विभिन्न दिशाओं में उड़कर चले गये हैं ।[1]

वराह वृक सिंहाश्च महिषाः सृमरास्तथा ।
व्याघ्र–गोकर्ण–गवया वित्रेसुः प्रषतैः सह ।।
रथाह्व हंसानत्यूहाः प्लवाः कारण्डवाः परे ।
तथा पुंस्कोकिलाः क्रौञ्चा विसंज्ञाभेजिरे दिशः ।।

---

1. वा0 रामायण 2.103.42,43

इसी प्रकार पञ्चारसर तीर्थ से निकलती हुई गीत–पादित्र की ध्वनि से उत्पन्न कोलाहल सुनकर वन्य पशु–पक्षी इधर–उधर भिन्न–भिन्न दिशाओं में भाग रहे हैं ।[1] इस प्रकार वन्य प्राणी इस सृष्टि के पर्यावरण के महत्वपूर्ण अंग हैं । वन्यप्राणी और वनाञ्चल मानव जाति के शत्रु नहीं, मित्र और पोषक है । वन्य प्राणियों और वनों के नष्ट होने से पर्यावरण में असंतुलन पैदा होता है जिसे यदि न रोका गया तो क्रमशः सबका सर्वनाश निश्चित है ।

यह प्रसन्नता की बात है कि वन्य जीवन और वनों के संरक्षण के लिए आज मानव का ध्यान केन्द्रित हुआ है । इसीलिए हमारे देश भारत में वन्य जीवों के संरक्षणार्थ अनेक अभयारण्य और राष्ट्रीय प्राणी उद्यान बनाये गये और वन्य पशुओं के शिकार पर प्रतिबन्ध हेतु कानून बनाये गये हैं । इस दृष्टि से समाज में जागरुकता पेदा करने के लिए संसार भर में "विश्ववानिकी दिवस" और "विश्व पर्यावरण दिवस" मनाया जाता है । इनका प्रयोजन जनसाधारण के मन में लता तरुवरों पेड़–पौधों और वन्य जीव–जन्तुओं के प्रति प्रेम तथा अनुराग की भावना उत्पन्न करना है । आज हमें ऋषिवर भरद्वाज और महर्षि वाल्मीकि वर्णित पुराना चित्रकूट कोई लौटा दें तो हम उसके हृदय से आभारी होंगे । क्योकि आज के चित्रकूट का परिदृश्य बिल्कुल बदल गया है । वहां भी बड़ी–बड़ी बस्तियाँ बस गई है और निरन्तर जनसंख्या बढ़ रही है जिससे प्राकृतिक पर्यावरण बिगड़ रहा है और पदूषण ने वहाँ अपना आक्रमण प्रारम्भ कर दिया है ।

<u>चित्रकूट की धरती</u> :–

चित्रकूटाञ्चल की धरती की झाँकी प्रयाग के पास गंगा–यमुना पार करते ही

---

1. वा0रामायण 3.11.4,6

वाल्मीकि रामायण में मिलनी प्रारम्भ हो जाती है । वहाँ की भूमि विषम भी है और सम भी है । यह एक विरल जन प्रदेश था किन्तु प्राकृतिक रमणीयता के कारण आर्य जाति के लोगों का आवागमन इस ओर होने लगा था और वे लोग चित्रकूट जाने वाले रास्ते से सुपरिचित हो गये थे । हमारे इस अभिप्राय की पुष्टि ऋषिवर भरद्वाज के इस कथन से होती है कि वे इस मार्ग से अनेक बार चित्रकूट गये थे जो रमणीय, मृदु तथा दावाग्नि से विवर्जित था :-

स पन्थाश्चित्रकूटस्य गतस्य बहुशो मया ।
रम्यो मार्दवयुक्तश्च दावैश्चैव विवर्जितः ।।[1]

यह वर्णन इस बात का संकेत करता है कि चित्रकूट वनाञ्चल प्राकृतिक सम्पदा से भरपूर था और दावानल का कोई भय नहीं था । जहाँ एक ओर चित्रकूट वनस्थली नतोन्नत थी वहीं दूसरी ओर वह स्थान-स्थान पर सुखद और समतल भूमि से युक्त थी । एक वर्णन से यह भी प्रतीत होता है कि चित्रकूट में पंचयोजन पर्यन्त समतल भूमि थी, जो नीलम और वैदूर्य मणि के समान हरी-हरी घास से सुशोभित शाद्वला थी ।[2]

समभूमितले रम्ये द्रुमैर्वहुभिरावृते ।
पुण्ये रंस्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने ।।

चित्रकूट शैल में विभिन्न धातुओं का भण्डार भी विद्यमान रहा है । इन विभिनन धातुओं से यह गिरिवर चित्रकूट कहीं रजत के समान, कहीं लाल गेरु से युक्त , कहीं पीत वर्ण, कहीं मंजिष्ठ वर्ण, कहीं मणि की प्रभा वाला, कहीं स्फटिक मणि के सदृश, कहीं

---

1. वा०रा० 2.55.9

2. वा०रा० 2.56.11

केतकी के पुष्प की कांतिवाला प्रतीत होता था ।[1] इस वर्णन का यह तात्पर्य नहीं निकालना चाहिए कि वहाँ लोगों ने रजत और स्फटिक खोज लिये थे वस्तुतः चित्रकूट पर्वत विविधजाति के पाषाण-खण्डों का ही समूह था ।

चित्रकूट की धरती की मिट्टी का एक एक कण तपोधनों ऋषियों के तप से परिपूत है फिर भी यह धरती वनसम्पदा की भाँति खनिज सम्पदा से भी युक्त रही है । अनेक प्रकार के प्रस्तर खण्ड और धातुएं इसके भूगर्भ में प्राप्त होते हैं । रामायणकाल में यहाँ खेती की संभावनाओं का पता नहीं चलता है, किन्तु ऋषियों के लिए यह धरती कन्दमूल और अनेक फल देती रही है ।

वर्तमान चित्रकूट बुन्देलखण्ड पठार के अन्तर्गत अवस्थित हैं । जिसकी सागरतल से अवसत ऊँचाई 1000 फुट से 1500 फुट के मध्य प्रतीत होती है । सम्पूर्ण पठारी क्षेत्र में यत्र-तत्र विस्तीर्ण लघु गोलास्य पहाड़ियों के साथ उर्मिल मैदान भी मिलते है । उर्मिल मैदानों से क्रमशः दक्षिण की ओर बढ़ने पर ऊँचाई बढ़ती जाती है । कविवर वाल्मीकि ने इन उर्मिला मैदानों के लिए "समभूमितलेरम्ये" 2.56.11 आदि पदों का प्रयोग किया है और पर्वतीय क्षेत्रों के मध्य स्थित भूदृश्यावली को प्रदर्शित करने के लिए शैलप्रस्थ (पठार) 2.94.11 का प्रयोग किया है ।

पर्वतोत्पत्ति प्रकार एवं भूतल में सन्तुलन बनाये रखने के कारण ही पर्वतों को वाल्मीकि ने महीधर, भूधर, धरणीधर और धराधर इत्यादि की संज्ञा दी है । उन्होंने चित्रकूट के विषय में कहा है कि यह पृथ्वी को विदीर्ण कर ऊपर उठा है । जिससे भूसंतुलन सिद्धान्त की प्रतीति होती है । वाल्मीकि रामायण में अपरदन के कारण बड़े बडे शैल टुकड़ों का विघटन और शैलस्खलन के उल्लेख प्राप्त होते हैं । जिनसे शनैःशनैः समभूमि तल वाले मैदान निर्मित होते हैं । ऐसे मैदानों को बुन्देलखण्ड क्षेत्र में समभूमि के नाम से अभिहित किया जाता है । रामायण में पर्वतीय भूमि के स्वरूपों की स्पष्ट व्याख्या

नाम से अभिहित किया जाता है । रामायण में पर्वतीय भूमि के स्वरूपों की स्पष्ट व्याख्या करने के लिए कतिपय तकनीकि शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है यथा– दरी, द्रोणी, गह्वर, गिरिपाद, गिरिश्रृंग, गिरिनिर्झर, गिरितट, गुहा, कन्दरा, कूट, पर्वतश्रृंग, प्रस्थ, सानु, शिखर इत्यादि ।

यद्यपि पर्वतीय क्षेत्र कठिनता के कारण मानव अधिवास की दृष्टि से कम उपयोगी रहे हैं परन्तु अटूट प्राकृतिक सम्पदा के कारण वे मानव–जीवन हेतु वरदान स्वरूप है । एकान्त वास के लिए उपयुक्त और सुखद विश्रामस्थल है ।

चित्रकूट में जल के स्रोत :–

जल पर्यावरण का प्रमुख संघटक तत्व है । यह जीवन का प्रमुख साधन है, इसके बिना स्थावर और जंगम प्राणी अपना अस्तित्व नहीं रख सकते । जल ही जीवन है । कृषिफल जल के आधीन है ।[1] वाल्मीकि ने चित्रकूट के जिन जल स्रोतों का वर्णन किया है । वे केवल प्राकृतिक है । किसी कृत्रिम जालशय का उन्होंने वर्णन नहीं किया है । चित्रकूट के प्राकृतिक जीवन में जल प्रदूषण जैसे समस्या के कोई उल्लेख रामायण में प्रापत नहीं होते है ।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार प्रयाग के भरद्वाज आश्रम से चित्रकूट को जाने वाले मार्ग में आते ही सर्वप्रथम यमुना नदी का उल्लेख मिलता है ।[2] श्रीराम इत्यादि सभी लोग यमुना के पवित्र जल का स्पर्श कर ऋषियों से सुसेवित चित्रकूट का मार्ग पकड़ लेते है । चित्रकूट पर्वत सरस जल से भरा हुआ प्रचुर मूलफल वाला नानाद्रुम और लताओं से युक्त

---

1. पूर्वमेघ 16
2. वा0रा0 2.56.4

मनोरम शैल है ।[1] रामायण का ये वर्णन इस बात का प्रमाण है कि चित्रकूट में जल प्रयाप्त मात्रा में उपलब्ध था । चित्रकूट के जल के मुख्य स्रोत वहाँ के गिरि कन्दराओं से प्रवाहित न केवल अनेक झरने थे, प्रत्युत मन्दाकिनी नदी वहाँ का प्रमुख प्राकृतिक जलस्रोत थी । चित्रकूट की जलसम्पदा को देखकर श्रीराम अत्यन्त आनन्दित होते है और अयोध्या के विप्रवास का दुख भूल जाते हैं ।[2]

श्रीराम के द्वारा सीता से सरिद्वरा मन्दाकिनी की सुषुमा का वर्णन, चित्रकूट में जल की प्रचुरता का परिचायक है । नदियाँ प्रकृति से प्राप्त रस की आजस्र स्रोतस्विनी है जो जड़ जंगम सभी को रसवान् बना रही है । चित्रकूट में मन्दाकिनी नदी की शोभा अपूर्व है । एक तो वह हंसों और सारसों के जोड़ों से सुसेवित उसके विचित्र पुलिन, परम रमणीय है । दूसरे उभय तटों में लगे हुए हरे भरे तरूवरों की पुष्प शोभा से वह सभी को आकृषित कर रही है ।[3]

चित्रकूट में जल की प्रचुरता का दूसरा प्रमाण यह है कि वहाँ जटाधारी और वलकल वस्त्रधारी ऋषिगण मन्दाकिनी नदी के पावन जल में अवगाहन विगाहन कर रहे है ।[4] गजयूथों से आलोडित और विलोडित तथा सिंह, वानर, व्याघ्रादि से पिये जाने वाले जल वाली सुपुष्पित और पुष्प गुच्छों से अलंकृत इस मन्दाकिनी में स्नान कर ऐसा कौन

---

1. वा0रा0 2.56.13
2. वही0 2.56.35
3. वही0 2.95.3
4. वही 2.95.6

व्यक्ति है जो विगत-श्रम न हो जाता हो ।[1]

श्रीराम चित्रकूट के अक्षय प्राकृतिक जलस्रोत मन्दाकिनी और शुभ दर्शन चित्रकूट पर्वत से इतने प्रसन्न है कि वे अयोध्या पुरी के निवास के सुख को भूल जाते है ।[2] निरन्तर प्रवाहित होने वाले जल प्रपातों से यह गिरिवर चित्रकूट मदजल प्रवाहित करने वाले गजराज की भाँति सुशोभित हो रहा है ।[3]

इससे प्रतीत होता है कि चित्रकूटाञ्चल में जल संसाधनों की कमी नहीं थी ।

<u>चित्रकूट का वायुमण्डल</u> :-

वायुमण्डल पर्यावरण का दूसरा प्रमुख अंग है । यह प्राण तत्व है और इसके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती । जहाँ पर प्राण वायु का अभाव है वहाँ जीवन का भी अभाव है । जीवन के लिए शुद्ध प्राणवायु अति आवश्यक है । प्राचीन काल में वैदिक ऋषि, वायु देवता और मरूतों की विविध प्रकार से स्तुति करते हैं । जिससे पर्यावरण के इस महत्वपूर्ण संघटक की महत्ता प्रतीत होती है । विश्व के प्राणियों के दीर्घ आयु और जीवन के लिए वायु सदा प्रणमनीय है ।[4] इसी प्रकार प्रकृति की इस अद्भुत शक्ति वायु की प्रशंसा में ऋग्वेद में अनेक गीत प्राप्त होते है । इससे यह प्रतीत होता है कि हमारे ऋषिगण प्रदूषण मुक्त वायु के महत्व को भलीभाँति समझते थे । इसीलिए वे शुद्ध और मधुर वायुमण्डल में अपने आश्रमों का निर्माण किया करते थे ।

कवि कुलगुरू कालिदास ने वायु को शिव की आठवी मूर्ति माना है । वायु रूपी शिव की इस मूर्ति से ही प्राणी प्राण धारण करने में समर्थ हो पाते है । शिव जीवनधारक शक्ति देने वाला परम प्राण तत्व है ।[5] इसी प्रकार विष्णु पुराण और पद्म पुराण में जहाँ

---

1. वा0रा0 2.95.18
2. वही0 2.95.12
3. वही. 2.95.13
4. ऋग्वेद 1.37.15
5. वही 1.38.4

शिव की अष्टमूर्तियों का निरूपण किया गया है । उसमें प्रकृति और पर्यावरण के अन्य तत्वों के साथ वायु तत्व का विस्तार से महत्व वर्णित किया गया है । इससे विदित होता है कि प्राचीन ऋषि वायु को पर्यावरण का सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व मानते रहे है ।

आज वैज्ञानिक अध्ययनों से हम यह जान चुके हैं कि पृथ्वी केचारों आरे हजारों किलोमीटर की ऊचाई तक वायु का प्रसार बना हुआ है । इस वायु में अनेक प्रकार की गैसों का सम्मिश्रण होता है । पृथ्वी के चारों ओर फैली हुई गैस मिश्रित वायु के इस आवरण को आधुनिक पर्यावरण विज्ञानी वायु मंडल कहते हैं । वायु मण्डल की आक्सीजन मनुष्य के लिए प्राण धारण कराने वाला वायु तत्व है । इसी प्राण वायु की प्रशंसा में हमारे वैदिक ऋषियों और संस्कृत के सहृदय कवियों ने गीत गाये है । एक वैदिक ऋषि का कथन है कि हमारे देश में सुख देने वाली मधुर वायु प्रवाहित होती रहे– तन्नो वातो मयोभुवातु ;[1] -- प्रदूषण मुक्त वायु निरन्तर वहती रहे ।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार महर्षियों के आश्रम में प्रदूषण रहित मधुर पवन ही अतिथियों का सर्वप्रथम स्वागत करता था । जिस समय श्रीराम चित्रकूट पहुँचते है वहाँ अनेक पुष्पों की गन्ध से सुगन्धित गिरि कन्दराओं से निकलने वाली शीतल मन्द सुगन्ध वायु उनकी इन्दियां को तृप्त कर देती है । राम स्वयं ऐसी वायु का सेवन कर कह उठते है कि इस प्रकार की सुगन्धित वायु किस व्यक्ति के मन में हर्ष का संचार नहीं कर देंगी । चित्रकूट पर्वत के अंचल में सुन्दर पवन बह रहा है । उसके द्वारा हिलाये गये शिखरों वाले वृक्षों से वह पवन मन्दाकिनी नदी में पुष्पों और पल्लवों का विसृंजन कर रहा

---

1. ऋग्वेद, 1.89.4

है । यहाँ के सुन्दर पर्यावरण से ऐसा अनुभव होता है मानों यह चित्रकूट उल्लासपूर्ण नृत्य कर रहा है ।[1]

इसी प्रकार मुनिवर भरद्वाज के द्वारा भरत के सत्कार के अवसर पर शीतल मन्द और सुगन्धित वायु बहती हुई वाल्मीकि रामायण में वर्णित की गई है । रामायण के अनुसार भरद्वाज के आश्रम में मलय और दर्दूर नामक पर्वतों के संस्पर्श से शीतल और सुखद वायु राजकुमार भरत के तन पर छाये पसीने की बूँदों को दूर कर रही थी ।[2]

वायु का सेवन करने से दस हजार वर्षों तक जीवित रहने का महामुनि माण्डकर्णी का वृतान्त वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है ।[3] जिससे यही निष्कर्ष निकलता है कि दीर्घ जीवन के लिए प्रकृति के अन्य तत्वों की अपेक्षा शुद्ध वायु का सेवन सबसे अधिक महत्व रखता है ।

आज भारी औद्योगीकरण होने से वायुमण्डल में कल और कारखानों से निकलने वाले प्रदूषित तत्व प्रचुर मात्रा में प्रवेश कर रहे है । जिससे वायु मण्डल का मौलिक सन्तुलन बिगड़ रहा है और प्राणों को धारण करने वाली वायु प्रदूषित हो रही है । वायु में इस अवाच्छित सम्मिश्रण से प्रकृति प्रदत्त मानव का सुरक्षा कवच "ओजोनमण्डल" भी विकृत हो रहा है जिससे मानव के भविष्य में विलुप्त होने का ही खतरा बढ़ गया है । इसकी सुरक्षा के लिए हमे बनस्पतियों और वनों की रक्षा करने के लिए सब ओर से प्रयत्न

---

1. वा0रा0 2.95.8
2. वही0 2.91.24
3. वही0 3.11.17

करने आवश्यक हो गये है ।

आज सारा विश्व पृथ्वी लोक के पर्यावरण की सुरक्षा के लिए चिन्तित हो उठा है । प्रत्येक देश में प्रदूषण निवारण के लिए वैज्ञानिक उपाय लागू किये जा रहे है । यह तथ्य अब सर्व स्वीकृत हो गया है किपृथ्वी लोक के जीवन की सुरक्षा तभी की जा सकती है जब वन और वनस्पतियों को विनाश से बचाया जाये, उनका संवर्धन किया जाये, नदियों के जल में कोई प्रदूषण न किया जाये ।

हमारे देश की महान संस्कृति का चित्रकूट जैसे तीर्थों के सुरम्य पर्यावरण से गहरा सम्बन्ध रहा है । ऋग्वेद से लेकर कालिदास तक हमारे देश के सभी महान ऋषियों और कवियों ने चित्रकूट के सुरम्य पर्यावरण को प्रकृति का वरदान मानकर चित्रित किया है और वहाँ की प्रकृति के सुरम्य मानवीय संदेश विश्व की मानव जाति के लिए प्रदान किये है ।

चित्रकूट का आंचलिक जन जीवन :-

गंगा यमुना के संगम से लेकर चित्रकूट पर्यन्त राम की वन यात्रा के समय चित्रकूट के पर्यावरण का जैसावर्णन रामायण में मिलता है उससे चित्रकूट अंचल के जनजीवन के सम्बन्ध में बहुत सी बातें स्पष्ट हो जाती है । रामायण में प्रयाग से चित्रकूट के मध्य मानव गति विधियों की कोई विशेष चर्चा यद्यपि नहीं मिलती है तथापि ऋषिवर भरद्वाज प्रयाग से चित्रकूट तक के मार्ग का निर्वाध आवागमन के रूप में वर्णन करते हैं ।[1] इसके साथ ही यह भी नहीं भुलाया जा सकता कि जब श्रीराम संगम से कुछ दूर चलकर यमुना पार करते

---

1. वा0रा0 2.55.9

है । तो उन्हें धीवर जाति का कोई भी नाविक हाथ नहीं आता । यमुना पार करने के लिए उन्हें स्वयं ही सूखे बाँस और लकडियों का संग्रह करके नौका निर्माण करना पड़ता है ।[1] श्यामवट और नील वन के वनपथ से जाते हुए श्रीराम को चित्रकूट पर्वत तक ऋषि मुनियों के अतिरिक्त किसी जन सम्पर्क का उल्लेख रामायण में नहीं मिलता है । इससे हमारी इस मान्यता की पुष्टि होती है कि वाल्मीकि युग में प्रयाग से लेकर चित्रकूट तक फैले भू-प्रदेश में सघन जन नहीं रहते थे ।

प्रयाग से चित्रकूट तक जो कुछ विरल जन रहते थे, वे कौन थे । इस प्रश्न का उत्तर हमें रामायण में जो कुछ मिलता है, उससे यह प्रतीत होता है कि इस प्रदेश में भ्रमण शील साधु सन्त ऋषियों और मुनियों के ही आवास अधिक संख्या में थे ।

यह बात उल्लेखनीय है कि रामायण चित्रकूट अंचल में एक घुमन्तु प्रकार की किन्नर प्रजाती का वर्णन करती है ।[2] यदि हम रहस्य का आवरण हटाकर वाल्मिकि द्वारा प्रयुक्त किन्नर शब्द के अर्थ का गम्भीरता पूर्वक विचार करें तो यह निष्कर्ष लिया जा सकता है कि महाऋषि ने संभवतः अविकसित मानव की भाँति विचरण करने वाले आदि वासियों के लिए ही किन्नर शब्द का प्रयोग किया है । चित्रकूट अंचल के आज के आदिवासी जन ही वाल्मीकि के किन्नर प्रतीत होते है । आज भी चित्रकूट क्षेत्र में विन्ध्य और चित्रकूट अंचलों के बीच कोल और किरात आदि वन्य आदिवासी रहते है । वाल्मीकि

---

1. वा0रा0 2.55.14

2. वही. 2.93.11

रामायण किन्नर प्रजाती के लोगों का इस रूप में उल्लेख करती है :–

शैल प्रस्थेषु रम्येषु पश्येमान् कामहर्षणान् ।
किंनरान् द्वन्द्वशो भद्रे, रममाणान् मनस्विनः ।।[1]

रामायण के अनुसार चित्रकूट अंचल में पौर जानपद का कोई उल्लेख नहीं मिलता है । केवल भ्रमणशील साधु सन्तों के आश्रमों का ही प्राकृतिक जीवन वर्णित मिलता है । चित्रकूट अंचल के यह आश्रमवासी ऋषि और मुनिगण ही वे महान व्यक्ति थे, जो उत्तर भारत की आर्य संस्कृति को चित्रकूट पार करके दक्षिण भारत की ओर ले गये । प्रारम्भ में दक्षिण के जनजातियां के साथ इन आर्यजनों का मेल मिलाप एक कठिन कार्य था । राक्षस लोग इन ऋषियों के यज्ञों का विनाश कर देते थे और इन्हें मार कर खा जाते थे । ऋषियों और राक्षसों के बीच यह संघर्ष दो विरोधी संस्कृतियों का टकराव था । आर्य जाति के नेता राम ने अपने अभियानों से अनार्य संस्कृति पर विजय प्राप्त की और दक्षिण में आर्य संस्कृति का लंका तक प्रसार किया ।

प्रयाग से चित्रकूट तक फैले भू–प्रदेश में राम अनेक ऋषियों और मुनियों के सम्पर्क में आये । रामायण के उल्लेखों से पता चलता है कि उस युग में इस अंचल का जीवन सम्पूर्ण रूप से प्रकृति के साथ सहकार का जीवन था । यही कारण है कि आश्रमों में बसने वाले ऋषियों के लिए जीवन धारण करने में कन्दमूल फल का कभी कोई अभाव नहीं झेलना पड़ता था । भरद्वाज आश्रम में मनचाहे वन्य फल कन्दमूल और अन्य

---

1. वा0रा0 2.94.11

खाद्य पदार्थ सहज सुलभ हो गये थे । जिनसे महर्षि ने कौशल के राजकुमार भरत का अतिथि सत्कार किया था :-

नानाविधानन्नरसान् वन्यमूलफलाश्रयान् ।
तेभ्यो ददौ तप्ततपां वासं चैवाभ्यकल्पयत् ।।[1]

रामायण के अनुसार आश्रमों की उदार संस्कृति की एक झाँकी हमें वाल्मीकि आश्रम में मिलती है । वाल्मीकि आश्रम में राम के पहुँचने पर महर्षि अपने शिष्य मण्डल के साथ प्रिय अतिथियों का यथा विधि स्वागत करते है ।

इसी प्रकार अत्रि आश्रम में पहुँचने पर भी श्रीराम का भव्य स्वागत और सत्कार किया जाता है । अत्रि आश्रम के ऋषिगण अत्यन्त प्रसन्नता के साथ पुष्प कन्दमूल और फलों के द्वारा राम लक्ष्मण सीता का स्वागत करते है ।[2]

प्रकृति के अंचल में विद्यमान बहुत से अन्य आश्रमों का वर्णन भी वाल्मीकि रामायण करती है । प्रकृति के सुरम्य पर्यावरण में बने वे मुख्य आश्रम थे । सरभंग का आश्रम, सुतीक्षण का आश्रम और गोदाबरी तट पर बसा अगस्त्य का आश्रम । इन सभी आश्रमों की उदार प्रकृति तथा वहाँ रहने वाले ऋषि और मुनिजन उदारता पूर्वक राम का स्वागत करते है ।

---

1. वा0रा0 2.94.18
2. वही0 2.117.5.6

<u>चित्रकूट का सांस्कृतिक महत्व :-</u>

संस्कृति वह जीवन पद्धति है जिसका निर्माण मानव व्यक्ति तथा समूह के रूप में करता है । संस्कृति के दो स्वरूप है -- भौतिक और आध्यात्मिक । मानव जहाँ एक ओर बाह्य विश्व का संस्कार प्रकृति पर विजय प्राप्त करके करता रहा है वहीं दूसरी ओर अपनी आत्मा का संस्कार और परिष्कार करने में भी वो लगा रहा है । जब वह किसी बेडोल पत्थर को काटकर सुन्दर मूर्ति बनाता है तो यह बाह्य जीवन का संस्कार कर रहा होता है । परन्तु जब वह इस मूर्ति में मानव की सौन्दर्य भावनाओं को भर देता है तो वह मनुष्य जीवन का आध्यात्मिक संस्कार कर रहा होता है । मनुष्य की भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत कृषि पशु पालन, यन्त्र निर्माण और उद्योग आदि का विस्तार आता है परनतु आध्यात्मिक संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्य की आत्मा का संस्कार और परिष्कार ही प्रधानता रखता है ।

संस्कृति के इस आध्यात्मिक स्वरूप में धर्म,नीति, विधि-विधान, विधायें, कला-कोशल साहित्य मानक के समस्त सद्‌गुण एवं शिष्टाचार सन्निहित हैं । संस्कृति के भौतिक तथा आध्यात्मिक स्वरूप वस्तुतः एक ही अखण्ड वस्तु के रूप हैं । ये दोनों एक दूसरे पर निर्भर करते है । हमारे देश के वैदिक ऋषियों और वाल्मीकि जैसे महान कवियों ने मनुष्य संस्कृति के इन दोनों रूपों को समान महत्व दिया है । रामायण में वर्णित श्रीराम और सीता का जीवन तथा उसमें चित्रित चित्रकूट अंचल तथा दण्डकारणीय के आश्रमों का जीवन भारतीय संस्कृति का उज्जवलतम पक्ष प्रस्तुत करते हे । हमारे संस्कृति एक महान विरासत है । इसमें धर्म अध्यात्म ललित कलायें, ज्ञान विज्ञान, विधि-विधान, आचार-विचार सभी कुछ अपने श्रेष्ठ रूप में मिलते है ।

भारत के लम्बे इतिहास में किन्हीं स्थानों को उनकी भौगोलिक स्थिति तथा

सामाजिक आर्थिक कारणों से विशेष महत्व प्राप्त हुआ है तो कतिपय स्थल ऐसे भी रहे है जो धर्म और संस्कृति के महान केन्द्र के रूप में विख्यात रहे है । हमारा चित्रकूट भी देश के ऐसे ही महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्रों में से एक है । रामायण काल से लेकर आधुनिक युग तक यह चित्रकूट तीर्थ संस्कृत साहित्य में सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित रहा है ।

यह ठीक है कि वैदिक ग्रन्थों मं चित्रकूट का उल्लेख विशिष्ठ रूप से नहीं किया गया है । किन्तु परवर्ती काल में वाल्मीकि रामायण महाभारत नानापुराणों और राम कथा से सम्बद्ध संस्कृत साहित्य के अनेकानेक ग्रन्थों में चित्रकूट का वैभव वर्णन प्रचुरता से मिलता है । केवल इतना ही नहीं बाद की शताब्दियों में रचे गये रामकथा से सम्बन्धित आधुनिक भाषा के साहित्य ग्रन्थों में भी चित्रकूट का महत्व उसी रूप में अंकित किया गया है । इससे यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि हमारा चित्रकूट भारतीय संस्कृति का हृदय देश रहा है । भारतीय संस्कृति के हृदय देश चित्रकूट का महीम गान आदिकवि वाल्मीकि ने पूरे विस्तार के साथ किया है । उसके बाद कविकुल गुरू कालिदास, भवभूति, जयदेव और मुरारी आदि महान कवियों ने भी भारतीय संस्कृति के इस हृदय देश को अपने काव्यों में वहीं महत्वपूर्ण स्थान दिया है ।

चित्रकूट प्रकृति के सहकार की संस्कृति का केन्द्र रहा है । प्रयाग से लेकर चित्रकूट तक प्रकृति का सहकार और प्रेम अनोखा रहा है । मृग और विविध पक्षीकुलों और मुनि जनों के मध्य बैठे श्रीराम सर्वत्र चित्रकूट की शोभा से मोहित वर्णित किये गये है । रामायण प्रकृति के परम रमणीय अंक में गंगा और यमुना के संगम पर बसे भरद्वाज आश्रम का वर्णन करती है । मुनिवर भरद्वाज का आश्रम प्रकृति की सुषमा का अद्भुत केन्द्र है ।

इस आश्रम की प्रकृति उदारता पूर्वक राम सीता और लक्ष्मण का स्वागत करती हुई वर्णित की गई है । रामायण की दृष्टि से कहा जाये तो हमारा पावन तीर्थ चित्रकूट एक भौगोलिक स्थान ही नहीं संस्कृति का दिव्य दूत रहा है ।

रामायण के वर्णनों से पता चलता है कि संसकृति के हृदय देश चित्रकूट में रहकर राम ने विभिन्न प्रकार के वैदिकयज्ञों का सम्पादन किया तथा ऋषि मुनियों के आश्रम जीवन को सुरक्षा प्रदान की । यह हमारा पावन तीर्थ चित्रकूट ही है, जिसे दक्षिण का प्रवेश द्वार बनाकर राम ने आर्य संस्कृति का दक्षिण भारत की ओर प्रसार अभियान आरम्भ किया । वाल्मीकि रामायण का चित्रकूट अपने युग के भारत की संस्कृति के विभिन्न रूपों का परिचय प्रदान करता है । यहाँ से आगे चलने पर राम को आर्य संस्कृति के ऋषियें के अलावा वन्य वानर जाति की संस्कृति और दक्षिण की राक्षस जाति की संस्कृति का सम्पर्क मिलता है । इन सभी संस्कृतियों की अपनी अपनी जीवन पद्धति थी । और राम के अभियान से इन सभी संस्कृतियों ने मिलकर भारत की एक नयी मिली जुली विशाल संस्कृति को जन्म दिया ।

रामायण के अनुसार पावन तीर्थ चित्रकूट के अंचल में विकसित हुई आर्य संस्कृति की जो सबसे बड़ी विशेषतायें देखने को मिलती है वे है प्रकृति के साथ सहकार का जीवन, तपश्चर्या, सरलता, सेवाभाव तथा स्त्य परायणता । हम समझते है कि संस्कृति का उदात्य चरित्र चित्रकूट अंचल की सुरम्य पर्यावरण वाली जीवन पद्धति का ही एक विशिष्ट रूप था ।

चित्रकूट जैसे पावन तीर्थों की संस्कृति की प्रशंसा करने वाले केवल हमारे पूरातन ऋषि और कवि ही नहीं हुए है । इस संस्कृति का गौरव गान आधुनिक युग के अनेक महान पुरूषों न किया है । स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू

कहा करते थे कि हमारे देश की लम्बी लम्बी गगन चुम्बी पर्वत श्रेणियाँ, विशाल नदियाँ, वन कान्तार और खेत जो हमें जीवन निर्वाह के लिए भोजन आदि सामग्री प्रदान करते है, सभी हमारे लिए प्रिय है । और ये ही सब हमारी भारत माता का रूप है । इस सबसे बढ़कर भी यह बात है जिसे हम सबको अपने मन में बसा लेना है कि इस सुन्दर और विशाल भारत भूमि पर रहने वाले कोटि कोटि जन ही वास्तविक भारतमाता है ।[1] पंडित नेहरू के इस कथन को हम चित्रकूट के सन्दर्भ में इस प्रकार कहना चाहते हैं कि इस पावन तीर्थ प्रदेश में बहने वाली मन्दाकिनी जैसी सुरम्य नदियाँ, कलकल करते निर्झर, हरित वनराजियाँ, स्वच्छन्द घूमते और चहकते पशु–पक्षी, वनवासी, ऋषि और मुनिगण तथा भोले भाले कोल भील जन ही वास्तविक चित्रकूट है । जिन्होंने चित्रकूट की पर्यावर्णिक और सांस्कृतिक भव्यता का अमर इतिहास लिखा है । वाल्मीकि रामायण का चित्रकूट इस अमर इतिहास की ही एक अविस्मरणीय छवि प्रस्तुत करता है ।

---

1. डिस्कवरी ऑफ इन्डिया, पृ0 48

अ ध्या य – 6

पुराण युग का चित्रकूट

अ. भौगोलिक स्थिति

ब. परिदृश्य एवं पर्यावरण

स. आञ्चलिक जन जीवन

द. सांस्कृतिक महत्व

6

पुराण युग का चित्रकूट

पुराण साहित्य का महत्व :-

वैदिक साहित्य, रामायण और महाभारत के पश्चात् पुराणकाल प्रारम्भ होता है । यदि भारतीय साहित्य से प्रेरणा लेनी हो, तो श्रुतियों के बाद पुराणों से ली जाती है । पुराण साहित्य सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार है । हमारे मनीषियों का कहना है कि पुराण सर्व वेदमय, सम्पूर्ण साधन सम्पन्न योग क्रिया सिद्धियाँ तन्त्र मन्त्र और कल्याणकारी सिद्धान्तों से परिपूर्ण है । पुराणों की गरिमा और महिमा अत्यन्त विस्तृत है:-

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम् ।
उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपपादकम् ।।[1]

भारतीय विद्वानों की यह मान्यता है कि भारतीय संस्कृति के रक्षक के रूप में पुराणों का स्वाध्याय मनन और पुराणों के उपदेशानुसार आचरण सभी प्रकार के श्रेष्ठ फलों को देने वाला है । हमारे पुराणों में ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग के सम्पूर्ण सिद्धान्तों का संक्षेप में महत्वपूर्ण वर्णन किया गया है ।

प्राचीन काल में ये परम्परा रही है कि स्त्री, शूद्र, और पतित वर्ग के लोगों को वेदों का अध्ययन और श्रवण वर्जित था । इन वर्गो के लोगों के प्रति कल्याण भावना से प्रेरित होकर महर्षि वेदव्यास जैसे महान पुरूष ने अठारह पुराणों का प्रणयन किया है ।

---

1. पद्मपुराण, 1.35

इस दृष्टि से देखा जाये तो हमारे पुराण समाज के जन साधारण का कल्याण मार्ग दिखाने वाले ग्रन्थ रत्न है ।

हमारे पुराण ग्रन्थ भारत की प्राचीन संस्कृति की गौरव गाथा प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ है । हमारे यह ग्रन्थ रत्न प्राणियों को शाश्वत सुख और शान्ति का मार्ग प्रदान करने वाले है तथा मानव मन का सुसंस्कार और परिष्कार करने वाले है ।

महर्षि वेदव्यास वेद का विभाजन जिस प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्वेद और सामवेद इन चार वेदों के रूप में किया था उसी प्रकार उन्होंने प्राचीन पुराण विद्या का विभाजन करके अठारह पुराणों की रचना की थी । इसीलिए पुराणों को पञ्चम् वेद का प्रतिष्ठित स्थान प्रदान किया जाता है:-

इतिहास पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः ।[1]

पुराणपद निर्वचन :-

पुराण शब्द का निर्वचन अनेक प्रकार से किया जाता है । पाणिनी के अनुसार पुराभवं पुराणम् अर्थात् जो बहुत पहले हुआ हो, उसे पुराण कहा जाता है । किन्तु निरूक्तकार यास्क पुराण का निर्वचन एक बिल्कुल ही नये और महत्वपूर्ण रूप में करते हैं । यास्क के अनुसार "पुरा नवं भवति" अर्थात् जो प्राचीन होते हुए भी सदा नवीन रहता है, पुराण कहा जाता है ।

---

1. छान्दोग्य0 7.1.4

हमारे पुराण ग्रन्थों में भी पुराण की अलग अलग परिभाषायें की गई है । वायुपुराण के अनुसार जो पुरा काल में सास लेता है, वह पुराण कहा जाता है ।[1] पद्मपुराण के अनुसार वह ग्रन्थ जो प्राचीन परम्पराओंका गौरव गान करता है, पुराण कहलाता है ।[2] ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार जो प्राचीन युग का इतिहास बताता है, वह पुराण होता है । पुराण ग्रन्थो में दी गई इन सभी परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि पुराण साहित्य में प्राचीन और युगीन दोनों प्रकार की सामग्री का समावेश पाया जाता है ।

पुराण लक्षण :-

हमारे पुराण ग्रन्थों में पुराण का बहुत ही स्पष्ट लक्षण किया गया है । पुराणोक्त लक्षण के अनुसार पुराण की पाँच विशेषतायें होती है-- सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित । इन पाँच विशेषताओं के आधार पर ही पुराणंपञ्चलक्षणम् यह उक्ति प्रचलित हुई है :-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।[3]

पुराणों के उपर्युक्त पंचलक्षण के अनुसार प्रत्येक पुराण में सृष्टि का वर्णन, सृष्टि नाश का वर्णन, ऋषि वंशों का वर्णन, युग के प्रवर्तक मनुओं का दर्णन तथा राजन्य वंशों का वर्णन प्राप्त होता है । पुराणों के ये पाँच लक्षण ही सब कुछ नहीं है । पुराणों का

---

1. वायु0 1.203
2. पद्म0 5.2.53
3. विष्णु पुराण 3.6.24

विषय विस्तार इससे कहीं बहुत अधिक है । हमारे पुराण ग्रन्थों में विविध प्रकार के आख्यान, उपाख्यान, भूगोल, नदी, पर्वत, तीर्थ, अवतार, आयुर्वेद, धनुर्वेद, वास्तु विद्या तथा काव्य शास्त्र धर्म और दर्शन आदि आदि अनेक विषयों का प्रतिपालन किया गया है । विषय विविधता की दृष्टि से हमारे पुराण ग्रन्थ ज्ञान का भण्डार कहे जा सकते है ।

पुराण और संस्कृति :-

हमारे पुराण ग्रन्थ, हमारी संस्कृति के भाग है । इन महान ग्रन्थों में सम्पूर्ण पृथ्वी का वर्णन करते हुए जब जम्बुद्वीप और भारतवर्ष का वर्णन किया जाता है तो पुराणकार की अद्भुत राष्ट्रीय भावना देखने को मिलती है । इसलिए हम कह सकते है कि हमारे पुराण ग्रन्थ केवल पुरागाथाओं के भण्डार ही नहीं है वे हमारे राष्ट्र का निर्माण करने वाले और राष्ट्रीय संस्कारों का बीज बोने वाले ग्रन्थ रत्न है । इन पुराण ग्रन्थों से प्रेरणा पाकर ही कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ आदि कवियों ने इनसे विषय सामग्री लेकर महान काव्य ग्रन्थों की रचना की है । इस दृष्टि से हमारे पुराण ग्रन्थ वेदों की भाँति ही हमारे अमर साहित्य ग्रन्थ है ।

पुराण और तीर्थ :-

पुराणों के विषय में एक महत्वपूर्ण बात ध्यान देने की यह है कि हमारे सभी पुराणों का तीर्थों से गहरा सम्बन्ध है । व्यास के प्रायः सभी पुराणों का प्रवचन नैमिषारण्य आदि तीर्थों में ही सम्पन्न हुआ था । ऐसा होना बहुत स्वाभाविक था क्योंकि हमारे तीर्थ सदा से ही राष्ट्रीय संस्कृति का केन्द्र रहे है । इन तीर्थो पर प्राचीन काल से ही हमारे धार्मिक मेलों के आयोजन होते रहे है । इन मेलों में ही पुराणों का प्रवचन करने वाली मुनि सभायें और जन सभाये हुआ करती थी ।

<u>**पुराणों में तीर्थमाहात्म्य**</u> :-

राष्ट्रीय जीवन में तीर्थों का अत्यधिक महत्व पहचानते हुए हमारे प्रायः सभी पुराण ग्रन्थों में तीर्थों के माहात्म्य का विस्तार से वर्णन किया गया है ।

पुराण ग्रन्थों ने तीर्थों को आत्मा को पहचानने का भरसक प्रयत्न किया है । हमारे पुराणों के अनुसार नदी तटवर्ती उन पवित्र स्थानों को तीर्थ कहा गया है जहाँ पर देश के आस्थावान लोग विशेष पर्वो पर एकत्रित होते है तथा सुख और शान्ति प्राप्त करते है । तीर्थों के साथ देश की जनता का धार्मिक भाव और धार्मिक आस्था जुड़ी होने के कारण ही पुराणों ने तीर्थों को ऐसे पवित्रतम् स्थान के रूप में वर्णित किया है जो मनुष्यों को संकट से पार जाने का मार्ग दर्शन करते है ।[1]

पुराणों की भाँति हमारे धर्म सूत्रों ने भी तीर्थो का माहात्म्य वर्णन किया है । हमारे पुराणों और सूत्र ग्रन्थों के अनुसार भारत के उत्तरी भाग में अवस्थित हिमालय जो अपने दोनों हाथों से पूर्व और पश्चिम समुद्र का अवगाहन कर रहा है, सम्पूर्ण रूप से एक परम पवित्र तीर्थ है । इसी प्रकार हिमालय से लेकर सागर तक बहने वाली गंगा और यमुना हमारी पवित्र नदियाँ है । उनके तटवर्ती सभी स्थान परम पावन और तीर्थ है । पूर्व पुराण का कथन है कि हिमालय और गंगा सर्वत्र पवित्र है । नारदीय पुराण के अनुसार सागर को तीर्थों का राजा माना गया है । पद्मपुराण के अनुसार हमारे देश की सभी नदियाँ प्रकृति का अजस्र स्रोत होने के कारण पवित्र तीर्थों के समान है :-

सर्वं पुण्यं हिमवतो गंगा पुण्या च सर्वतः ।
समुद्रगाः समुद्राश्च सर्वे पुण्याः समन्ततः ।।[2]

---

1. बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ0 305

2. वायु0 77.1.17

परम धार्मिक ग्रन्थ तीर्थ प्रकाश और तीर्थकल्पद्रुम के अनुसार सभी वन, आश्रम, सभी उत्तम पर्वत और देश की सभी नदियाँ पवित्र है । पर्वतों में मलय, महेन्द्र, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र इत्यादि सप्त कुल पर्वत परम पवित्र है । इसलिए वे सभी तीर्थ है । यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि हमारा पावन तीर्थ चित्रकूट विन्ध्यपर्वत का ही एक दिव्य पर्वत खण्ड है । हमारे पुराण ग्रन्थों ने थोड़े बहुत अन्तर के साथ देश के श्रेष्ठ पर्वतों का एक स्वर से महिम गान किया है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार हिमवान्, हेमकूट, निषध नील, श्वेत, श्रृंगवान्, सुमेरु, माल्यवान् और गन्धमादन, यह सभी पर्वत शैलों में श्रेष्ठ और पूजनीय है :-

हिमवान् हेमकूटश्च निषधोनील एव च ।
श्वेतश्च श्रृंगवान् मेरूर्माल्यवान् गन्धमादनः ।।
नवैतान् शैलनृपतीन् नवम्याम् पूजयन्नरः ।[1]

कुछ प्रतिष्ठित पुराणों ने नदियों की दिव्यता का वर्णन करते हुए उन्हें विश्वति माता और पाप हारिणी क रूप में चित्रित किया है । हमारे कुछ पुराणों का कथन हे कि कुछ नदियाँ विशिष्ट कालखण्ड में विशेष रूप से पवित्र मानी जाती है । कार्तिक में गंगा यमुना का संगम परम पवित्र माना गया है । अगहन में देविकानदी का स्नान पुण्यदायी है । पौष और माघ में नर्वदा स्नान शुभ होता है । फाल्गुन में वरूणा, चैत्र में सरस्वती, बैसाख में चन्द्रभागा, ज्येष्ठ में कोशिकी, आषाढ़ में तापिका, श्रावण में सिन्धु, भाद्रमास में गंडकी, आश्विन में सरयू और नर्मदा तथा चन्द्र और राहु के एक राशि में होने पर गोदावरी को परम पवित्र वर्णित किया गया है ।[2]

---

1. विष्णु धर्मोत्तर0 3.174
2. दवीपुराण, तीर्थवर्णन

वैष्णव पुराण भागवत के पाँचवे स्कन्ध के उन्नीसवें और सौलहवें अध्यायों में अनेक नदियों और पवित्र पर्वतों का वर्णन किया गया है । भागवत के अनुसार मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, कोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि इत्यादि मुख्य पर्वतों का नामतः उल्लेख किया गया है । भागवत के अनुसार इन सभी पर्वतों से निकलने वाली नदियाँ परम पवित्र तीर्थ है ।[1]

भागवत पुराण के पर्वत वर्णन में यह बात विशेष रूप से ध्यान देने की है कि पर्वतों की पुराणोक्त सूचि में चित्रकूट और कामगिरि नाम का गौरवपूर्ण उल्लेख किया गया है । हम यह अच्छी तरह जानते है कि हमारे पावन तीर्थ चित्रकूट का ही दूसरा नाम कामगिरि अथवा कामदगिरि है । पौराणिक और साहित्यिक उल्लेखों के अनुसार हमारा यह कामदगिरि दर्शनार्थी लोगों के शारीरिक और मानसिक सन्तापों को दूर करता है तथा उनकी कामनाओं को पूरा करता है । अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण इस पर्वत तीर्थ को महर्षि वेदव्यास न स्वयं कामगिरि कहकर सम्मान प्रदान किया है ।

ब्रह्माण्ड पुराण की पर्वत सूची में भी चित्रकूट के नाम का उल्लेख मिलता है । पुराण ग्रन्थों के उल्लेखों में चित्रकूट का वर्णन इस बात को प्रमाणित करता है कि हमारा यह पावन तीर्थ पुराण काल में भी हमारी राष्ट्रीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है ।

हमारे पुराणकार वेदव्यास के तीर्थ वर्णन देशभक्ति और राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत मिलते है । हमारे दश की धरती का कोई पर्वत कोई नदी और नदी तटवर्ती कोई स्थान ऐसा नहीं है, जिसे हमारे पुराणों ने तीर्थ पद का सम्मान प्रदान ना किया हो । वामनपुराण

---

1. भागवत0 5.19.16

कुरूक्षेत्र के सात वनों का नामोल्लेख करता है । वे सात वन है -- काम्यक वन, अदितिवन, व्यासवन, फलकीवन, सूर्यवन, मधुवन और पुण्यशीतवन ।[1]

हमारे साहित्य में तीर्थो की महिमा का प्रतिपादन महाभारत काल से ही आरम्भ हो गया मिलता है । महाभारत के वन पर्व में लगभग 76 अध्याय ऐसे है जिन्हें 'तीर्थयात्रा पर्व' के नाम से जाना जाता है । इतने विस्तार के साथ तीर्थों का वर्णन यह सिद्ध श्करता है कि हमारे पूर्वज तीर्थों के पर्यटन को राष्ट्रीय पुण्य स्थलों के रूप में ग्रहण करते थे । इसी दृष्टि से महाभारत ने तीर्थ यात्राओं को यज्ञों से भी अधिक फल देने वाला बताया है :-

यो दरिद्रैरपिविधिः शक्यः प्राप्तुं नरेश्वर ।
तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ।।[2]

महाभारत के तीर्थ वर्णन में एक विशेष बात यह भी सामने आती है कि महर्षि वेदव्यास ने उन दुराचारी और असत्य कर्मी पुरुषों को तीर्थ यात्रा का अध्किारी नहीं माना है जो अपने पापाचारों से न केवल तीर्थों का वल्कि पूरे समाज का प्रदूषण करते है । महाभारत के अनुसार तीर्थ का फल केवल उन्हीं लोगों को मिलता है जो उच्च नैतिक और आध्यात्मिक गुणों से युक्त होते है । जो व्यक्ति चरित्रहीन है, अजीतेन्द्रिय है, शुभ कर्मो से रहित है, उन्हें तीर्थ यात्रा का कोई फल प्राप्त नहीं हो सकता है ।[3]

---

1. वामनपुराण 34.3.5
2. महाभारत, वनपर्व, 82.13
3. वही0 82.9

जिस प्रकार महाभारत ने पवित्र चरित्र वाले लोगों को ही तीर्थ यात्रा के महत्व का प्रतिपादन किया है, उसी प्रकार हमारे पुराण ग्रन्थ भी श्रेष्ठ चरित्र वाले लोगों को ही तीर्थ यात्रा का अधिकारी बताते है । स्कन्द पुराण का कहना है कि जल में स्नान करने वाले व्यक्ति को वास्तव में स्नात नहीं कहा जा सकता है । जो व्यक्ति इन्द्रिय संयम के जल से नहाया हुआ है, वही स्नात हो सकता है ।[1]

वायुपुराण का स्पष्ट कथन है कि शुभ कर्मों को करने वाला ही वस्तुतः तीर्थ फल प्राप्त करता है । अश्रद्धालु पापी नास्तिक और कुतर्की लोग तीर्थ फल प्राप्त नहीं कर सकते ।[2] पद्मपुराण के अनुसार श्रेष्ठ चरित्र वाले तीर्थयात्री गंगा स्नान और तीर्थ भक्ति से अपने शरीर और मन के सभी दोषों को दूर कर देते है । विष्णु धर्मोन्तर पुराण का कथन है कि तीर्थ यात्रा से पापी के पाप कट जाते है और सज्जन व्यक्ति में धर्म की वृद्धि होती है । इस प्रकार पुराणों की दृष्टि से हमारे तीर्थ सभी वर्णों और सभी आश्रमों के लोगों को उत्तम फल प्रदान करने वाले है ।[3]

पुराण प्रतिपादित मानस तीर्थ :-

हमारे पुराण ग्रन्थों ने तीर्थ का सम्बन्ध मन की पवित्रता से जोड़ा है । पुराणों के अनुसार मनुष्य का पवित्र मन सबसे बड़ा मानस तीर्थ है । ब्रह्म पुराण के अनुसार विशुद्ध मन को पुरूष का सर्वोत्तम तीर्थ बताया गया है ।[4] हमारे पुराणों का स्पष्ट कथन है कि कोई भी तीर्थ दुष्ट चित्त व्यक्ति को पापमुक्त नहीं कर सकता । जिस प्रकार

---

1. महाभारत, अनुशासन पर्व, 108-9
2. वायुपुराण, 77.125
3. विष्णु धर्मोन्तर, 3.273.7
4. ब्रह्मपुराण, 25.3-6

मदिरा से भरा हुआ पात्र यदि सैकड़ों बार जलों से धोया जाये तो भी वह अपवित्र बना रहता है । इसी प्रकार दुष्ट चिन्त व्यक्ति भी हजारों बार तीर्थ स्नान करके भी शुद्ध नहीं हो पाता है । जितेन्द्रिय मनुष्य जहाँ जहाँ रहता है, वहीं वहीं कुरूक्षेत्र, प्रयाग और पुष्कर तीर्थ हो जाते है ।[1]

कुछ पुराण निन्दक लोग अज्ञानवश ये समझ बैठे है, जैसे कि हमारे पुराणग्रन्थ किसी अन्धमत का प्रचार करने वाले हो । यह एक भ्रम है । वास्तविकता इसके विपरीत है । हमारे पुराण ग्रन्थ जो कुछ कहते है और जो कुछ तीर्थ महिमा का वखान करते है, उस सबका एक ही उद्देश्य है और वह उद्देश्य है, मनुष्य के चरित्र को धोकर पवित्र कर देना । वामनपुराण में बहुत ही स्पष्ट रूप से कहा गया है कि आत्मा संयम रूपी जल से परिपूर्ण सरिता के समान है । यह सत्य से प्रवाहित होता है । इसका शील ही तट है और इसकी दया ही लहरें है । इसलिए संयम रूपी जल से परिपूर्ण नदी में स्नान लाभ दायक है । कहीं का भी जल दूषित अन्तःकरण को स्वच्छ नहीं कर सकता है ।[2]

पद्मपुराण तीर्थों के अर्थ और उनकी महिमा का और अधिक विस्तार कर देता है । वह मनुष्यों को किसी एक तीर्थ स्थान से बाँधकर नहीं रखता । उसका स्पष्ट कथन है कि जहाँ अग्निहोत्र होता है, वहाँ सर्वत्र मन्दिर है, और सर्वत्र तीर्थ है । जहाँ सुन्दर वाटिकायें है, हरे–भरे वृक्ष है, गुरू और शिष्यगण ज्ञान चर्चाए करते है । नर और नारी सभी अपने अपने कर्त्तव्यों का पालन करते है । वहाँ सभी तीर्थों का निवास हो जाता है ।[3]

---

1. ब्रह्मपुराण, 25.3–6
2. वामनपुराण, 43.25
3. पद्मपुराण– 2.39.56

पुराणसम्मत तीर्थों का वर्गीकरण :-

हमारे पुराण ग्रन्थों ने तीर्थों को चार वर्गों में विभक्त किया है :-

1. **दैवतीर्थ** :- जिन तीर्थों का सम्बन्ध देवताओं से माना जाता है, अथवा जो तीर्थ देवताओं द्वारा उत्पन्न किये गये है, उन्हें दैवतीर्थ कहा जाता है । ब्रह्मपुराण के अनुसार विन्ध्य के दक्षिण की नदियों और हिमालय से निकलने वाली नदियों को देव तीर्थों में सबसे अधिक पवित्र बताया गया है । हमारी इन पुण्य नदियों में गोदावरी, भीमरथा, तुंगभद्रा, वैणिका, तापी, पयोष्णी, भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका और वितस्ता आदि का उल्लेख किया गया है । इसी प्रकार काशी, पुष्कर, प्रभास और चित्रकूट को देवतीर्थ बताया गया है । उत्तर दिशा का हिमालय सभी पुराणों और काव्यकारों की दृष्टि में देवतात्मा रहा है ।

2. **आसुरतीर्थ** :- पुराणों में कुछ ऐसे तीर्थों के नाम आते है, जहाँ पितरों को पिण्ड दान तथा देवी-देवताओं को पशु बलि दिये जाते है । ऐसे तीर्थों को आसुर तीर्थ कहा गया है । पुराणों के अनुसार, 'गया' हमारे देश का पितृ तीर्थ है ।

3. **मानुषतीर्थ** :- हमारे देश के वे तीर्थ जिनकी स्थापना मनु और अम्बरीष जैसे महान राजाओं के द्वारा की गई है, वे मानुष तीर्थ कहलाते हैं । उदाहरण के लिए कुरूक्षेत्र सबसे अधिक प्रतिष्ठित मानुषतीर्थ है ।

4. **आर्षतीर्थ** :- जिन तीर्थों की स्थापना महान ऋषियों के द्वारा की गयी है, उन्हें आर्ष तीर्थ कहा जाता है । तीर्थ स्थापना करने वाले हमारे महान ऋषियों ने भरद्वाज, वाल्मीकि और अत्री जैसे ऋषिगण आते है । इन महान ऋषियों ने जहाँ जहाँ आश्रम स्थापित किये व सभी आर्ष तीर्थ हा गये ।

<u>तीर्थों का पुराणोक्त पर्यावरण</u> :-

हमारे पुराण ग्रन्थ तीर्थों की पवित्रता के साथ साथ उनके पर्यावरण को भी पहचानते थे । वे ये भी जानते थे कि तीर्थों का सुरम्य पर्यावरण ही देशवासियों को अपनी ओर आकृषित कर सकता है । इसी बात को ध्यान में रखकर पुराणों में तीर्थों के पर्यावरण को बहुत अधिक महत्व दिया गया है । तीर्थ यात्रायें देशवासियों के बीच एकता की भावना पैदा करती है । यह बात भी हमारे पुराणकार जानते थे, इसीलिए उन्होंने सभी देशवासियों के लिए सभी तीर्थों की यात्रायें करना पुण्य का कार्य बतलाया है । आज भी हम देखते है कि हमारे पुराणकारों का यह विचार उतना ही महत्व रखता है जितना इसका महत्व कभी प्राचीन काल में था ।

हमारे पुराणकार यह भी जानते थे कि तीर्थों का पवित्र जल पवित्र वायु और स्वस्थ पर्यावरण आदमी के तन और मन को पवित्र कर देता है । तीर्थों के स्वस्थ पर्यावरण से मनुष्य के मन की दुर्भावनायें नष्ट हो जाती है और उसके अन्दर श्रेष्ठ भावनाएं उत्पन्न होने लगती है । तीर्थों के एकान्त शान्त और स्वस्थ पर्यावरण में कुछ दिनों रहकर मनुष्य प्रकृति के साथ सहकार की भावना प्राप्त करता है । इस प्रकार हमारे तीर्थ मनुष्य की हृदय शुद्धि का मार्ग प्रशस्त करते है । हमारे तीर्थों का एक महत्व यह भी है कि इनमें यात्रायें करने वाले देशवासी जन आपस के सभी भेदभाव और दूरियाँ भूलाकर एक ही संस्कृति के धागे में बंध जाते है ।

<u>पुराणों में चित्रकूट</u> :-

पुराण ग्रन्थों में तीर्थ वर्णन के प्रसंगों में चित्रकूट का वर्णन उतने अधिक विस्तार से नहीं मिलता है, जितना कि उसका वर्णन हमें वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है । इसका

कारण भी बड़ी सरलता से समझा जा सकता है । हमारे पुराण ग्रन्थों में जहाँ कहीं तीर्थ महिमा और तीर्थ यात्राओं का माहात्म्य वर्णन किया गया है, वहाँ देश के प्रायः सभी तीर्थों के महत्व का वर्णन मिलता है । उसी श्रृंखला में अन्य तीर्थों की भाँति चित्रकूट का भी धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व वर्णित कर दिया गया है । इसके साथ ही साथ हम यह भी जानते है कि पावन तीर्थ चित्रकूट का राम कथा के साथ रामायण युग से ही गहरा सम्बन्ध स्थापित हो चुका है । अतः जो पुराणकार रामायण की रामकथा से प्रभावित रहे है, उन्होंने यथा स्थान पावन तीर्थ चित्रकूट के धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व का विस्तार से प्रतिपादन किया है ।

पुराणों के अध्ययन से विदित होता है कि पुराणकाल में चित्रकूट तीर्थ एक प्रतिष्ठित धर्मक्षेत्र और तपोवन के रूप में मान्य रहा है । पुराणों के उल्लेखों से पता चलता है कि चित्रकूट तीर्थ में अज्ञात काल से ऋषियों और मुनियों के द्वारा आध्यात्मिक विचारों का चिन्तन मनन और प्रसार किया जाता रहा है ।

पुराणों के अनुसार चित्रकूट वह क्षेत्र है जहाँ अनेकानेक ऋषियों के पावन आश्रम है । निर्मल और पवित्र जल है । सुरम्य कानन है और पर्वत मालायें है । पुराणों के अनुसार चित्रकूट सिद्ध तपोभूमि है । प्रकृति देवी ने साधना करने वाले लोगों के लिए यहाँ जीवन उपयोगी सभी प्राकृतिक उपहार प्रदान कर रखे है । यहाँ का सुरम्य पर्यावरण सद्विचारों को जन्म देने वाला है । यहाँ का जीवन पक्षियों, मृगों, वानरों तथा प्रकृति के अनन्त वनस्पति रूपों के बीच रमा हुआ है । यहाँ का पवित्र पर्यावरण ही वह अनोखी वस्तु है, जिसने रामायण युग से लेकर आज तक इसे एक प्रदूषण मुक्त तपोभूमि बनाये रखा है । अपने इसी सौन्दर्य के कारण यह रामायणकार, महाभारतकार तथा पुराणकार सभी का

हृदय आकर्षित करता रहा है ।

महाभारत के वन पर्व में तीर्थयात्राओं का विस्तार से वर्णन किया गया है । उसमें भीष्म और पुलस्त्य संवाद में तीर्थ यात्राओं की फलश्रुतियों का वर्णन किया गया है । इसी प्रसंग में महाभारत में कहा गया है कि चित्रकूट गिरिवरों में श्रेष्ठ है । उसके समीप में सर्वपापप्रणाशिनी मन्दाकिनी नदी प्रवाहित हो रही है । महाभारत का कथन है कि चित्रकूट की पुण्य सलिला मन्दाकिनी में मज्जन और देवाराधन करने से अनेक अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है ।[1]

महाभारत के अनुशासन पर्व में युधिष्ठिर और अंगिरा संवाद के अन्तर्गत तीर्थ वर्णन के प्रसंग में चित्रकूट महिमा का उल्लेख मिलता है । महाभारत के उस वर्णन के अनुसार चित्रकूट स्थित मन्दाकिनी नदी के जल में स्नान करने वाले और वृतोपवास करने वाले पुरुष राजलक्ष्मी से युक्त होते है :-

चित्रकूटे जनस्थाने तथा मन्दाकिनी जले ।
विगाह्य वै निराहारो राजलक्ष्म्या निषेव्यते ।।[2]

महाभारत के वन पर्व और अनुशासन पर्व में चित्रकूट का महिम गान इस पावन तीर्थ के प्राचीन गौरव का स्मरण कराता है । महाभारत के वन पर्व में चित्रकूट के सुरम्य पर्यावरण का वर्णन करते हुए कहा गया है कि चित्रकूट की मन्दाकिनी मनुष्य के सारे पापों को नष्ट कर देने वाली है । महाभारत के इस कथन से चित्रकूट की पुण्यधारा मन्दाकिनी का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व पता चलता है । चित्रकूट का यह महाभारतीय वर्णन

---

1. महाभारत वनपर्व, तीर्थयात्रा, 85.58

2. वहीं0 अनुशासन पर्व 25.29

रामायण के चित्रकूट वर्णन से प्रभावित प्रतीत होता है । इससे ये पता चलता है कि रामायण युग की भाँति ही महाभारत युग में भी चित्रकूट निवास और मन्दाकिनी स्नान पुण्यप्रद माने जाते थे । महाभारत के वर्णन से ये भी ज्ञात होता है कि रामायण युग की भाँति महाभारत युग में भी चित्रकूट का प्राकृतिक पर्यावरण उसी प्रकार शान्त और निर्मल था । मन्दाकिनी जल में और चित्रकूट के वातावरण में पर्यावरण के प्रदूषण का कोई संकट नहीं था इसीलिए महाभारतकार वेदव्यास ने चित्रकूट और मन्दाकिनी के पवित्र एवं निर्मल जल में स्नान हेतु अपने गहन उदगार व्यक्त किये है ।

अनेक पुराण चित्रकूट के वर्णन में वाल्मीकि प्रणीत रामायण का ही अनुशरण करते है । अनेक पुराणों ने रामकथा का वर्णन करते हुए हनुमत प्लुति नाम से चित्रकूट का उल्लेख किया है । पुराणों में वाल्मीकि रामायण की तरह चित्रकूट वर्णन का अधिक विस्तार नहीं मिलता है । अग्नि पुराण के अनुसार श्रीराम अपने वनवास काल में अयोध्या से श्रृंगवेरपुर होते हुए गंगा पार कर प्रयाग आते है । जहाँ महर्षि भरद्वाज के आश्रम में अतिथि होते है । महर्षि भरद्वाज के आश्रम से आगे बढ़कर वे चित्रकूट की मन्दाकिनी के तट पर पहुँचकर पर्णशाला का निर्माण करते है और वास्तु पूजा कर वहाँ रहने लगते है :-

भरद्वाजं नमस्कृत्य चित्रकूटगिरिं ययुः ।
वास्तुपूजां तत्र कृत्वा स्थितो मन्दाकिनीतटे ।।
सीतायै दर्शयामास चित्रकूटम् च राघवः ।।[1]

---

1. अग्नि पुराण, 6.35-36

अग्निपुराण का अनुशरण करते हुए मत्स्य पुराण, नारदीय पुराण, पद्मपुराण, भागवत पुराण और नृसिंह पुराण में भी राम कथा वर्णन के प्रसंग में चित्रकूट का आदर के साथ उल्लेख किया गया है ।[1]

वराहपुराण का कथन है कि राम के रूप में साक्षात् विष्णु भगवान ही चित्रकूट पर्वत पर निवास करते है :-

चित्रकूटे गिरौ विष्णुः सदा रामेति कीर्त्यते ।[2]

नरसिंह पुराण में रामकथा वर्णन के प्रसंग में चित्रकूट का अनेक बार उल्लेख प्राप्त होता है । इस पुराण के अनुसार श्रीराम भरद्वाज ऋषि द्वारा बताये मार्ग से चित्रकूट पहुँचते है । पावन चित्रकूट नानाद्रुम लताओं से हरा भरा श्रेष्ठतम् पुण्य तीर्थ है ।[3]
इस तीर्थ में श्रीराम जानकी और लक्ष्मण के साथ सुख पूर्वक निवास कर रहे है :-

भरद्वाजोक्त मार्गेण चित्रकूटं शनैर्ययौ ।
नानाद्रुमलताकीर्णं पुण्य तीर्थ मनुत्तमम् ।।
वर्तते चित्रकूटऽसौ रामः सत्यपराक्रमः ।
उत्तीर्य यमुनां यातः चित्रकूटं महानगम् ।।[4]

---

1. मत्स्य0 22.65, नारदीय0 2.60.23 पद्म0 139.54
2. वराह0 12.2
3. नरसिंह0 48.96
4. वही0 48.140

नरसिंह पुराण में एक कथा यह भी आती है कि एक बार चित्रकूट पर्वत के वन में श्रीराम सीता के उत्संग में सो गये थे उसी समय एक दुरात्मा काक सीता के स्तनों के मध्य चञ्चु–प्रहार कर देता है जिससे सीता के स्तन से रुधिर बहने लगता है । इसी पुराण में तीर्थराज चित्रकूट का राम के पवित्र निवास के रूप में बार बार उल्लेख है ।[1]

पुराणों के चित्रकूट वर्णन से प्रतीत होता है कि रामायण युग की भाँति पुराण युग में भी चित्रकूट का पर्यावरण और परिदृश्य उसी प्रकार पवित्र और रमणीय बने हुए थे । नरसिंह पुराण की काक कथा से जुड़ा हुआ स्थान आज भी चित्रकूट की मन्दाकिनी धारा में स्फटिक शिला के नाम से जाना जाता है । श्रद्धालु लोग वहाँ पहुँचकर श्रीराम के चरण चिह्नों पर आज भी माथा नवाते है ।

पुराणों के मन्थन और विमन्थन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि रामायण युग के चित्रकूट का सांस्कृतिक और पर्यावर्णिक महत्व पुराण युग में भी जैसे का तैसा बना रहा था । पुराणों के वर्णन से यह प्रतीत होता है कि इस युग में चित्रकूट का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व देशव्यापी हो गया था ।

चित्रकूट के ऋषियों, मुनियों, सन्तों और महात्माओं ने जो कुछ उत्तम और महान दिया है, धर्म की स्थापना और भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा के लिए जो भी महान विचार उन्होंने दिये है वे सब यहाँ के तपोवन, पर्वत, नदी और शान्त एकान्त सघन वनकान्तार के मध्य ही अंकुरित हुए है ।

---

1. नरसिंह पुराण, 49.3–4

महर्षि भरद्वाज वाल्मीकि अत्री और सरभंग आदि ऋषियों ने यही पर साध्ंना और भक्ति की गंगा बहायी थी । पुराण काल में भी चित्रकूट इसी ज्ञान गंगा का केन्द्र बना रहा था । विष्णु के अवतार श्रीराम के निवास से यह सम्पूर्ण चित्रकूट कामदगिरि हो गया था । अतः अतिरिक्त रूप से कहने की आवश्यकता नहीं है कि पुराणकाल में पावन तीर्थ चित्रकूट का महत्व धर्म और अध्यात्म के शिखर पर था ।

पुराण युग से ही चित्रकूट में धार्मिक और सांस्कृतिक उत्थान करने वाले राष्ट्रीय जन सम्मेलनों का आयोजन होता रहा है । तुलसी ने अपने राम चरित मानस को 'नानापुराण सम्मत' कहा है । यह नानापुराण सम्मत रामचरित मानस भी चित्रकूट की पवित्र तीर्थ भूमि से ही उत्पन्न हुआ है । यहॉं का सुरम्य पर्यावरण ऐसा मनमोहक और सहकार भावना का रहा है जिसमें वनचारि मृग, विहग, हाथी और शेर, अहि और व्याघ्र विहग बन में एक परिवार के सदस्यों की तरह मिल जुलकर रहते आये है । इसीलिए रामचरित मानस के तुलसी ने चित्रकूट को रामवन कहा है और कहा है कि भारत की सारी नदियॉं राम की मन्दाकिनी के भाग्य की सराहना करती है और सभी पर्वत चित्रकूट का यशोगान करते हैं ।[1]

चित्रकूट का पावन तीर्थ भक्त कवि तुलसी दास की श्रद्धा का जितना महत्वूपर्ण तीर्थ था उतना ही महत्वपूर्ण वह अकबर के नवरत्नों में से एक रहीम खानखाना की अगाध श्रद्धा का तीर्थ था । रहीम का यह श्रद्धा भरा वचन आज भी चित्रकूट का महीम गान करने वालों की जिह्वा पर नाचता रहता है :-

---

1. रामचरित मानस, 2.132-38

चित्रकूट गिरि बसि रहे रहिमन अवध नरेश ।
जा ऊपर विपदा परत सो आवत यहि देस ।।

केवल इतना ही नहीं रहीम खानखाना ने कामदगिरि की परिक्रमा करते हुए परिक्रमा के मार्ग की धूल को अपने माथे से लगाने वाले हजारों-हजारों श्रद्धालु भक्तजनों को देखकर ही राम के चरणों की धूल का महत्व पहचाना था । रहीम का यह वचन इसी भावना को सूचित करता है :-

धूर धरत निज सीस पै कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूंढ़त गजराज ।।

राम का कामदगिरि चित्रकूट आज भी बिना किसी धार्मिक भेदभाव के भारतीय संस्कृति का पर्याय बना हुआ है । आज भी न केवल किसी एक विशेष पर्व पर बल्कि प्रत्येक दिन हजारों की संख्या में देश-विदेश से आये श्रद्धालु पर्यटक जन हमारी संस्कृति के नायक राम की उसी चरण धूलि को ढूँढते दिखायी देते है, जिसे कभी रहीम खानखाना का गजराज ढूँढ रहा था ।

अ ध्या य – 7

कालिदास एवं अन्य कवियों का चित्रकूट

7

कालिदास एवं अन्य कवियों का चित्रकूट

आदिकवि वाल्मीकि ने तमसा नदी के तट पर क्रूर व्याघ्र के द्वारा क्रौंच पक्षी का वध होता देखकर करुण हृदय से आदि काव्य की जो अमर धारा प्रवाहित की थी उसी का अनुसरण करते हुए महाकवि कालिदास तथा भवभूति जैसे सहृदय कवियों ने भी संस्कृत काव्यधारा को आगे बढ़ाया । मानवीय करुणा तथा हृदय की जिन उच्च भावनाओं का रूप हमें वाल्मीकि में देखने को मिलता है वहीं रूप हम कालिदास जैसे महान कवियों की रचनाओं में भी पाते है । कालिदास ने स्वयं अपने रघुवंश की रचना करते हुए आदि कवि का आभार स्वीकार किया है :-

सांगं च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रान्त शैशवौ ।
स्वक्रतिं गापयामास "कविप्रथमपद्धतिम्" ।।[1]

स्पष्ट है कि कालीदास ने वाल्मीकि रामायण को कवि प्रथम पद्धति के नाम से पुकारा है । इससे यह स्पष्ट होता है कि कालिदास ने काव्य की जो स्फूर्ति और प्रेरणा ग्रहण की थी वह मूलतः वाल्मीकि रामायण से ही प्राप्त हुई थी ।

कालिदास का राष्ट्रीय काव्य :-

आज सारा संसार कालिदास को संस्कृत साहित्य का अमर और सर्वश्रेष्ठ कवि मानता है । उनकी काव्य रचनाएं केवल अपनी भाषा शैली, रस विधान और उदान्त मानवीय भावनाओं के लिए ही प्रख्यात नहीं है । उन रचनाओं का राष्ट्रीय चरित्र भी बहुत ऊँचा है ।

---

1. रघुवंश, 15.33

कालिदास का जन्म भारतीय इतिहास के जिस युग में हुआ था वह राष्ट्रीय दृष्टि से सबसे महान युग माना जाता है । यही वह युग था जब हमारे राष्ट्र ने सभी विदेशी आक्रमणकारियों को देश की पश्चिमोत्तर सीमाओं के उस पार ही पराजित कर दिया था । कालिदास की काव्य रचनायें अपने राष्ट्र नायक को विक्रमादित्य नाम से सूचित करती है । कालिदास की रचनाओं से पता चलता है कि भारत सम्राट विक्रमादित्य के उदय के साथ भारतीय राष्ट्र को अपूर्व तेज मिला और भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के उदात्त तत्वों में पुनः प्रतिष्ठा लाभ कर देश का मुख उज्जवल किया । स्वतन्त्रता की लहर से देश में स्फूर्ति का संचार होने से प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिभा को आश्रय मिला । फलस्वरूप कवियों और विद्वानों ने मुक्त रूप से अपनी प्रतिभा का उपयोग राष्ट्र का गुणगान करने और संस्कृति को सप्राण बनाने में किया ।

इस स्वतन्त्र वातावरण की पार्श्वभूमि में कालिदास को जन्मजात प्रतिभा को सुअवर और प्रोत्साहन मिला, जिससे उन्होंने अपने काव्यों और नाटकों के द्वारा सृष्टि के अनुपम सौन्दर्य का, मानव जीवन की उदात्त भावना का, राष्ट्र के पवित्रतम स्थलों का और लोक कल्याण की मंगल कामना का सुन्दर परिचय लोगों को कराया है ।

कालिदास का चित्रकूट:-

कालिदास भारत के राष्ट्रीय कवि है । वे अखण्ड भारत के उपासक थे, उनकी कल्पना में भारत देश हिमालय से कन्याकुमारी और कामरूप से कच्छ तक एक नगर के समान अखण्डनीय भौगोलिक भूखण्ड है । उत्तर के नागाधिराज हिमालय[1] के समान ही उन्होंने दक्षिण के रमणीय भूभागों, सुरम्य पर्वतमालाओं और 'महोर्मि विस्फूर्जथु' और भारतीय

---

1. कुमारसम्भवम् का हिमाद्रि वर्णन

महासागर का सजीव वर्णन किया है । कालिदास की दृष्टि में भारतभूमि प्रकृति की दो विशाल सुन्दरताओं – नगाधिराज हिमालय और महासागर से घिरी है । कालिदास का हिमालय पृथ्वी के मानदण्ड की तरह ब्रह्मदेश से ब्लूचिस्तान तक स्थित है । अतः भारत वृत्त के उत्तरार्द्ध गोलक की परिधि हिमालय और दक्षिणार्द्ध गोलक की परिधि समुद्रबेला है । इस प्रकार पर्वतराज हिमालय और रत्नाकर महोदधि से परिवेष्टित भारत देश कालिदास की कल्पना में एक छत्र–साम्राज्य है । शब्दान्तर में यह कहा जा सकता है कि रघुवंशी राजाओं ने जिस विशाल देश पर शासन किया था, वह कालिदास की भारत भूमि है । उन्होंने रघुवंशी राजाओं का वर्णन समुद्र तक फैली हुई पृथ्वी के शासकों के रूप में किया है ।[1] इस प्रकार देवतात्मा नगाधिराज हिमालय द्वारा विभाजित समुद्र–मेखला भारत–भूमि ही वह महान् राष्ट्र है, जो कालिदास की वाणि में अपने सम्पूर्ण आध्यात्मिक और आधिभौतिक वैभव के साथ प्रकट हुआ है ।[2] यही नहीं, कालिदास की अमर वाणी में भारत वर्ष का महान, उदात्त और शांत–शोभन रूप मुखरित हुआ है । उन्होंने जहाँ भारत राष्ट्र का मनोहारी चित्रण किया है, वहीं उन्होंने इस देश की अन्तरात्मा को वाणी भी दी है । वे सही अर्थों में हमारे राष्ट्रीय कवि है । वाल्मीकि और व्यास के बाद आसेतु–हिमाचल, जो कवि सबसे अधिक सम्मान–भाजन हैं वह कालिदास ही है । नये और पुराने आलोचक उन्हें निश्चित रूप से भारत का श्रेष्ठ कवि मानते हैं ।

कवि कुलगुरू कालिदास के सात ग्रन्थ प्रामाणिक माने जाते है । जिनमें तीन नाटक है तथा चार काव्य है । तीन नाटकों के नाम निम्नांकित है –– मालविकाग्निमित्रम्,

---

1. रघुवंश, 1.5

2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : कालिदास की लालित्य योजना, पृ0 10

विक्रमोर्वशीयम् और अभिज्ञान शाकुन्तलम् । काव्य चार हैं जो निम्नलिखित है :- ऋतुसंहारम्, मेघदूतम्, रघुवंशम् और कुमारसंभवम् । इन नाटकों और काव्योयं में कालिदास ने न केवल देवभूमि भारत का चित्रण किया है अपितु इस देश की सम्पूर्ण साधना का निचोड़ रख दिया है । सम्पूर्ण भारतवर्ष और विश्व इनका सम्मान करता है । प्राचीनकाल से ही उन्हें राष्ट्रीय कवि की पदवी मिली हुई है । उनकी महिमा सन्देहातीत है । सैकड़ों वर्ष तक कालिदास ने भारतीय मनीषा को प्रेरणा प्रदान की है और आज भी दे रहे हैं । विभिन्न रुचि के विद्वज्जनों ने विभिन्न दृष्टियों से इस महान् कवि के साहित्य का अनुशीलन-परिशीलन किया है । विविध रूपों में उनके साहित्य के अध्ययन की यह प्रक्रिया अब भी चल रही है और आगे भी चलती रहेंगी । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में हम कविवर कालिदास की उन कृतियों के अध्ययन का प्रयास करेंगे, जिनमें उन्होंने प्रसंगवश बुन्देलखण्ड के 'देवतात्मा' चित्रकूट का महिमामण्डित वर्णन किया है ।

कविवर कालिदास के उपर्युक्त सात ग्रन्थों में से दो ही ऐसे ग्रन्थ है जिनमें चित्रकूट के वर्णन प्राप्त होते है । वे है मेघदूतम् और रघुवंश महाकाव्यम् ।

मेघदूतम् का रामगिरि:- चित्रकूट

मेघदूत को अत्यधिक लोकप्रिय काव्य माना जाता है । इसमें सन्देह नहीं है कि कविर कालिदास ने अपने बहुत सधे हुए हाथों से इसकी रचना की है । यह संस्कृत के गीत काव्यों का आदिमग्रन्थ है । यह विरह का काव्य है । कर्त्तव्य से विमुख होने पर अपने स्वामी कुबेर द्वारा अभिशक्त एक यक्ष निर्वासित होकर रामगिरि पर आश्रय लेता है उसका यह निर्वासन मात्र एक वर्ष के लिए होता है । विपत्तिग्रस्त निर्वासित यक्ष का

निवास स्थान सम्प्रति रामगिरि है । वह रामगिरि के आश्रमों में निवास करते हुए वर्ष के कुछ महीने व्यतीत करता है । किन्तु आकाश में मेघों के उमड़ घुमड़ आने पर उसका चित्त व्याकुल हो जाता है । वह मेघ को अपना दूत बनाता है और उसे रामगिरि से अपनी प्रियतमा के पास अपना मधुर सन्देश देकर अलकापुरी भेजता है । कवि ने रामगिरि से अलकापुरी के मार्ग में, इस देश के विभिन्न स्थलों का वर्णन करते हुए मनुष्य के चिरन्तन विरह व्याकुल भाव को इस काव्य के रूप में शक्तिशाली अभिव्यक्ति दी है । इसलिए संसार में यह काव्य अद्वितीय स्थान का भाजन माना जाने लगा है ।[1]

मेघदूतम् में दो स्थलों में कविवर कालिदास ने "रामगिरि" का उल्लेख किया है । प्रथम उल्लेख मेघदूतम् के पूर्व-मेघ का प्रथम श्लोक में ही है, जिससे इस काव्य का शुभारम्भ होता है :-

यक्षश्चक्रे जनकतन्या स्नानपुण्योदकेषु ।
स्निग्धच्छाया तरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।।[2]

उन्तर मेघ में भी कवि ने रामगिरि का उल्लेख किया है, जिसमें यक्ष मेघ से कहता है कि तुम मेरी पत्नी से सर्वप्रथम यह कहना कि तुम्हारा वियोगी सहचर रामगिरि के आश्रम में कुशलपूर्वक रह रहा है और तुम्हारी कुशलता जानना चाहता है :-

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी : कालिदास की लालित्य योजना पृ0 18
2. मेघदूतम् 1.1

ब्रूया एवं तव सहचरो 'रामगिर्याश्रमस्थः' ।

अब्यापन्नः कुशलमबले पृच्छतित्वाम् वियुक्तः ।[1]

वैसे तो कालिदास का यह सर्वाधिक रसात्मक सारस्वत काव्य प्रसून है । जो प्राचीन काल से ही सहृदयों की आनन्दानुभूति का साधन बना हुआ है । इसमें, इसके अतिरिक्त अपने देश के अनेक भौगोलिक स्थानों और प्रकृति के अनेक सुरम्य स्थलों का परिचय और चित्रण भी उपलब्ध है जिसका हमारे राष्ट्रीय जीवन में सर्वाधिक महत्व है ।

मेघदूत में कवि द्वारा "रामगिरि" शब्द का प्रयोग, ऐसा है जिसके विषय में विद्वानों के अनेम मतमतान्तर प्राप्त होते हैं । कुछ विद्वान् "रामगिरि" को चित्रकूट गिरि का पर्याय मानते है । तो दूसरे विद्वज्जन जनपद सरगुजा के समीपवर्ती रामगढ़ को "रामगिरि" मानते है । किनतु अन्य विद्वज्जनों का कथन है कि रामगिरि नागपुर जनपद में स्थत "रामटेक" पहाडी है ।

रामगिरि के सम्बन्ध में तीन प्रकार की मान्यताऐं प्राप्त होती है -- रामगिरि चित्रकूट, रामगिरि रामगढ़ और रामगिरि रामटेक ।

रामगिरि के सम्बन्ध में उपर्युक्त तीन प्रकार की मान्यताएं होते हुए भी रामगिरि चित्रकूट की एकरूपता प्राचीन परम्परा से ही सिद्ध है । कालिदास के काव्यों में वर्णित रामगिरि चित्रकूट ही है । चित्रकूट रामगिरि के तादात्म्य की परम्परा बहुत पुरानी है । इसलिए यह ही विश्वसनीय मानी जाती है । इस सम्बन्ध में डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति नित्य नये प्रयोगो से सत्य का आविष्कार नहीं करता रहता ।

---

1. उत्तरमेघ, 43

परम्परा क्रम से ऐसी धारणायें समस्चीत चेतना में संचित होती रहती है, नवीन अनुभवों से परिष्कृत होती रहती है और विश्वास के रूप में प्रतिष्ठित होती रहती है । इस प्रकार प्राचीन काल से ही चित्रकूट को रामगिरि के रूप में माना जाता रहा है ।

मेघदूत के प्राचीन टीकाकार बल्लभदेव तथा दाक्षिणात्य विद्वान महामहोपाध्याय मल्लिनाथ मेघदूत की अपनी टीका में रामगिरि को चित्रकूट मानते है ।[1] कालिदास की कविता के प्रसिद्ध पारखी और व्याख्याकार मल्लिनाथ का कथन हे कि "रामगिरि" के आश्रमों में अर्थात् चित्रकूट के आश्रमों में यक्ष निवास करता था, उन्होंने रामगिरि चित्रकूट को एक दूसरे का पर्याय ही माना है ।[2]

बीसवीं शताब्दी के बंगाल के पण्डित पद्म भूषण हरिदास सिद्धान्त वागीश भी मेघदूत की अपनी टीका में रामगिरि को बुन्देलखण्ड का चित्रकूट ही मानते है ।

कालिदास ने मेघदूत के प्रथम श्लोक में जिन विशेषणों का प्रयोग किया है उनसे रामगिरि शब्द चित्रकूट पर्वत की ही सूचना प्रदान करता है :-

यक्षश्चक्रे जनकतनया स्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छाया तरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।

यहॉ पर रामगिरि के आश्रमों के साथ जिन विशेषण पदों का प्रयोग किया गया है वे विशेषण बताते है कि रामगिरि में जल की प्रचुरता थी और वहॉ के आश्रमों में छायादार

---

1. पूर्वमेघ, प्रथम श्लोक पर बल्लभदेव की टीका
2. वही0 मल्लिनाथ की टीका

वृक्षों की बहुलता थी । कहने की आवश्यकता नहीं है कि कालिदास के रामगिरि की सारी विशेषतायें चित्रकूट में उपलब्ध होती है । वाल्मीकि रामायण के अनुसार भी चित्रकूट का क्षेत्र रम्य निर्झर–कानन वाला रहा है । इसलिए कालिदास का रामगिरि और वाल्मीकि का चित्रकूट एक जैसा पर्यावर्षित सौन्दर्य रखते है । इसी लिए आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का कथन है–– 'जो लोग रामगिरि को चित्रकूट ना मानकर नागपुर के पास रामटेक पहाड़ी या रीवा राज्य का रामगढ़ मानते है, उनका यह भ्रम है, रामटेक तो सूखी पहाड़ी है । जहाँ कभी जल के भी दर्शन नहीं होते । ऐसी सूखी पहाड़ी पर कालिदास का यक्ष क्यों रहने जायेगा ।[1]

बिहार के प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान श्री रंजन सूरि देव ने अपने एक समीक्षात्मक ग्रन्थ में रामगिरि को चित्रकूट का ही पर्याय माना है ।[2] संस्कृत अकादमी पुरस्कार विजेता डा0 रमाशंकर तिवारी भी रामगिरि और चित्रकूट को एक ही मानते है ।[3] इसी प्रकार पुरातत्व शास्त्री डा0 वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी अपने 'मेघदूत का अध्ययन : शिव का स्वरूप' ग्रन्थ में रामगिरि का अर्थ चित्रकूट ही किया है ।

उपर्युक्त मनीषियों के विचार से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकतर विद्वानों की दृष्टि में कालिदास का रामगिरि चित्रकूट ही है । इधर चित्रकूट अंचल में प्राप्त हुई वृहद रामायण की चित्रकूट माहात्म्य नामक पाण्डुलिपि से भी रामगिरि के चित्रकूट होने का प्रमाण मिलता है ।[4] इस प्रकार इस बारे में कहीं कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि

---

1. सीताराम चतुर्वेदी, कालिदास ग्रन्थावली, भूमिका, पृ0 5
2. मेघदूत : एक अनुचिन्तन, पृ0 10
3. रमाशंकर तिवारी, कालिदास, पृ0 427
4. देखिये परिशिष्ट वृ0रा0 चित्रकूट माहात्म्य 1.9.

कालिदास का रामगिरि और वाल्मीकि का चित्रकूट एक ही पवित्र स्थल है ।

कालिदास की कृतियों का मन्थन करने के पश्चात भी यही बात निकलती है कि रामगिरि से कालिदास का अभिप्राय हमारे कामदगिरि चित्रकूट से ही था । यह बात सर्वविदित है कि कालिदास को मेघदूत रचना की प्रेरणा भी वर्षाकाल में रामायण के राम वियोग से ही प्राप्त हुई थी ।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार वनवास काल में श्रीराम का निवास मनोरम स्थल चित्रकूट ही था । आदिकवि ने चित्रकूट वनाञ्चल की सुषमा की भूरि भूरि प्रशंसा की है। महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि में चित्रकूट ना केवल मधुर कन्दमूल फलों से युक्त था, प्रत्युत वह नाना प्रकार के मृगों और मयूरों की क्रीड़ाओं का भी मुक्त आंगन था । चित्रकूट का अंचल सुन्दर सुन्दर गिरि निर्झरों से और मन्दाकिनी के जल से अत्यन्त मनमोहक था । यह चित्रकूट की पर्यावर्षिक शोभा का ही आकर्षण था कि वाल्मीकि का राम सीता से कहता है कि यदि मुझे अनेक शरद ऋतुओं तक भी यहाँ निवास करना पड़े तो भी मेरा मन कभी उद्विघ्न नहीं हो सकेंगा ।[1]

जब हम यह देखते है कि कालिदास के प्रेरणा स्रोत आदि कवि वाल्मीकि ज्ञिन्नकूट की शोभा का वर्णन करते करते कभी नहीं अघाते तो फिर ये कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि स्वयं कालिदास भी रामगिरि के नाम से इस सुन्दर पर्वत प्रदेश को छोड़कर और किसी रामगिरि की बात कभी नहीं कर सकते ।

कालिदास के मेघदूत के वर्णन के अनुसार रामगिरि एक उत्तुंग पर्वत है ।

---

1. वा0रा0 2.54.38–41

उसका चप्पा चप्पा रघुपति राम के पदों से अंकित है, वहाँ के जलाशय जनक तनया सीता के स्नान से पवित्र है । वहाँ का वनाञ्चल छायादार वृक्षों से विभूषित है । कालिदास का यह सम्पूर्ण वर्णन सुरम्य प्रदेश चित्रकूट को ही रामगिरि सूचित करता है । महाकवि का ऐसा सुन्दर रामगिरि चित्रकूट को छोड़कर ना तो रामटेक पहाड़ी हो सकती है और ना ही रामगढ़ ।

मेघदूत का कवि रामगिरि के वर्णन में वप्र क्रीड़ा शब्द का प्रयोग करता है । इसी शब्द का प्रयोग वह रघुवंश में चित्रकूट का वर्णन करते हुए भी करता है । कवि का यह प्रयोग स्वयं प्रमाणित करता है कि उसके मन में जो छवि चित्रकूट की बसी है, वहीं छवि उसके रामगिरि की भी है ।

रघुवंश का चित्रकूट :-

कविवर कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में राम के जिन प्रवास स्थलों का वर्णन किया है, वे सारे के सारे वाल्मीकि रामायण से मिलते जुलते है । रघुवंश के अनुसार राम अयोध्या से निकलकर चित्रकूट पहुँचते है और कुछ दिन वहाँ रहकर अनसूया आश्रम जाते है, उसके आगे चलकर विराध का वध करते है । तत्पश्चात वे पञ्चवटी में प्रवेश करते हैं । कालिदास ने अयोध्या से पञ्चवटी तक की राम यात्रा का वर्णन रघुवंश में इसी संक्षिप्त शैली से किया है ।[1]

कालिदास के रघुवंश में पुष्पक विमान से की गई राम की यात्रा का विस्तार से वर्णन मिलता है । उस वर्णन के अनुसार राम पञ्चवटी के बाद अगस्त्य आश्रम, पञ्चाप्सर

---

1. रघुवंश, 12.15-24

सरोवर, सुतीक्ष्ण आश्रम, सरभंग आश्रम, चित्रकूट, मन्दाकिनी नदी, अत्रि आश्रम, श्यामवट, यमुनानदी, गंगा नदी, निषादराज गुह का नगर, सरयू नदी तथा अयोध्या नगरी का क्रमशः उल्लेख मिलता है । उपर्युक्त स्थानों के अलावा कालिदास ने अन्य किसी स्थान का ऐसा उल्लेख नहीं किया है जहाँ श्रीराम और सीता वनवास काल में रहे हो । यदि वे नागपुर जनपद स्थित रामटेक पहाड़ी पर अथवा सरगुजा जनपद की रामगढ़ पहाड़ी पर रहे होते तो कालिदास अपने रघुवंश में उसका उल्लेख अवश्य करते । इसलिए रामगिरि और चित्रकूट के बारे में कालिदास के स्वयं के वर्णन तथा इस बारे में की गई सभी समीक्षाओं से यही बात प्रमाणित होती है । कि कालिदास का रामगिरि रमणीय कामदगिरि चित्रकूट ही है ।

अपनी पुष्पक यात्रा के बीच राम विस्तार के साथ सीता को चित्रकूट के सौन्दर्य का वर्णन सुनाते है । उनका विमान लौटते समय सरभंग आश्रम पहुँचता है, जहाँ पर श्रीराम सीता से महर्षि की तपस्या का विस्तार से वर्णन करते है । वे सीता को दिखाते है कि देखों वह पावन तपोवन चित्रकूट है जहाँ आहिताग्नि सरभंग तपस्या कर रहे है । वे सीता को यह भी बताते है कि इस अंचल के सघन लता और वृक्ष ही ऋषि शरभंग की सन्तान है, जो उनके आश्रम में आये हुए अतिथियों का स्वागत करते है ।[1]

कालिदास रघुवंश के वर्णन से चित्रकूट के अञ्चल का जो सौन्दर्य सामने आता है, उससे हम यही जानते है कि कालिदास का चित्रकूट भी वाल्मीकि के चित्रकूट की तरह सघन छायादार वृक्षों वाला वन प्रदेश था जो विविध प्रकार के कन्दमूल और फलों से भरा हुआ था ।

---

1. रघुवंश 13.46

चित्रकूट के सुन्दर पर्यावरण ने जिस प्रकार राम का मन मोह लिया था, उसी प्रकार उसने रघुवंश के कवि कालिदास का भी मन मोह लिया था। चित्रकूट की कन्दरायें झर-झर करते निर्झर, निर्मल जल धारायें, कालिदास के मन को अत्यन्त सम्मोहन भरी प्रतीक हुई थी। उसने वर्षा काल में चित्रकूट के शिखरों पर छाये काले मेघ को देखकर यह अनुभव किया था मानों कि सींग पर काला काला पंख लपेटे कोई दृप्त ककुदमान् वृषभ ही उसके दृष्टि पथ में खड़ा हो :-

धारास्वनोद्‌गारि दरीमुखाऽसौ श्रृंगाग्रलग्नाम्बुदवप्रपंकः ।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्तः ककुद्‌मानिव चित्रकूटः।।[1]

कालिदास के वर्णन से प्रतीत होता है कि कवि के युग में गिरिवर चित्रकूट की कन्दराओं से विमल जलधारायें बहा करती थी, इसके सम्मुन्नत शिखरों पर वर्षा ऋतु में मेघ मालाएं झूलती रहती थी। चित्रकूट का यही सुरम्य पर्यावरण बहुत कुछ मात्रा में प्रकृति की महिमा से आज भी बना हुआ है।

चित्रकूट की सुषमा का वर्णन करते हुए कालिदास के रघवंश का राम अपनी सहचरी सीता को मन्दाकिनी का सौन्दर्य दर्शन भी कराता है। चित्रकूट की मन्दाकिनी का जल अत्यन्त निर्मल और उसका प्रवाह कलकल करता हुआ वर्णित किया गया है। चित्रकूट की मन्दाकिनी की शोभा वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह ऐसी प्रतीत होती है जैसे पर्वत भूमि ने अपने वक्ष पर मोतियों की कोई माला पहन रखी हो :-

---

1. रघुवंश 13.47

एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी ।

मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेवभूमेः।।[1]

हम देखते है कि वाल्मीकि तथा कालिदास दोनों के काव्य में चित्रकूट वनाञ्चल के प्रमुख जल स्रोतो में मन्दाकिनी नदी का महत्वपूर्ण स्थान है । रघुवंश के वर्णन के अनुसार मन्दाकिनी का जल निर्मल और धवल था । यह जल तत्व ही पर्यावरण का प्रमुख तत्व है जो जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण धारक तत्व है । कालिदास के युग में चित्रकूट का पर्यावरण पूरी तरह प्रदूषण मुक्त था । मन्दाकिनी के जल में कहीं कोई प्रदूषण नहीं था ।

चित्रकूट अञ्चल वृक्षों और लताओं से हरा भरा था । यहाँ तमाल अर्जुन आमल की आदि आदि प्रजातियों के नाना लता और वृक्ष सुशोभित थे । तमाल वृक्ष के प्रवालों को राम ने स्नेह की दृष्टि से देखा था और इसी लिए उन्हें सीता के कानों का गहना बना लिया था :-

अयं सुजातेऽनुगिरं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य ।

यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी मयावंतसः परिकल्पितस्ते ।।[2]

कालिदास के रघुवंश में चित्रकूट अंचल का एक अन्य सुन्दर चित्र अत्रि के तपोवन आश्रम का मिलता है । रघुवंश का वर्णन बताता है कि अत्रि का वह तपोवन दण्ड और

---

1. रघुवंश, 13.48

2. वही0 13.49

भय से मुक्त था । वहाँ के जीव जन्तु एक दूसरे के साथ सहकार भावना से रहते थे । वहाँ का वनस्पति जगत अत्यन्त रमणीय और हरा भरा था । केवल बाह्य सौन्दर्य ही नहीं अत्रि का तपोवन आध्यात्मिक शुद्धता से पवित्र था । इसी तपोवन में अत्रि की पत्नी अनसूया ने अपने तप के प्रभाव से मन्दाकिनी की धारा को पृथ्वी पर उतारा था । चित्रकूट का यह पूरा वनाञ्चल पवित्र तपोभूमि है । यहाँ के तपोवन में बैठे ऋषिगण निष्कम्प योगसमाधि लगाये रहते है :-

अत्राभिषेकाय तपोधनानां सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपुष्पाम् ।
प्रवर्तयामास किलानसूया त्रिस्रोतसं त्रयम्बकमौलिमालाम् ।।[1]

कालिदास के रघुवंश से विदित होता है कि इस महान कवि के युग में चित्रकूट प्राकृतिक सुषमा का केन्द्र था । यहाँ का जल मिट्टी वायु और आकाश सब स्वच्छ और शान्त थे । वन और तपोवन दोनों ही प्राकृतिक और आध्यात्मिक शोभा से भरे पुरे थे । मन्दाकिनी के प्रवाह ने और अनसूया के तप ने चित्रकूट की महिमा को और भी बढ़ा दिया था । कालिदास के रघुवंश में चित्रकूट का जैसा सजीव चित्र मिलता है उसे देखकर यह प्रतीत होता है कि जैसे महाकवि ने चित्रकूट अंचल को अपनी आँखों से देखा था । चित्रकूट के मोहक सौन्दर्य का ही यह प्रभाव था कि कालिदास ने रघुवंश और मेघदूत दोनों काव्य रचनाओं में उसके मादक चित्र खींचे हैं ।

कालिदास के मेघदूत को पढ़ने से लगता है जैसे रामगिरि का मेघ और कोई नहीं था यह वर्षा ऋतु में चित्रकूट पर आ बसा स्वयं कवि कालिदास ही था । अतः हमारा विचार है कि रामगिरि और चित्रकूट को लेकर जो मतभेद बहुत से मनीषियों में दिखायी देते है । वह बुद्धि का कोरा व्यायाम ही अधिक है । कालिदास का रामगिरि हमारे वाल्मीकि

---

1. रघुवंश 13.50

के चित्रकूट से भिन्न नहीं हो सकता है । पावन तीर्थ चित्रकूट जिस प्रकार रामायण युग में संस्कृति का महान केन्द्र था, पुराण युग में संस्कृति का महान केन्द्र था ठीक उसी रूप में वह कालिदास के युग में भी संस्कृति का महान केन्द्र था । सबसे बड़ी बात तो यह प्रतीत होती है कि चित्रकूट ने इन सभी युगों में अपने पर्यावरण की अनुपम छटा को नहीं खोया था ।

अन्य संस्कृत काव्यों का चित्रकूट:–

रामकथा से सम्बद्ध अन्य संस्कृत काव्यों में भी चित्रकूट के सुरम्य पर्यावरण का सुन्दर वर्णन मिलता है । इन सबका अध्ययन करने से यही पता चलता है कि हजारो हजारों वर्षों से चित्रकूट की पर्यावर्णित शोभा और सांस्कृतिक महत्ता हमारे सभी युगों के साहित्यकारों का मन मोहती रही है ।

अध्यात्म रामायण का चित्रकूट :–

अध्यात्मरामायण में चित्रकूट का वर्णन वाल्मीकि रामायण की पद्धति से ही किया गया है । इस रामायण के अनुसार भरत स्वयं राम से मिलने चित्रकूट पहुँचते है । चित्रकूट पहुँचने पर उन्हें पवित्र मन्दाकिनी नदी और कामदगिरि का दर्शन होता है :–

चित्रकूटमनुप्राप्तं दूरे संस्थाप्य सैनिकान् ।
राम संदर्शनाकांक्षी प्रययौ भरतः स्वयम् ।।[1]

अध्यात्म रामायण के अनुसार राम कुछ दिनों तक चित्रकूट पर निवास करते है । बाद में यह सोचकर कि उनके वहाँ रहते हुए मुनियों के तप कार्य में कुछ बाधायें आ रही

---

1. अध्यात्म रामायण 2.8.60

है । वे चित्रकूट छोड़कर आगे बढ़ जाते है ।[1]

वाल्मीकि रामायण की तरह अध्यात्म रामायण भी चित्रकूट अंचल का वर्णन एक रमणीय तपोवन के रूप में ही करती है । अध्यात्मक रामायण के अनुसार भी चित्रकूट का पर्यावरण वाल्मीकि रामायण के चित्रकूट जैसा ही मनोरम है ।

हनुमन नाटक का चित्रकूट :-

इस नाटक में भी चित्रकूट का मनोहारी वर्णन मिलता है । उस वर्णन के अनुसार चित्रकूट का पर्वत प्रदेश निर्मल जलधाराओं से युक्त है । इस पावन प्रदेश में सीता और राम अपना वनवास जीवन सुख पूर्वक व्यतीत करते है । इसी पावन तीर्थ में भरत और राम का मिलन यह नाटक बताता है :=

मूर्ध्ना बद्धजटेन बल्कल भृता देहेन पादानतिं,
कुर्वाणे भरते तथा प्ररूदितं तारस्वरैः सीतया ।
येनोद्विग्न विहंग निर्गत तरुः निःसंमदः श्वापदः
शैलेन्द्रोऽपि किलैषभूरिभिरभूत साश्रुपयः प्रस्रवैः ।।[2]

भट्टिकाव्य का चित्रकूट :-

भरत मिलन के प्रसंग में भट्टिकाव्य चित्रकूट का सुन्दर वर्णन करता है । इस वर्णन के अनुसार चित्रकूट में खग कुल का कलरव हो रहा है और चित्रकूट के शिखर सूर्य के मार्ग को मानो रोक रहे है ।[3] भट्टिकाव्य के वर्णन से प्रतीत होता है कि उस युग में

---

1. अध्यात्म रामायण, 3.19.76
2. हनुमन नाटक, 3.17
3. भट्टिकाव्य 3.46

भी चित्रकूट का पर्यावरण पूर्व युगों की भाँति ही सुरम्य था । लंका से अयोध्या लौटते हुए श्रीराम हनुमान से कहते है कि जब तुम महात्मा अत्रि के सुन्दर तपोवन में पहुँचोगे तो उसे छोड़ने को तुम्हारा मन नहीं करेगा । चित्रकूट का सुरम्य पर्वत इतना सुन्दर है जहाँ तुम कुछ क्षणों के लिए सुख पूर्वक विश्राम करना अवश्य चाहोंगे :-

अतिक्रान्ता त्वया रम्यं दुःखमत्रेस्तपोवनम् ।
पवित्र चित्रकूटेऽद्रौ त्वं स्थातासि कुतूहलात् ।।[1]

भट्टिकाव्य के इस वर्णन से प्रतीत होता है कि उस युग में अत्रि का आश्रम और चित्रकूट दोनों ही स्थल पर्यावर्णिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अपूर्व थे । कोई भी व्यक्ति वहाँ पहुँचकर सरलता से अन्यत्र जाने की इच्छा नहीं करता ।

प्रसन्नराघव का चित्रकूट :-

कविवर जयदेव ने अपने प्रसिद्ध नाटक प्रसन्न राघव में चित्रकूट का वर्णन इस रूप में किया है :-

प्राप्ताः शिखण्डिशतखण्डित शाखिखण्ड
मंते वयं शिखरिणं ननु चित्रकूटम् ।।[2]

प्रसन्नराघव का यह चित्र हमें बताता है कि चित्रकूट का वनाञ्चल असंख्य मयूरों तथा जाति प्रजाति के लता तरूओं से सुशोभित वनाञ्चल था ।

अनर्घराघव का चित्रकूट :-

मुरारी कवि ने अपने अनर्घराघव में चित्रकूट का वर्णन करते हुए लिखा है कि चित्रकूट जाते हुए श्रीराम के सौन्दर्य से मुग्ध हुई शवर युवतियाँ बहुत दूर तक उनका पीछा

---

1. भट्टिकाव्य 22.9.

2. प्रसन्नराघव 7.78

करती चली जाती है :-

व्याधग्राह्यस्तनीभिः शबरयुवतिभिः कौतुकोदञ्चदक्षं ।
कृच्छ्रादन्वीयमानः क्षपमचलमथो चित्रकूटं प्रतस्थे ।।[1]

मुरारी कवि के इस वर्णन से प्रतीत होता है कि राम के चित्रकूट मार्ग में शबर जाति के लोग निवास करते थे । राम ही आर्य जाति के प्रथम महान नायक थे जिन्होंने इस क्षेत्र में आदिवासियों के बीच आर्य संस्कृति का सन्देश पहुँचाया था ।

बालरामायण का चित्रकूट :-

कविवर राजशेखर ने बाल रामायण में चित्रकूट का मोहक वर्णन किया है । उसके वर्णन के अनुसार चित्रकूट पर्वत नानाधातुओं से सुन्दर लगता था । लक्ष्मण के द्वारा बनायी गयी पर्णशाला में श्रीराम मधुर कथा प्रसंगों का श्रवण और कीर्तन करते हुए चित्रकूट में निवास करते थे :-

नानाधातु विचित्रं चित्रकूटाचलं गताः ।
तत्रैव वेदीं निर्माय चिरकालं वसतिं चकार ।।[2]

भवभूति का चित्रकूट :-

भवभूति ने राम कथा से सम्बन्धित दो नाटक रचनायें की है -- महावीर चरितम्, उत्तरराम चरितम् । इन दोनों रचनाओं में उन्होंने चित्रकूट का बहुत विस्तार से तो वर्णन नहीं किया है किन्तु जो कुछ प्रासंगिक वर्णन उनके नाटकों में मिलता है, उससे चित्रकूट अंचल के वनस्पति जगत की शोभा और मन्दाकिनी नदी की सुषमा का अच्छा परिचय मिल जाता है ।[3]

---

1. अनर्घ राघव, 5.2
2. वा0रा06.39
3. उत्तर रामचरित आलेख दर्शन तथा महावीर चरित राम वन गमन

इस अध्याय में किये गये संस्कृत कवियों के साहित्य सन्दर्भों के मन्थन से यह बात उभर कर आती है कि चित्रकूट का पावन तीर्थ रामायण काल से आज तक अपना सांस्कृतिक गौरव और पर्यावर्णिक सौन्दर्य लगातार बनाये रहा है । चित्रकूट प्राकृतिक सुषमा का अपूर्व प्रतीमान माना जाता रहा है । यही कारण है कि जिस चित्रकूट ने हजारों हजारों वर्षों पूर्व जिस प्रकार से वाल्मीकि अत्रि और अगस्त्य जैसे आर्य ऋषियों का मन मोह लिया था, उसी प्रकार यह चित्रकूट आगे आने वाली पीढ़ियों के साहित्यकारों और विचारकों का भी मन मोहता रहा है । इसकी सांस्कृतिक गरिमा और पर्यावर्णिक सुषमा का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि संस्कृत का कोई भी महान कवि वाल्मीकि के चित्रकूट को कभी नहीं भुला सका है । हमारा यह चित्रकूट अपनी मूक भाषा में राष्ट्रीय जीवन के लिए सांस्कृतिक एकता का सन्देश देने वाला परम पावन तीर्थ है ।

उपसंहार

उपसंहार

वैदिक काल से ही हमारे देश में प्रकृति की महनीय शक्तियों की वन्दना की जाती रही है । यहाँ प्रकृति हर्ष और उल्लास से मानव-मन में प्रसन्नता का संचार करती है । यहाँ के बड़े-बड़े पर्वतों, वनों और नदियों में प्रकृति का वैभव बिखरा हुआ है । प्रकृति के इस अपूर्व सौन्दर्य से हमारे देश के कलाकार, साहित्यकार, विचारक और चिंतक, संत, मुनि और ऋषिगण आकर्षित होते रहे है । इसीलिए कविवर कालिदास हमारे देश भारत को देवभूमि और हिमालय को देवतात्मा कहते हैं । प्रकृति के जिन स्थलों में रमणीयता है वहीं हमारे तीर्थ प्रतिष्ठित हैं । आसेतु हिमाचल विस्तीर्ण यह देश भौगोलिक रूप से एक अविभाज्य ईकाई रहा है । किन्तु यहाँ के निवासी विभिन्न जाति वर्ण और भाषा भेद से विभिन्न प्रतीत होते हैं । फिर भी भारतीय तीर्थों ने सभी भारत के निवासियों को एकता के सूत्र में आबद्ध कर दिया है । इसीलिए हमारे संस्कृत साहित्य में सबके लिए तीर्थयात्राओं की अपरिहार्यता बतलायी गई है । तीर्थयात्राओं से न केवल समग्र राष्ट्र की एकता प्रत्युत भावात्मक तथा सांस्कृतिक एकता और बन्धुत्व भावना आदि का भी उदय होता है ।

यह आश्चर्य जनक तथ्य है कि तीर्थों के तट पर सघन वन-कान्तार में आश्रम बनाकर रहने वाले ऋषियों, मुनियों और विचारकों ने समाज को जो कुछ उत्तम और महान दिया है उसमें समग्र राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने का और समन्वय की भावना का सन्देश सन्निहित है । तीर्थों के अंचल में ही रहकर ऋषियों ने सत्य की साक्षात्कार किया था । यह सत्य जिस प्रकार समस्त कलाओं की आत्मा है, उसी प्रकार वह सम्पूर्ण जीवन पद्धति की भी आत्मा है । भारतीय संस्कृति के अनेक गुणों, यथा-सहिष्णुता, उदारता, परोपकार, विश्वबन्धुत्व, मानवतावाद, समन्वय, सहकार और सहयोग आदि का अंकुरण तीर्थों में हुआ

है । जिन अञ्चलों में इस प्रकार के उदान्त विचार प्रस्फुटित हुए हैं और आर्य संस्कृति को भव्यता प्राप्त हुई है वहॉ का पर्यावरण निश्चित रुप से नितान्त शुद्ध, प्रदूषण मुक्त, परमपवित्र, शांत, संयत और मांगलिक रहा होगा ।

भारतीय तीर्थों में तीर्थवर चित्रकूट का हमारे देश की सांस्कृतिक और भावात्मक एकता में महत्वपूर्ण योगदान है । वैदिक साहित्य के अनन्तर परवर्ती संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थ रत्नों में चित्रकूट की भव्यता की झांकी अवलोकनीय है । वाल्मीकि के युग में चित्रकूट का पर्यावरण नितान्त निर्मल था । यह महर्षियों से सेवित, पुण्यवान् और शुभदर्शनों वाला पर्वताञ्चल रहा है । चित्रकूट पर्वत शिखरों के दर्शन कल्याण परम्पराओं की सृष्टि करने वाले रहे हैं । यह वह पवित्र क्षेत्र है जहॉं पर मुनिवर भरद्वाज, महर्षि वाल्मीकि, उग्रतपोधन अत्रि और शरभंग जैसे अनेक ऋषिवर्यों ने इसे अपनी साधनास्थली बनायी थी, और यहॉं रहकर आध्यात्मिक गंगा प्रवाहित की थी । इस युग में चित्रकूट का पर्यावरण, वनकान्तार और परिवेश नानातरूलताओं से युक्त होने के कारण परम रमणीय था । यहॉं के तरु और लतायें चित्रकूट की प्राकृतिक शोभा के कारण रहे हैं । भूमि के अद्‌भुत प्रभाव से, जल की अधिक पवित्रता से, पावन और मनभावन, पवन–प्रवाह से यह चित्रकूट सर्वथा आर्यजनों द्वारा वन्दनीय और स्पृहणीय रहा है । जिस प्रकार उन्तरदिशा में अवस्थित नगाधिराज हिमालय हमारे देश का ''देवतात्मा'' है उसी प्रकार पवित्र चित्रकूट भी न केवल बुन्देलखण्ड का , प्रत्युत सम्पूर्ण देश भारत का ''देवतात्मा'' ही है । यह मध्य देश का अलंकारभूत है और आस्तिक जनता का विमल दर्पण है । प्राय: अखिल भारत के निवासी यहॉं आत हैं और चित्रकूट में उन्हें अपनी आत्मा के ही बिम्ब का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है । इस प्रकार वाल्मीकि युग का चित्रकूट पर्यावरण और संस्कृति की दृष्टि से अद्‌भुत

रहा है । यद्यपि यह उस समय विरल-जन प्रदेश ही था, किन्तु सहकार और सहयोग की भावना अग से लेकर जग तक व्याप्त थी । भारतीय संस्कृति के उन्नायक श्रीराम का और अनेक ऋषियों का लम्बा संबंध रहा है जो इस क्षेत्र की श्रेष्ठता की अभिव्यक्ति कर रहा है ऐसा कोई भारतवर्ष में स्थल दिखाई नहीं देता, जिसमें इतनी दीर्घकालावधि तक श्रीराम सीता और लक्ष्मण के साथ सुखपूर्वक रहे हों । चित्रकूट विपन्तिकाल का साक्षी है । न केवल राम की, प्रत्युत सम्पूर्ण जनता जनार्दन की विपन्ति को दूर करने वाला यह चित्रकूट सर्वदा के लिए वन्दनीय हो गया है ।

धनपति कुबेर के शाप से ग्रस्त कालिदास का यक्ष भी रामगिरि (चित्रकूट) में ही आश्रय पाता है ।

यह निश्चित है कि चित्रकूट का पवित्र पर्यावरण ही उसकी आत्मा है । उसकी प्रकृति, उसका नितान्त-शान्त-पवित्र वातावरण उसके हरे-भरे लतातरु-पादप, सरल शान्त वन्य जीव-जन्तु, झर झर करते अजस्र स्रोता निर्झर, मधुर कलरव कल-कल निनाद करते खगकुल, पुष्पों और फलों से अवनत शाखा वाले छायाद्रुम, गिरि-गह्वरों से प्रवाहित शीतल-मंद-सुगंध वनानिल, चित्रकूट के परम रम्य पर्यावरण के स्रष्टा हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि इस चित्रकूटाञ्चल में प्रकृति का अदभुत सौन्दर्य विद्यमान था । जिसके दर्शनों से व्यक्ति की मानसिक संकीर्णता और सन्ताप दूर हो जाते थे । प्रकृति का यह नैसर्गिक गुण प्रतीत होता है कि वह अधोगामी को उर्ध्वगामी बना देती है, तमोगुणी को सत्वगुणीकर देती है, अंधकार को प्रकाश में बदल देती है और अधर्म को धर्मोन्मुख कर देती है ।

प्रस्तुत अध्ययन से यह सुस्पष्ट है कि चित्रकूट क्षेत्र की पर्यावरणिक सम्पदा अपूर्व रही है । पर्यावरण के अन्तर्गत जिन तत्वों को समाहित किया जाता है, और जिनके

कारणही जीवन पृथ्वी पर विद्यमान रहता है वे सभी मूल प्राकृतिक उपादान चित्रकूटाञ्चल में विद्यमान रहे हैं । यहाँ की भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश और वनस्पति नैसर्गिक रूप से परम रमणीय रहे हैं ।

चित्रकूट क्षेत्र में स्थित मंदाकिनी क्षेत्र का दिव्य अलंकरण है । मंदाकिनी के पुलिन विचित्र शोभा वाले हैं जहाँ हंसों के जोड़े और सारसपक्षी कलरव करते हुए प्राकृतिक संगीत की सृष्टि करते रहे हैं ।

यह भूमि ऋषियों, महर्षियों और तपोधनों को परमप्रिय रही है । यही से आर्य संस्कृति दक्षिणापथ में प्रविष्ट हुई थी । बुन्देलखण्ड का हृदयदेश चित्रकूट न केवल दक्षिण का प्रवेश द्वार है प्रत्युत राष्ट्रीय एकता, भावात्मक और सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है । रामकथा हमारी संस्कृति की मुख्य धारा है और चित्रकूट उस धारा का सर्वाधिक भावनामय हृदय देश है । इसलिए इस तीर्थ का राष्ट्रीय एकता के लिए व्यापक महत्व है जिसे इस शोध प्रबन्ध के माध्यम् से प्रस्फुटित करने का प्रयत्न किया गया है ।

रामकथा का वर्णन करने वाले ऐसे कोई भारतीय ग्रन्थ नहीं है, जिसमें चित्रकूट की अलोक-सामान्य सुन्दरता का वर्णन न किया गया हो । न केवल आदिकवि वाल्मीकि ने प्रत्युत कविकुलगुरु कालिदास, कविवेधावेदव्यास, अनेक पुराणकार व्यासगण, भवभूति, कविवरण भटिट जयदेव और मुरारि प्रभृति कवियों ने अपने ग्रन्थों में परम पावन गिरिवर चित्रकूट का वर्णन कर अपनी अपनी वाणी को पवित्र किया है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्रकूट प्राचीनकाल से ही सामाजिक सद्भाव, महान् धार्मिक, संस्कृतिक , अध्यात्मिक और पर्यावरणिक चेतना का उत्प्रेरक रहा है ।

यदि यह पूछा जाये कि चित्रकूट के सौन्दर्य में तथा संसार के किसी अन्य स्थल के सौन्दर्य में अन्तर क्या है ? तो उस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि अन्तर एक है और वह है कि चित्रकूट का "सुन्दरम्" मानव को पशु सुलभ धरातल से उठाकर देवत्व में प्रतिष्ठित कर सकता है, महाकवि बना सकता है, कलाकार बना सकता है, योद्धा बना सकता है यहाँ तक कि डाकू को संत बना सकता है । यही तो विशेषता है चित्रकूट की -- जिसने अयोध्या के राजकुमार दशरथ नन्दन राम को मानवोन्तर देवता अथवा भगवान् ही बना दिया है । चित्रकूट ने ही रामबोला तुलसी को तृषित एवं क्षुधित मानव-संस्कृति को अभिनव चेतना देने वाला श्रेष्ठतम महाकवि बना दिया है जिसने गुप्त गोदावरी को गुफा को आखेट-चित्रों से अलंकृत किया है, जिन पर गर्व करता हुआ भारतीय इतिहास आज थकता नहीं, है, जिसने सुमित्रानन्दन लक्ष्मण को महान योद्धा ही नहीं बल्कि संसार का श्रेष्ठतम योद्धा बना दिया है जो पूरे चौदह वर्ष अनिद्रा, सदा जागृत, वीरासन आसीन रहते हुए वनवासी भाई का प्रहरी बना रहा । यही वह चित्रकूट है जिसने वाल्मीकि को एक ऐसा आदि कवि बना दिया है जिसकी आत्मा का प्रकाश रामायण बनकर संसार के कौने-कौने में फैल गया ।

आज के बढ़ते हुए उद्योगीकरण ने भारत के तीर्थों के सुरम्य और शान्ति पर्यावरण को प्रदूषण की लपटों में लेना आरम्भ कर दिया है । सौभाग्य की बात है कि अभी तक चित्रकूट पर प्रदूषण की काली छाया नहीं गहराई है इसके सुरम्य और पवित्र पर्यावरण को सभी प्रकार के प्रदूषणों से मुक्त रखना देश की सरकारों और राष्ट्रजन का दायित्व है । इसका सुरम्य पर्यावरण और सांस्कृतिक वैभव प्राचीन युगों की भाँति आज के रचनाकारों

को भी उसी भाँति अभिभूत कर रहा है :-

> अहं चित्रे कूटे विहगकुलकूजे मधुवने
> परिक्राम्ये वन्द्ये रघुपति कथा कीर्न्तिभवने
> तटे मन्दाकिन्याः सुरभिपवने कामद्गिरौ
> रमे मध्ये देशं धृतधनुषि वीरे रघुवरे ।[1]

---

1. व्योमशेखर, अहं राष्ट्री, पृ0 92

नेगच्छंति परां सिद्धिं महदैश्वर्यसंभवां एतत्ते गुह्यमाख्यातं परमं द्विजसत्तम २० स्नात्वा मासं परिन्यसेद्देवलोकं गता नराः स्नात्वा श्रीय
संवेधात्तद्दृष्ट्वा सीतापतिं नरः २१ प्रदक्षिणां गिरेः कृत्वा कोटिपद्मफलं लभेत् गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थो ... यतिस्तु वा ... नेगच्छंति
परां सिद्धिं शतशोऽथ सहस्रशः पयःपूता नदी यत्र रामरूपा नशेशयः २३ यातस्या सन्निगिरवोपावत्याप्यांति सागराः तेषां तीर्थ नायो
नि दुःप्राप्यामजितेंद्रियैः २४ तपसा तेजसा चैव दुर्निरीक्ष्यास्सुरैरपि २४ तेन भवंति नरा निःसंशयाः सिद्धिमाप्नुवंतः २५ मंदराद्व[illegible]
मूलात् प्राप्ता मंदाकिनी नदी सा देवगंगा विख्याता सद्यः पापहरा परा २६ यस्यां स्नात्वा नारदश्च निर्मुक्तो दक्षशापतः तच्छ्रुत्वा वच
सभुशुंडे परमाद्भुतं २७ प्रत्युवाच विनीतात्मा शांडिल्यो द्विजसत्तमः २७ शांडिल्य उवाच कथं प्रजापतेः शापान्निर्मुक्तो नारदो ऋषिः
एतद्विस्तरतो ब्रूहि गुरो संसारतारक २८ भुशुंडिरुवाच पुत्रा बभूवुर्दक्षस्य ... नाहर्यश्व संज्ञकाः ते चापि त्वा सनकादिष्वा तपस्संदुर्नेदाल
ता २९ तेद्दृष्ट्वा नारदेनैव मुमुक्षुमार्गाधिकारिणः देवर्षिर्भगवांस्तेषां ज्ञानभक्तिममन्वितं ३० ददौ ते [illegible] वनिर्गताः [illegible] संसारबंधना
त्तच्छ्रुत्वा प्रजापतिस्तेषां नाशं ध्यानपरायणः ३१ शशाप नारदं क्रोधात्पुत्रशोकातुरस्तदा त्रिलोक्यां तव देवर्षे स्थितिर्नैव भविष्यति
३२ श्रुत्वा शापं तद्देवर्षिर्व्रजत् [illegible] पितामहं उवाच पितरं ज्ञात्वा सर्वलोकमहेश्वरं ३३ श्रीनारद उवाच केन दानेन देवेश तव [illegible]
ऽवया निर्मुक्तोऽहं भवामि तत्र नु मे पितामह ३४ श्रीब्रह्मोवाच चित्रकूटो गिरिश्रेष्ठः श्रीरामपदभूषितः मंदाकिनी नाम नदी यत्र पाप
प्रमोचनी ३५ तस्यां स्नात्वा द्विजश्रेष्ठ शापमुक्तो भविष्यति इति प्रजापतेरुक्तं श्रुत्वा देवर्षिसत्तमः ३६ चित्रकूटं गतो [illegible] मंदाकिनी
नदी [illegible] ततः स्नात्वा गिरेः कृत्वा प्रदक्षिणां ३७ दृष्ट्वा श्रीरामदेवं तत्र [illegible] शापान्निर्मुक्तो देवर्षिर्द्विजसत्तम ३८
प्रभावं चित्रकूटस्य मया प्रोक्तं समासतः अतः परं प्रवक्ष्यामि भरतात्रेय मुत्तमं ३९ संवादं यत्र संभूतं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमं ४० इति श्रीव

वि० ३

परिशिष्ट –

वंधोदयाद्विधोशरणागतवत्सल श्रीरामचंद्रपादाब्जनिरतांतापनाशन ५ सर्वज्ञसर्वशास्त्राणांप्रवर्त्तकप्रकाशक वेदवेदांगमंत्राणां
पंत्राणांचस्वरूपवित् ६ संसारसागरेमग्नभीतानांपापनाशक जाड्यंतमोहितमशेषंगुरोशीलवारिधे ७ ततःकमलपत्राक्षश्रु
तरामःपरांमुने पद्मस्तवणमात्रेणसफलंजन्मनःकृतं ८ माहात्म्यंवदमेस्वामिन्चित्रकूटस्यविस्तरं कथयस्वमुनिश्रेष्ठाःसेवंत
सिद्धिकांक्षया ९ अत्रिरुवाच चित्रकूटंमहातीर्थंपरंनिर्वाणकारकं तीर्थानांपरमंतीर्थंमंगलानांचमंगलं १० पीठानांपरमं
पीठंपर्वतानांचपर्वतम् धर्माभिलाषबुद्धीनांधर्मराशिकरंपरं ११ अर्थिनामर्थदातारंपरमार्थप्रकाशकं कामिनांकाम
दंश्रेष्ठंमुमुक्षूणांचमोक्षदं १२ सर्वत्रऋषयस्तत्रमहिमाद्विजसत्तम तस्मिन्मुनीनांसघानितपश्चर्याप्रकुर्वते १३ सप्तरात्रव्रतंके
चिद्दशरात्रव्रतंतथा द्वादशाह्निकव्रतंश्चैवमासिकव्रतमुत्तमम् १४ मूलाहारंप्रकुर्वन्तिफलाहारंतथैवच वायुभोजनसंयुक्ताद
धिभोजनतत्पराः १५ गोमूत्रपाननिरताःशाकभोजनतत्पराः व्रतंचान्द्रायणंनामसर्वपातकनाशनम् १६ भक्षणंशुष्कप
र्णानांप्रकुर्वंतिमुनीश्वराः विविधानिचकृच्छ्राणिकुर्वंतिहरिकाम्यया १७ एवंसर्वेद्विजश्रेष्ठास्तातुर्वर्णेपिसंयुताः तपश्चापिप्र
कुर्वंतिब्रह्मचर्यमुदावहा १८ विस्तृतानांशिलानांचछायाप्रस्रवणानिच पुलिनानिचरम्याणिविचित्राणिवनानिच १९ देव
स्थानानिपुण्यानिपश्यंतिभूरिशः यज्ञांश्चविविधाकारान्द्विजाःकुर्वंतिभूरिशः २० दानंचविविधाकारंदीनानाथकृपणेषुच प्र
दधाति द्विजश्रेष्ठ [illegible] ततेवजनेते २१ स्वधाकारवषट्कारस्वाहाकारेणमस्क्रिया प्राज्ञनाऽध्ययनंचैवप्रकुर्वंतिद्विजोत्तम २२ तेत्रे
ह्यस्मिन्सुर[illegible]तमनेन[illegible]तिपरांगतिं चित्रकूटंगिरिंदृष्ट्वापुनर्जन्मनविद्यते २३ तीर्थानिचयथोक्तेनविधिनासंचरंतिये अग्निष्टोमा
दिभिर्यज्ञैरिष्ट्वाविपुलदक्षिणैः २४ ततफलमवाप्नोतितीर्थोऽभिगमनेनयत् तानितेकथयाम्यत्रसावधानतयाशृणु २५ प

स्पर्णीं च कावेरीं चैव नर्मदां प्रयागं नैमिषं चैव धर्मारण्यं गया तथा २१ वाराणसीं श्रीगिरिं च केदारं पुष्करं तथा मानसं चक्रमसरस्तथैवे चो
त्तममानसं २२ वटेश्वरं चैव तीर्थं वंदं च सागरं अग्नितीर्थं महातीर्थं बिंदुघुम्रसरस्तथा २३ सरांसि सरितश्चैव पुण्यक्षेत्राणि या
नि च स्थानानि कानि केषं च शालग्रामं हरिं तथा २४ एतानि सर्वतीर्थानि नानास्थपुतानि च विंध्यादिपर्वतश्रेष्ठाः श्रीगिरेः सेवितो
त्तकाः २५ श्रीगिरिः चतुराशीतियोजनानां समुच्छ्रितः सर्वदेवात्मकं दृष्टा गिरेः कृत्वा प्रदक्षिणां २६ दत्वा दानं द्विजातिभ्यः श्रीरा
मप्रीतिहेतुकं मंदाकिन्यां ततः स्नात्वा प्रयागे राघवे तथा २७ च कारपात्राभरतः पंचतीर्थात्मकां प्रभो कोटितीर्थे ततः स्नात्वा दत्वा
दानं यथाविधि २८ हनुमद्दर्शनं कृत्वा पवित्रतीर्थं गतस्तथा यत्र मंदाकिनी गंगा समुद्भूता महानदी २९ दत्वा दानं द्विजातिभ्यो भो
जनं विधिपूर्वकं कारयित्वा मुनिं दृष्ट्वा भार्यया सहितं सुधीः ३० गोदावर्यां ततो गत्वा देवं पशुपतिं विभुं पूजयित्वा प्रसन्नात्मा स्ना
त्वा धंकूपमागतः ३१ पंचतीर्थीं त्रिकांपात्रां कृत्वा पूजां विधाय च दर्शनं श्रीगिरेः कृत्वा पूजनं सहमानुभिः ३२ वासं त्रिरात्रिकं कृत्वा
प्याजगाम पुरं ततः प्रविवेश पुरीं श्रीमान् यथा शक्रोमरावतीं ३३ प्रणानामात्यभरतो गुरुभ्रातसमन्वितः ब्राह्मणकुलवृद्धांश्च
पूजयामास चादरात् ३४ एतद्भारतमाख्यानं यः पठेत्साटपेदृपि सर्वपापविनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः ३५ विमुक्तः सर्वपा
पेभ्यो राम लोके महीपते इति भारतमाख्यानं मयाते परिकीर्तितं ३६ इत्यार्षे दरद्राणायरो चित्रकूटमाहात्म्ये द्वितीयोध्यायः २
शांडिल्य उवाच तीर्थयात्रा विचित्रा च वर्णिता द्विजसत्तम रहस्यं चित्रकूटस्य हि संक्षेपतो मुने १ भृशुंडिरुवाच सुतीक्ष्णो ब्राह्मणः
कश्चित् दासपापन्नमानसः आगत्यमाश्रमं गत्वा मुनिं पप्रच्छ सादरं २ तस्याः कथाया विस्तार महिमावर्तनेनघ तन्मुखात्कलितं
सर्वं कृपया मितदाग्रतः ३ सुतीक्ष्ण उवाच देवाधिदेवदेवेश कृपासिंधो जनेश्वर जगद्धाम जगद्बंधो जगदानंदकारक ४ दीन

परिशिष्ट – 2

सहायक ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद संहिता : सातवलेकर, सूरत 1957
2. ऋग्वेदानुक्रमणी : माधवभट्ट, मद्रास
3. ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका : महर्षि दयानन्द, अजमेर
4. अथर्ववेद : स्वाध्याय मण्डल, पारडी
5. यजुर्वेद संहिता : आनन्दाश्रम सीरीज
6. ऐतरेय ब्राह्मण : आनन्दाश्रम सीरीज
7. शतपथ ब्राह्मण : आनन्दाश्रम सीरीज
8. नरसिंह पुराण : गीताप्रेस गोरखपुर
9. दि नरसिंह पुराण : ए क्रिटिकल स्टडी डॉ0 एस.जेना, 1987
10. अग्नि पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर
11. अग्निपुराणम् : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1986
12. ब्रह्मपुराण : गुरुमण्डल प्रकाशन, कलकत्ता
13. पुराण विमर्श : बलदेव उपाध्याय, वाराणसी, 1987
14. हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन : वीणापाणि पाण्डेय, सूचना विभाग, उ0प्र0
15. पुराण समीक्षा : डा0 हरिनारायण दुबे, 1984
16. अग्नि पुराण : आनन्दाश्रम सीरीज, पूजा
17. कूर्म पुराण : कलकत्ता, 1890
18. गरूड़ पुराण : कलकत्ता
19. देवी भागवत : श्रीराम शर्मा, मथुरा
20. नारदीय पुराण : वेंकटेश्वर बम्बई
21. पदम पुराण : आनन्दाश्रम सीरीज, 1893

22. भागवत पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर

23. भविष्य पुराण : वेंकटेश्वर, बम्बई, 1910

24. मत्स्य पुराण : आनन्दाश्रम सीरीज पूना

25. मार्कण्डेय पुराण : कलकत्ता, 1862

26. ब्रह्माण्ड पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1913

27. वामन पुराण : वेंकटेश्वर बम्बई, 1914

28. वायुपुराण : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग,

29. वराह पुराण : कलकत्ता, 1893

30. विष्णु पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर

31. हरिवंश पुराण : पूना, 1936

32. अष्टादश पुराण दर्पण : ज्वाला प्रसाद मिश्र,

33. मार्कण्डेय पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन : डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल

34. पुराण तत्व मीमांसा : कृष्णमणि त्रिपाठी, वाराणसी

35. वामन पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन : डा0 मालती त्रिपाठी

36. पुराणानुशीलन : महामहोपाध्याय, गिरिधर शर्मा, चतुर्वेदी पटना, 1970

37. महाभारत वन पर्व : गीता प्रेस, गोरखपुर

38. महाभारत अनुशासन पर्व : गीता प्रेस, गोरखपुर

39. वाल्मीकि रामायण : गीता प्रेस, गोरखपुर

40. धर्मशास्त्र का इतिहास : पी.वी. काणे 1966

41. नारद भक्ति सूत्र : गीता प्रेस गोरखपुर

42. भगवत गीता : गीता प्रेस गोरखपुर

43. वैदिक मैथालॉजी : मैकडानल एण्ड कीथ

44. वैदिक इण्डेक्स : मैकडानल एण्ड कीथ

45. सारस्वत सन्दर्शनम् : सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, 1971

46. मनु स्मृति : बाबू ठाकुर प्रसाद गुप्ता, वाराणसी

47. हिन्दू सभ्यता : डा0 राधा कुमुद मुकर्जी, दिल्ली 1974

48. वैदिक साहित्य और संस्कृति : बलदेव उपाध्याय, काशी 1955

49. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर

50. प्राचीन भारतीय संस्कृति : बी.एन. लुनिया

51. भारतीय संस्कृति : डा0 रामजी उपाध्याय

52. संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास : डा0 सूर्यकान्त, 1972

53. संस्कृत साहित्य का इतिहास : कपिल देव द्विवेदी, इलाहाबाद 1962

54. संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय, वाराणसी, 1978

55. संस्कृत हिन्दी कोष : वामन शिवराम आप्टे, दिल्ली

56. हिन्दी विश्व कोष : नगेन्द्र बसु

57. शब्द कल्पद्रुम : राधा कान्त देव, वाराणसी, 1961

58. कालिदास ग्रन्थावली : सीताराम चतुर्वेदी

59. भागवत दर्शन : डा0 वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी

60. भागवत दर्शन : डा0 हरवंश लाल शर्मा,

61. भारतीय साहित्य का इतिहास : विन्टर निट्स

62. संस्कृत साहित्य का इतिहास : ए.बी. कीथ

63. अनुवादक : डा0 मंगल देव शास्त्री

64. मेघदूतम् :

65. अनर्घराघवम् :

66. भट्टिकाव्यम्

67. प्रसन्न राघवम्

68. भवभूति ग्रन्थावली

69. कालिदास की लालित्य योजना : हजारी प्रसाद द्विवेदी

70. डिसकवरी ऑफ इन्डिया : जवाहर लाल नेहरू, 1946

71. कल्याण : रामांग, गीता प्रेस गोरखपुर

72. कल्याण तीर्थांक : गीता प्रेस गोरखपुर

73. पर्यावरण : डा0 वी.एल. शर्मा

74. पर्यावरण एक भौगोलिक अध्ययन : आगरा 1989

75. कादम्बरी : वाराणसी

76. सांख्यायन ब्राह्मण :

77. जैमिनि सूत्र

78. अमरकोष

79. स्कन्द पुराण :

80. डिक्लाइन एण्ड फाल ऑफ दी रोमन एम्पायर, जिल्द 7, 1962

81. साधना : रविन्द्र नाथ ठाकुर

82. वायु पुराण :

83. विष्णु धर्मोत्तर पुराण

84. लिंग पुराण

85. राजतरंगिणी

86. गंगा लहरी :

87. अमृत लहरी :

88. कालिदास : वी.वी. मिराशी

89. कालिदास : रमाशंकर त्रिपाठी

90. उपमा कालिदासस्य : रमा शंकर त्रिपाठी

91. मेघदूत में रामगिरि : बाबू लाल गर्ग, 1982

92. राजसत्ता का अनुशासन : व्योमशेखर, साहिबाबाद, 1989

93. अहं राष्ट्री : व्योमशेखर, साहिबाबाद 1990

94. अध्यात्म रामायण :

85. बाल रामायण

86. हनुमन्नाटक

87. बृहद् रामायण : चित्रकूट माहात्म्य पाण्डुलिपि, चन्ददास साहित्य शोध संस्थान, सिविल लाइन्स बाँदा

88. चीफ रूट्स इन दि वाल्मीकीज रामायण : वेचन दुबे, वाराणसी,

89. लंका की खोज : हीरा लाल शुक्ल इलाहाबाद 1977

90. दि ज्योग्रैफी ऑफ रामाज एक्जाइल : रॉयल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल,लन्दन1894

91. आर्कालॉजिकल सर्वे. रिपोर्ट : भाग 13

92. राम वनवास का भूगोल : डॉ0 काटजू, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 1945

93. भारत (समाचार पत्र) : 30.9.1945

94. बाँदा जनपद गजेटियर वोल्यूम 21 : 1929

95. पर्यावरणीय शिक्षा : बसंत लाल जैन

96. इण्डियन एन्टिक्वेरी, बॉम्बे

97. जर्नल ऑफ गंगा नाथ झा, रिसर्च इंस्टीट्यूट इलाहाबाद

98. विश्व भारत क्वार्टरली

99. सागरिका : सागर

100. भवन्स जर्नल : बॉम्बे